तुलसीदास और उनकी कविता

तुलसीदास के जीवन-चरित की नई खोज
और
उनकी कविता पर नया प्रकाश

पहला भाग

लेखक
रामनरेश त्रिपाठी

प्रकाशक
हिन्दी-मन्दिर
प्रयाग

पहला संस्करण } दिसम्बर, १९३७ { मूल्य, दो रुपये

प्रस्तावना

यह लिखते हुये मैं बहुत सुख अनुभव कर रहा हूँ कि आज तुलसीदास के प्रति अपनी चिर-संचित श्रद्धा का कुछ अंश इस पुस्तक द्वारा प्रकट करके मैंने अपनी साहित्यिक-शक्ति को कृतार्थ बना पाया। तुलसीदास को मैं अपने बाल-जीवन का सखा मानता हूँ। मैं जब बहुत बालक था, तभी से मेरे पूज्य पिता, जो तुलसीदास और राम के अनन्य भक्त थे, मुझे रामायण की चौपाइयाँ रटाया करते थे। मैं आज अनुभव करता हूँ कि तुलसीदास तभी से मेरे चरित्र पर बराबर नियंत्रण रखते रहे हैं। आज उनके उस अमूल्य उपकार के प्रति अपनी कृतज्ञता मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ !

सन् १९३५ में मैंने दस वर्षों के परिश्रम से तुलसीदास के रामचरितमानस की एक टीका लिखकर प्रकाशित कराई थी और उसमें मैंने एक विस्तृत भूमिका भी लिखी थी। भूमिका में मैंने तुलसीदास के जीवन और उनकी रचनाओं पर कई नवीन बातों का प्रकाश डाला था। मेरे कुछ साहित्यिक बंधुओं ने उसपर खुले आम आक्रमण करके, भूमिका में वर्णित नवीन विचारों पर ध्यान न देकर, मेरे किये हुये चौपाइयों और दोहों के अर्थों के खण्डन-मण्डन और पाठ-भेद को लेकर बड़ा आंदोलन उपस्थित किया था। उन्होंने अपने शब्द-भाण्डार में से कठोर से कठोर शब्द मेरे लिये निकाले और समाचार-पत्रों-द्वारा उन्हें जहाँ तक वे पहुँचा सके, पहुँचाया। अपने को परमहंस लिखनेवाले एक 'बाबाजी' ने तो हंस की साधारण वृत्ति भी भुला दी थी और

उन्होंने मेरे लिये गन्दे से गन्दे शब्दों से भरी हुई एक पुस्तिका ही छपाकर वितरण कराई थी। राम के अनन्य उपासक और सौजन्य-मूर्त्ति तुलसीदास के भक्त कहलानेवालों की यह हालत देखकर तथा मनुष्य का हृदय रखने के कारण मैं इन आन्दोलनों से उत्पन्न हुये विक्षोभ से रहित नहीं हो सका, और वह विक्षोभ ही इस पुस्तक के निर्माण का मूल कारण हुआ।

मेरे 'मानस' की भूमिका में प्रकाशित तुलसीदास के जीवन-चरित की नवीन खोज और उनकी कविता के उद्देश्य पर जो नवीन विचार प्रकट किये गये थे, समालोचकों ने उनपर पूरा ध्यान नहीं दिया। इससे मैंने अनुमान किया कि तुलसीदास का वास्तविक स्वरूप, जिसे मैं जनता के सामने रखना चाहता था, अपूर्ण था और इसीसे उसे देखकर उनमें विक्षोभ उत्पन्न हुआ होगा। अतएव मैं अपने उस अधूरे चित्र को पूरा करने में फिर से कटिबद्ध हुआ।

अंग्रेजों में शेक्सपियर की मान्यता अपरिमेय है। उसके लिये एक अंग्रेज़ विद्वान् कार्लाइल ने अंग्रेज़-जाति से एक प्रश्न उठाकर स्वयं ही उसका बड़ा ही सुन्दर उत्तर भी दिया है।—

'Will you give up your Indian Empire or your Shakspeare?

Indian Empire will go at any rate some day; but this Shakspeare do not go. We can not give up our Shakspeare.

प्रश्न—तुम भारतवर्ष का साम्राज्य छोड़ सकते हो? या शेक्सपियर को?

उत्तर—भारतीय साम्राज्य तो किसी दिन जायगा ही, लेकिन

शेक्सपियर हमारे साथ रहेगा। हम अपने शेक्सपियर को नहीं छोड़ सकते।'

क्या ही हर्ष की बात होती, यदि हमारा भी कोई कार्लाइल ऐसा ही उत्तर अपने तुलसीदास के लिये दे सकता।

हिन्दुओं में तुलसीदास की प्रतिष्ठा शेक्सपियर से कम नहीं, बल्कि अनेक अंशों में बढ़कर है। पर अंग्रेज़ी में शेक्सपियर के शब्द तक गिन डाले गये हैं, और हमने अभीतक तुलसीदास के दोहों और चौपाइयों की संख्या भी ठीक-ठीक निश्चित नहीं की है।

अंग्रेज़ी में शेक्सपियर पर इतने ग्रन्थ लिखे गये हैं कि उनसे एक बड़ी अलमारी भरी जा सकती है। केवल शेक्सपियर पर लिखे गये आलोचना-ग्रन्थों ही से, बिना शेक्सपियर के मूल-ग्रन्थों का अध्ययन किये ही, उनकी सम्पूर्ण कृतियों का परिज्ञान हो सकता है। अंग्रेज़ों में खासकर शेक्सपियर के लिये ही कितने विद्वानों को स्वतन्त्र प्रसिद्धि प्राप्त है। पर तुलसीदास पर अभीतक पहले तो अधिक ग्रंथ लिखे ही नहीं गये, दूसरे जो लिखे भी गये हैं, वे साम्प्रदायिकता की सीमा में कसे हुये हैं। साहित्यिक दृष्टि से तुलसीदास पर विचार बहुत कम किया गया है।

आजकल पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता की चकाचौंध में पले हुये अनेक शिक्षित भारतवासी अपने देश और समाज के आधार रूप कवियों और सन्तों पर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। तुलसीदास, जो संसार के विचारकों और कवियों में सर्वोच्च स्थान पाने के अधिकारी हैं, उनकी विचार-वीथी में आने ही नहीं पाते। इसका कारण इसके सिवा और क्या हो सकता है कि तुलसीदास का वास्तविक स्वरूप उन्होंने नहीं देख पाया और वे उनसे अबतक अपरिचित बने रहे। तुलसीदास को हम ने अन्ध-विश्वास-

प्रचारकों की एक छोटी-सी परिधि में घिरा रहने दिया, जिससे हमारी बड़ी हानि हुई है, और हम सदियों से उनके द्वारा मिलनेवाले कल्याण से वंचित बने रहे।

तुलसीदास तो साम्प्रदायिक व्यक्ति थे ही नहीं। बल्कि यों कहना चाहिये कि साम्प्रदायिक मतभेद मिटाने ही के लिये उन्होंने 'मानस' की रचना की थी। अपने काव्यों में उन्होंने प्रत्येक श्रेणी और प्रत्येक समाज के गृहस्थ-मात्र के लिये जीवन-निर्माण का संदेशा अलग-अलग दिया है। वे सम्प्रदाय वाद के प्रबल विरोधी थे। लोगों ने उन्हें ठीक-ठीक समझा नहीं; और साम्प्रदायिक लोगों ने किसी को उन्हें समझने दिया भी नहीं।

कालेज और युनिवर्सिटियों के विद्यार्थी अंग्रेज़ कवियों के काव्य-कौशल पर मुग्ध दिखाई पड़ते हैं। अवश्य ही गुण का आदर जाति-भेद को छोड़कर करना चाहिये; पर उन्हें यह भी जानना चाहिये कि उनके तुलसीदास संसार के महान् कवियों में किसी से कम नहीं हैं; बल्कि कवि के सिवा वे कुछ और भी हैं। वे अकर्मिण्ठ राम-भक्ति के प्रचारक नहीं हैं। राम-भक्ति से तो उन्होंने जीवन का महल बनाने में सिर्फ़ गारे का काम लिया है।

जो व्यक्ति राम-भक्त बनकर गृहस्थों का भार-स्वरूप हो जाता है, उसके लिये तुलसीदास ने 'मानस' नहीं लिखा है। 'मानस' गृहस्थों के लिये लिखा गया है और वह उन्हीं की सम्पत्ति है। जो लोग उसका दुरुपयोग कर रहे हैं और उसके द्वारा जनता में अकर्मण्यता फैलाते हैं, वे उसके ग्रहण करने के अधिकारी नहीं हैं। उनके हाथों से हमें उसे छीन लेना चाहिये।

जान पड़ता है, अभी हिन्दी में ठोस काम करनेवालों का समय नहीं आया है। साहित्य में एक अंधड़-सा चल रहा है और साहित्य-पथ के पथिक अंधकार में उद्दिष्ट रास्ते की खोज

करते हुये आकुल-व्याकुल की तरह चारोंओर दौड़ रहे हैं। उनके लिये मैं अपने कुछ छोटे-छोटे दिये रास्ते के किनारों पर टिमटिमाते हुये छोड़े जाता हूँ। संभव है, कभी उनकी दृष्टि इनपर पड़े और वे इनको हाथ में लेकर साहित्य का राज-मार्ग खोज निकालने में समर्थ हों। मेरी आन्तरिक कामना है, कि तुलसीदास को साम्प्रदायिकता के घेरे से निकालकर मनुष्य-मात्र के हाथों में पहुँचने दिया जाय।

रामचरितमानस की भूमिका में मैंने जो कुछ लिखा था, उसमें बहुत कुछ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन करके मैंने यह पुस्तक लिखी है। इससे इसे स्वतंत्र पुस्तक ही समझना चाहिये। मैंने जो कुछ ठीक समझा, इस पुस्तक में लिख दिया। सभी उसको ठीक समझेंगे, यह दावा मैं कैसे कर सकता हूँ? फिर भी सहृदय साहित्य-रसिक सज्जन इससे कुछ आनन्द अनुभव करेंगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

अंत में अपनी त्रुटियों के लिये मैं खास तौर पर क्षमा माँगता हूँ। साधारण कोटि का साहित्यिक व्यक्ति होने के कारण त्रुटियों से रहित तो मैं कैसे हो सकता हूँ? भाषा पर भी कुछ ऐसा अधिकार नहीं कि अपने भावों को ठीक-ठीक व्यक्त कर सकूँ; और तुलसीदास का विषय भी साधारण नहीं है; इससे जितना मैं कर सकता था, उतना करने में अपनी शक्तिभर मैंने त्रुटि नहीं की है, केवल यही विश्वास दिलाता हूँ।

प्रूफ-संशोधन की त्रुटियों का भी उत्तरदायित्व मुझपर है; पर उसका अपराधी मेरा ज्ञान नहीं माना जाना चाहिये। संभव है, अशुद्ध शब्दों या प्रयोगों को मैं भी अशुद्ध ही समझता होऊँ और वे प्रूफ़-संशोधक की असावधानी, टाइपों के टूटने और

कम्पोज़ीटरों की चिमटियों की अनियंत्रित सत्ता से अशुद्ध रह गये हों। इससे उनके लिये समालोचकों से मेरा निवेदन है कि वे त्रुटियाँ उन्हीं के लिये रह गई होंगी, कृपया वे उन्हें स्वयं सुधार लें और मुझे भी सूचित करके उन्हें सुधरवा लें।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
अगहन की पूर्णिमा, १९९४

रामनरेश त्रिपाठी

विषय-सूची

चित्र-सूची

तुलसीदास और उनकी कविता

गोस्वामी तुलसीदास

(संवत् १६५५ का कहा जानेवाला चित्र)

हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद

तुलसीदास और उनकी कविता

तुलसीदास की स्वकथित जीवनी

तुलसीदास को लोकांतरित हुये तीन सौ वर्षों से अधिक होगये, पर अभी तक निश्चित रूप से यह निर्णय नहीं हो सका था कि वे कौन थे? और कहाँ के थे? और यह भी जन-श्रुति ही पर अवलम्बित था कि कब उन्होंने जन्म लिया? और कब वे परलोकवासी हुये? उन्होंने कब कौन-सा ग्रन्थ रचा? यह भी उनके दो-तीन ग्रन्थों को छोड़कर, जिनमें उन्होंने स्वयं उनकी रचना का समय लिख दिया था, और कहीं नहीं मिलता। उन्होंने कितने ग्रन्थ रचे? यह तो एक ऐसा विवाद-ग्रस्त प्रश्न है, जिसका निर्णय केवल तुलसीदास ही कर सकते हैं। वे एक तत्वदर्शी विद्वान्, महाकवि और लोक-सम्मानित व्यक्ति थे, पर उनमें अभिमान नहीं था और न कीर्ति की लोलुपता ही थी। इससे उन्होंने अपने विषय में बहुत ही थोड़ा लिखा है, और वह भी उनके सांसारिक दुःखों की केवल एक स्मृति-मात्र है। उनकी लोकमान्यता की तो एक भी बात हमें उनकी लेखनी से नहीं मिलती। जहाँ कहीं उन्होने अपने सांसारिक सुखों का कुछ स्मरण किया है, वहाँ हम उन्हें नम्रता और अपने आराध्यदेव के प्रति कृतज्ञता से दबा ही हुआ पाते हैं। इससे उनके कष्टों को हम जितना जान सके हैं, उतना उनके सुखों को नहीं।

तुलसीदास के रचे हुये कुछ ग्रन्थों में उनके जीवन की एक अस्पष्ट आभा देखने को मिलती है। उनके आधार पर उनके जीवन का एक धुँधला-सा चित्र तैयार किया जा सकता है। पर वह इतना अपूर्ण होगा कि हमारी जिज्ञासा बनी ही रहेगी। खेद की बात है कि हम अपनी सामाजिक संस्कृति के एक प्राण-पोषक महाकवि के जीवन-संबंध में बहुत कम जानते हैं।

उनके नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों के नाम यहाँ दिये जाते हैं।—

१—रामचरितमानस
२—कवितावली रामायण
३—गीतावली रामायण
४—बरवै रामायण
५—दोहावली रामायण
६—छन्दावली रामायण
७—पदावली रामायण
८—कुण्डलिया रामायण
९—छप्पै रामायण
१०—कड़खा रामायण
११—रोला रामायण
१२—झूलना रामायण
१३—मंगल रामायण
१४—वैराग्य-संदीपनी
१५—रामलला-नहछू
१६—पार्वती-मङ्गल
१७—जानकी-मङ्गल
१८—रामाज्ञा-प्रश्न
१९—श्रीकृष्ण-गीतावली

२०—विनय-पत्रिका

२१—हनुमान-बाहुक

२२—संकट-मोचन

२३—हनुमान-चालीसा

२४—राम-शलाका

२५—तुलसी-सतसई या राम-सतसई

२६—कलिधर्माधर्म-निरूपण

२७—बारहमासी

२८—अंकावली

२९—ध्रुव-प्रश्नावली

३०—तुलसीदास की बानी

३१—ज्ञान को परिकरण

३२—गीता-भाषा

३३—सूर्य-पुराण

३४—ज्ञान-दीपिका

३५—स्वयंबर

३६—रामगीता

३७—हनुमान-शिक्षा-मुक्तावली

३८—कृष्ण-चरित्र

३९—सगुनावली

इनमें कितने ग्रन्थ वास्तव में तुलसीदास के रचे हुये हैं, इस विषय पर हम स्वतन्त्र रूप से आगे विचार करेंगे। इनमें चार ही पाँच ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें उन्होंने कहीं-कहीं, प्रसङ्ग-वश, अपने जीवन की कुछ झलक डाल दी है। वे ग्रन्थ ये हैं—रामचरित-मानस, कवितावली, विनय-पत्रिका, दोहावली, बरवै रामायण और तुलसी-सतसई। इन ग्रन्थों से उनके जीवन की जो बातें

मालूम हो सकी हैं, उनके आधार पर उनकी स्वकथित जीवनी यहाँ दी जाती है।—

समय

तुलसीदास के जन्म-काल का यद्यपि ठीक-ठीक संवत् अभी तक अज्ञात है, पर वे किस समय में विद्यमान थे, यह अज्ञात नहीं है। रामचरितमानस में उन्होंने उसकी रचना का यह समय दिया है।—

संबत सोरह सै इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।

* *

नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

अर्थात् सं० १६३१ में तुलसीदास ने रामचरितमानस लिखना प्रारंभ किया था।

तुलसीदास के दोहों का एक संग्रह 'तुलसी-सतसई' नाम से प्रसिद्ध है। उसमें उसका रचना-काल सं० १६४२ दिया हुआ है।—

अहि-रसना[२] थन-धेनु[४] रस[६], गनपति-द्विज[१] गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार।

पार्वती-मङ्गल में उसका रचना-काल यह दिया हुआ है।—

जय संबत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मङ्गल— ॥

'जय' संवत् १६४३ में पड़ा था।

कवितावली में यद्यपि कोई समय स्पष्ट नहीं दिया हुआ है, पर उसमें रुद्रबीसी और मीन की सनीचरी का ज़िक्र आता है।

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर सहर की।

*   *

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।

गणना से रुद्रबीसी का समय सं० १६६५ से १६८५ तक और मीन के शनैश्चर का योग सं० १६६९ से १६७१ के मध्य तक पड़ता है। कवितावली का अन्तिम अंश इन्हीं दिनों में लिखा गया होगा। ऊपर के प्रमाणों से इतना तो निश्चित ही है कि तुलसीदास सं० १६३१ और सं० १६८५ के बीच में विद्यमान थे।

वंश

तुलसीदास ब्राह्मण-वंश के थे। विनय-पत्रिका में वे लिखते हैं।—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को।

इसमें आये हुये 'सुकुल' शब्द से कुछ विद्वान् यह अर्थ लेते हैं कि वे शुक्ल ब्राह्मण थे। पर यह अर्थ न भी लिया जाय, तो 'सुकुल' शब्द का 'उत्तम कुल' अर्थ करने से भी ब्राह्मण-वंश ही समझा जायगा। तुलसीदास ब्राह्मणों को हिन्दू-समाज में सर्व-श्रेष्ठ समझते भी थे। और दूसरे चरण में आया हुआ 'पंडित' शब्द तो और भी इस बात को स्पष्ट करता है कि वे ब्राह्मण-वंश के थे।

कवितावली में उन्होंने अपने को 'जायो कुल मङ्गन' (मङ्गन-कुल में उत्पन्न हुआ) लिखा है। ब्राह्मणों के सिवा मंगन और कौन हो सकता है? कवितावली में एक स्थान पर वे एक बार फिर 'भले कुल' और 'भले समाज' में जन्म लेने की याद करते हैं।—

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहि कै।

इससे भी जान पड़ता है कि वे किसी उच्च कुल ही में जन्मे थे।

जन्म और बालपन

तुलसीदास के जन्म लेते ही उनकी माता का देहान्त होगया था। 'विनय-पत्रिका' में वे लिखते हैं--

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहूँ।

सोरों और उसके आस-पास 'कुटीला' नाम का एक कीड़ा होता है, जो 'केकड़ा' नाम से भी विख्यात है। उसकी यह विशेषता कही जाती है कि वह अपनी माता का पेट फाड़कर बाहर निकलता है। तुलसीदास के उत्पन्न होते ही उनकी माता का देहान्त होगया था; इसीमें उन्होंने अपनी तुलना 'कुटिल कीट' अर्थात् 'कुटीला' से की है। 'कुटिल कीट' का अर्थ 'विनय-पत्रिका' के टीकाकारों ने सर्पिणी आदि किया है; पर सर्पिणी आदि कोई जीव अपने बच्चे को जन्मते ही छोड़ नहीं देते। वे प्रकृति-वशः उनकी तबतक सँभाल करते हुये पाये जाते हैं, जबतक बच्चे स्वयं समर्थ नहीं हो जाते।

माता की मृत्यु के बाद ही, संभवतः थोड़े ही दिनों में, उनके पिता का भी देहान्त होगया था। ऊपर के उदाहरण में 'पिता' के साथ लगा हुआ 'हूँ' इसी अर्थ का द्योतक हो सकता है।

विनय-पत्रिका में उन्होंने एक स्थान पर ऐसा ही संकेत और भी किया है।—

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक
औचट उलटि न हेरो।

सोरों और उसके आस-पास तिजरा बच्चों की पसली चलने की बीमारी को कहते हैं। उसके लिये यह टोटका किया जाता है कि आटे का एक पुतला बनाकर लोग चौराहे पर छोड़ आते हैं और फिर उलटकर उसकी ओर नहीं देखते। देखने से रोग के फिर वापस आने का भय रहता है। इससे भी पता चलता है कि तुलसीदास जब बिलकुल आटे के पुतले की तरह असमर्थ थे, तभी उनके माता-पिता उन्हें अनाथ छोड़कर मर गये थे।

कवितावली में भी वे कहते हैं कि माता-पिता ने जन्म देकर उन्हें छोड़ दिया।—

मातु-पिता जग जाय तज्यो।

बचपन में कथरी ओढ़े हुये, हाथ में मिट्टी का लोटा लिये हुये, वे घर-घर टुकड़े माँगते फिरते थे।—

पातक पीन, कुदारिद दीन,
मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै, बिधिहू न लिख्यो
सपनेहू नहीं अपने बर बाहै॥
राम को किंकर सो तुलसी
समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न
भजे बिन बानर के चरवाहै॥
(कवितावली)

कुत्ते के सामने पड़े हुये टुकड़े के लिये भी वे ललचाया करते थे।—

मातु-पिता जग जाय तज्यो
बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।

नीच निरादर भाजन कादर
कूकर टूकन लागि ललाई ॥
(कवितावली)

उनका जन्म उनके माता-पिता के लिए पाप और परिताप का कारण होगया था। बचपनही से वे द्वार-द्वार बिललाते फिरते थे, और चार दाने चने ही को चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) समझते थे।—

जायो कुल मङ्गन बधावनो बजायो,
सुनि भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को ॥
(कवितावली)

पेट की आग बुझाने के लिये उन्होंने जाति, सुजाति और कुजाति सब के घरों के टुकड़े खाये थे।—

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाये टूक सबके बिदित बात दुनी सो।
(कवितावली)

वे मट्ठे के लिये भी लालायित रहते थे।—

छाछी को ललात—
(कवितावली)

वे तेल की खली खाते और कोदौ (धान्य) का कना (चूरा) पाकर आनंदित होते थे।—

हुतो ललात कृसगात खात खरि
मोद पाइ कोदौ कनै।
(गीतावली)

वे ऐसे दुःखी थे कि उन्हें देखकर दुःख भी दुःखित हो जाता था।—

जननी जनक तज्यो जनमि
करम बिनु विधिहूँ सृज्यो अवडेरे।
फिरेउ ललात बिनु नाम उदर लगि
दुखउ दुखित मोहिं हेरे॥

(विनय-पत्रिका)

बालकपन में उन्हें खेलने का अवसर ही न मिला।—

बाल दसाहूँ न खेल्यों खेलत सुदाउँ मैं।

(विनय-पत्रिका)

वे द्वार-द्वार फिरे; दाँत निकालकर, पैरों पड़कर, उन्होंने अपनी दीनता कही; पर किसी ने उनसे बात भी नहीं की। उनसे लोग इतनी घृणा करते थे कि उनकी छाया के छूने में भी उन्हें संकोच होता था।—

द्वार-द्वार दीनता कही काढि रद परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुख दोष दलन छम,
कियो न संभाषन काहूँ।
काहे को रोस दोष काहि धौं मेरे ही अभाग
मोंसो सकुचत छुइ सब छाहूँ॥

(विनय-पत्रिका)

हाय-हाय करके, दरवाज़े-दरवाज़े उन्होंने अपनी ग़रीबी की पुकार की। वे मुँह खोले पड़े रहे, पर उसमें धूल भी न पड़ी। भोजन-वस्त्र-विहीन वे जहाँ-तहाँ दौड़ते फिरे; दुष्टों के भी आगे उन्होंने पेट खोलकर दिखलाया। लोभ ने उन्हें कौन-कौन-सा नाच नहीं नचाया?—

हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार
परी न छार मुँह बायो।
असन बसन बिन बावरो
जहँ तहँ उठि धायो॥
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि
खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहिं
लोभ लघु निलज नचायो॥
(विनय-पत्रिका)

ये तुलसीदास के हृदयोद्गार हैं, जो उनकी वृद्धावस्था में उनके मुख से निकले थे। दरिद्रता का ऐसा सजीव वर्णन शायद ही किसी कवि ने किया हो। एक-एक शब्द में करुणा का एक जगत्-सा बसा हुआ है। ईश्वर की विचित्र लीला है कि उसने ऐसे एक परम दरिद्र के हाथों हमें रामचरितमानस जैसा विभव बाँटा।

तुलसीदास के शब्दों में उनके बालपन की हमें इतनी ही झलक मिलती है। कबतक उनकी यह दशा रही, यह ज्ञात नहीं है। पर वे उन्हीं दिनों कभी संतों के हाथों में पड़ गये थे। संतों ने उन्हें दुःखी देखकर ढाढ़स दिया था।—

दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ।
(विनय-पत्रिका)

इस प्रकार दरिद्रता की न जाने किन किन गोदों में पलकर, मृत्यु से रात दिन लड़ते हुये, वे किसी गुरु के निकट पहुँच गये।

तुलसीदास का पहला नाम

तुलसीदास का पहला नाम रामबोला था। माता-पिता तो मर ही चुके थे, नाम कौन रखता? वे राम, राम चिल्लाकर

भीख माँगते फिरते थे। जान पड़ता है, इसीसे लोग उन्हें 'रामबोला' कहने लगे थे। तुलसीदास को किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं मालूम था कि किसने उनका नाम रामबोला रक्खा था; इसीसे वे कहते हैं कि राम ने नाम रख दिया था।—

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम।

(विनय-पत्रिका)

रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को।

(कवितावली)

यह भी पता नहीं चलता कि किसने और कब रामबोला का नाम तुलसीदास रख दिया। संभवतः तुलसीदास नाम उनके गुरु का रक्खा हुआ होगा।

गुरु और विद्या

तुलसीदास के विद्या-गुरु का नाम नरसिंह था। रामचरित-मानस के प्रारम्भ में गुरु की वंदना करते हुये तुलसीदास ने अपने गुरु का नामोल्लेख आदर के साथ किया भी है।—

बन्दौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुञ्ज, जासु बचन रबिकर निकर॥

'हरि' शब्द 'सिंह' और 'नारायण' दोनों का पर्यायवाची है। कुछ लोग 'हरि' पाठ शुद्ध नहीं मानते। उनका कथन है कि 'नर रूप हर' पाठ शुद्ध है। इसमें वे दो दलीलें देते हैं। पहली यह कि तुलसीदास शिव को गुरु मानते थे। बालकांड के तीसरे श्लोक में उन्होंने 'गुरुं शङ्कररूपिणम्' लिखा भी है। इसलिये शिव का पर्यायवाची 'हर' शब्द ही उन्होंने लिखा होगा। मुन्शी सुखदेवलाल ने स्वसम्पादित रामचरित-मानस में 'हर' ही पाठ रक्खा है। काशी के प्रसिद्ध रामायणी

पंडित विजयानन्द त्रिपाठी आजकल रामचरितमानस का प्रकाशन करा रहे हैं; उन्होंने भी 'हर' ही पाठ रक्खा है।

दूसरी दलील यह है कि तुलसीदास ने उक्त सोरठे के ऊपर के चारों सोरठों में उनके दूसरे और चौथे चरणों के तुक भी मिलाकर लिखे हैं। जैसे, वदन-सदन, गहन-दहन, नयन-सयन और अयन-मयन। इसी क्रम से पाँचवें सोरठे का भी तुक 'हर' और 'निकर' मिलना चाहिये। 'हरि' होने से अनुप्रास ठीक नहीं मिलता।

अब हम दोनों दलीलों पर विचार करते हैं। अभीतक मेरे देखने में 'मानस' की एक भी हस्तलिखित प्रति ऐसी नहीं मिली, जिसमें 'हर' पाठ हो। अयोध्या की प्रति सं० १६६१ की है। उसमें भी 'हरि' ही पाठ है। मलीहाबाद की प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, यद्यपि उसमें कहीं संवत् का उल्लेख नहीं है; उसमें भी 'हरि' पाठ है। मलीहाबाद में दूसरी प्रति सं० १७७६ की है, उसमें भी 'हरि' पाठ है। अतएव 'हरि' पाठ को हम आधुनिक कैसे मानें? अब रही यह बात कि तुलसीदास ने सोरठे के पहले 'गुरुं शङ्कर-रूपिणम्' लिखकर गुरु को शिव का रूप दिया है। यही भाव सोरठे में भी होना चाहिये। पर तुलसीदास के लिये कहो यह बन्धन तो था नहीं कि वे नर में नारायण को अभिव्यक्त न करें। रुद्र की अपेक्षा हरि में तो अधिक कृपा का भाव माना जाता है। और यदि उन्होंने अपने गुरु नरसिंह के 'सिंह' को 'हरि' नाम से व्यक्त किया है, तब तो 'हर' पाठ हो ही नहीं सकता।

दूसरी दलील तुक मिलने की बहुत ज़ोरदार नहीं है। तुलसीदास ने अच्छे से अच्छे तुक मिलाये हैं, पर लापरवाहियाँ भी कम नहीं की हैं। उसी सोरठे ही में उन्होंने 'कंज' का तुक

'पुञ्ज' मिलाया है। जब वे तुक के मामले मे इतने स्वतन्त्र थे, तब 'निकर' के लिये वे विवश माने जायँ, यह युक्ति-सङ्गत नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि शुद्ध पाठ 'हरि' ही है और वह 'नारायण' और 'नरसिंह' के 'सिंह' दोनों के लिये व्यवहृत हुआ है।

रामनाम का उच्चारण करते हुये, घर-घर रोटी के टुकड़े माँगते हुये बालक रामबोला को गुरु ने बुलाकर पूछा—तुम क्या चाहते हो ?

रामबोला ने कहा—मैं आपका दास होना चाहता हूं। मैं अनाथ हूँ, आपके पैर पकड़ता हूँ।—

बूझ्यो ज्योंही कह्यो "मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरोजू
मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।"
(विनय-पत्रिका)

इस पर कृपासिधु गुरु ने रामबोला की पीठ पर हाथ फेरा और उसकी बाँह पकड़कर उसे अपना लिया और उसे राम का भजन करने का आदेश दिया।—

मींजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि—

* *

गुरु कह्यो राम भजन नीको
मोहिं लगत राज डगरो सो।
(विनय-पत्रिका)

इस प्रकार रामबोला दरिद्रता के समुद्र मे डूबता-उतराता एक किनारे लगा। उसकी दशा पर तरस खाकर उसे गुरु नरसिंह ने, संभव है स्वजाति का बालक समझकर, अपने निकट शरण दे दी। इस घटना के बाद ही रामबोला का नाम तुलसी-दास हुआ होगा।

तुलसीदास ने वेद, शास्त्र, उपनिषद्, पुराण, व्याकरण, काव्य, नाटक, ज्योतिष और संगीत आदि संस्कृत-साहित्य के प्रायः सभी विषयों के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था। उन्होंने रामचरित-मानस के प्रारम्भ में यह प्रतिज्ञा

नानापुराणनिगमागमसम्मतं
यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि

एक अधिकारी ही की हैसियत से की थी।

गुरु के पास वे युवावस्था तक रहे। अनेक शास्त्रों के अध्ययन के लिये काफ़ी समय आवश्यक भी है। उनके गुरु रामोपासक थे। वे प्रायः राम की कथा कहा करते थे। तुलसीदास ने बचपन में पहले-पहल गुरु-मुख से राम-कथा सुनी थी; पर उस समय वे बिल्कुल बच्चे थे, इससे वे उसे ठीक-ठीक समझ नहीं सके।—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझि नहीं तसि बालपनु, तब अति रहेउँ अचेत॥
(रामचरित-मानस)

गुरु राम की कथा कहते ही रहते थे। आयु और अध्ययन के साथ तुलसीदास की बुद्धि का विकास भी होता रहा। गुरु के समीप रहकर कई बार राम-कथा सुनने से उन्हें कुछ-कुछ समझ पड़ने लगा। कम से कम उतना तो उन्होंने समझ ही लिया था, जितना रामचरित-मानस में उन्होंने व्यक्त किया है। फिर भी उसे वे नम्रता-वश 'कछु' ही कहते हैं।—

तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा॥

गुरु ने बार-बार राम-कथा एक ही दिन, एक ही महीने या

एक ही वर्ष में नहीं कही होगी। उसमें उन्हें अवश्य ही कई वर्ष लगे होंगे; क्योंकि तुलसीदास की बुद्धि का विकास भी तो उसके साथ लगा हुआ था।

रामचरित-मानस लिख सकने की योग्यता प्राप्त कर लेने पर तुलसीदास प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं गुरु से सुनी हुई राम-कथा को साधारण बोलचाल की भाषा में लिखूँगा।—

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

'मोरे मन प्रबोध जेहि होई' लिखकर उन्होंने यह प्रकट किया है कि उन्होंने अपनी परीक्षा ली है कि देखूँ तो मैंने राम-कथा ठीक-ठीक समझी है, या नहीं। यह बात उन्होंने रामचरित-मानस के प्रारम्भ में भी कही है कि राम-कथा मैंने अपने संतोष के लिये लिखी है।—

स्वान्तःसुखाय तुलसीरघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

यह नहीं कहा जा सकता कि कितने वर्षों तक वे गुरु के पास अध्ययन करते रहे; पर रामचरित-मानस लिख सकने भर की शिक्षा के लिये दस-पन्द्रह वर्षों का लगातार परिश्रम तो चाहिये ही।

विवाह

तुलसीदास का विवाह हुआ था। विनय-पत्रिका में उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है।—

लरिकाई बीती अचेत चित
चंचलता चौगुनो चाय।
जोबन जर जुवती कुपथ्य करि
भयो त्रिदोष भरे मदन बाय॥

कवितावली में भी वे संकेत करते हैं ।—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो ,
राम नाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं ।
पर्यो लोक-रीति में पुनीत प्रीति रामराय ,
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ॥

लोक-रीति में पड़ने और मोह-वश रामराय की पुनीत प्रीति को तोड़ बैठने को विवाह के सिवा और क्या कहा जा सकता है ?

गार्हस्थ्य-जीवन

विद्याध्ययन के पश्चात् तुलसीदास ने विवाह किया था । विवाह के उपरान्त वे गृहस्थी चलाने के लिये उद्योग-धंधे में लगे । धन के लिये उन्होंने खेती की, व्यापार किये और अनेकों उपाय रचे ।—

मध्य बयस धन हेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय ।
(विनय-पत्रिका)

तुलसीदास की कविता में उनके खेतिहर और व्यापारी होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं । वे ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जो किसानों और व्यापारियों की ठेठ बोलचाल के हैं । जैसे—

जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लखन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं ।

नापे-जोखे का प्रयोग बिलकुल किसानों का है ।

* *

कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अब को बिलोकै सौंहैं,
जहँ तहँ ये अचेत खेत के से धोखे हैं ।

देखे नरनारि कहैं, साग खाइ जाये माइ,
बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं ॥
(गीतावली)

'खेत का धोखा' तो खास किसानों का शब्द है। खेत को रात में जानवरों से बचाने के लिये किसान लोग उसमें एक डंडा गाड़कर उसके सिरे पर काली हाँड़ी रख देते हैं और डंडे पर कपड़ा लटका देते हैं। जानवर उसे आदमी समझकर खेत में नहीं आते। उसीको 'खेत का धोखा' कहते हैं। 'साग खाइ जाये माइ' अर्थात् 'तुझे माँ ने साग खाकर जन्म दिया है;' यह भी किसानों की बोलचाल का वाक्य है। 'पीना' भी किसानों की चीज़ है। पीना कहते हैं तिल की खली को। देहात में किसान लोग तिल का तेल निकलवाकर उसकी खली में गुड़ मिलाकर खाते हैं। पीना यद्यपि पुष्टिकारक आहार है, पर समझा जाता है निकृष्ट श्रेणी का। इसीसे वह ताने के लिये उपयोग में आता है।

विनय-पत्रिका में वे एक स्थान पर एक ऐसी बात कहते हैं, जो किसान ही के अनुभव की है।—

करम बचन हिये, कहौं न कपट किये
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की।

सन की गाँठ पानी पड़ने से और भी कस उठती है और फिर सहज में नहीं खुलती। किसान इसे रोज़ भोगता है।

ऐसे और बहुत-से प्रमाण हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि तुलसीदास ने खेतिहर का जीवन बिताया था।

उन्होंने व्यापार भी किया था। व्यापारी समाजमें प्रचलित बहुत-से प्रयोग उनकी कविता में मिलते हैं।—

स्वारथ के साथी मेरे हाथ सों न लेवा देई ।

(विनय-पत्रिका)

'लेवा देई' ठेठ व्यापारी प्रयोग है।

एक और प्रयोग देखिये।—

और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेन
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ।

(कवितावली)

इसमें सुलाखि और लसम ये दो शब्द चांदी के व्यापारियों के हैं। सुलाखना कहते हैं छेनी से काटकर यह देखने को कि वह चाँदी है, या नहीं। और लसम कहते हैं सूबड़ या खोटी चांदी को। इसी प्रकार के और भी अनेक शब्द हैं जो तुलसीदास के व्यापारी जीवन की कुछ साक्षी रखते हैं।

वैराग्य

गृहस्थ-जीवन में वे कब तक रहे ? यह उनके ग्रन्थों से प्रकट नहीं होता। संभवतः सं० १६३१ (रामचरित-मानस के रचना-काल) के बहुत पहले वे विरक्त हो चुके होंगे। विरक्त होने का कोई मूल कारण उनके ग्रन्थों में नहीं मिलता। घर छोड़ने के बाद वे कब और कहाँ-कहाँ घूमते फिरे और सत्संग करते रहे, इन बातों का भी पता नहीं चलता।

गोसाईं की उपाधि

तुलसीदास जन्म से गोसाईं नहीं थे। यह एक उपाधि थी, जो उन्हें किसी समय किसी से मिली थी।—

तुलसी गोसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं।

(हनुमान-बाहुक)

भ्रमण

तुलसीदास बीच बीच में भ्रमण भी करते रहते थे। उन्होंने अयोध्या में रामचरित-मानस का प्रारम्भ किया था, पर अरण्य-काण्ड तक लिखने के पश्चात् वे काशी चले गये और वहीं उन्होंने किष्किंधा-काण्ड प्रारम्भ किया था।—

मुक्तिजन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

(किष्किन्धा-काण्ड)

तीर्थराज प्रयाग के प्रति उनमें बड़ी श्रद्धा थी। वे प्रयाग भी आते-जाते रहते थे।—

देव कहैं अपनी अपना
अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटै अपराध अगाध
निमज्जत साधु समाज भलो रे।
सोहै सितासित को मिलिबो
तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृन चारु चरैं
बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे॥

(कवितावली)

चित्रकूट भी उनके प्रिय स्थानों में था। वहाँ भी वे बार-बार जाते रहते थे। चित्रकूट सम्बन्धी छन्द चित्रकूट ही में रचे गये होंगे।—

अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु।

*   *

तुलसी जो रामपद चहिय प्रेम ।
सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥

* *

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।
वर्षाऋतु प्रवेस बिसेष गिरि
देखत मन अनुरागत ॥
चहुँदिसि बन सम्पन्न बिहँग मृग
बोलत सोभा पावत ।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित
प्रजा सकल सुख छावत ॥
जल जुत बिमल सिलनि झलकत नभ
बन प्रतिबिम्ब तरङ्ग ।
मानहुँ जग रचना बिचित्र
बिलसति बिराट अँग अङ्ग ॥

(विनय-पत्रिका)

किसी समय तुलसीदास बारिपुर और दिगपुर भी गये थे । यह वह स्थान है, जहाँ वाल्मीकि मुनि का आश्रम था और जहाँ सीता का निर्वासन और लव-कुश का जन्म हुआ था ।—

जहाँ बालमीकि भये ब्याध तें मुनीन्द्र साधु,
मरा मरा जपे सुनि सिख ऋषि सात की ।
सीय को निवास लवकुस को जनम थल,
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की ।
बिटप महीप सुरसरित समीप सोहै,
सीतावट पेखत पुनीत होत पातकी ।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की ॥

(कवितावली)

वाल्मीकि-आश्रम के निवासियों की बोल-चाल और व्यवहार का भी उल्लेख तुलसीदास ने किया है।—

देवधुनि पास मुनिवास श्रीनिवास जहाँ,
प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को विराग को पुनीत पीठ,
रागिन पै सीठि दीठि बाहरी निहारिहैं।
'आयसु', 'आदेश', 'बाबा', 'भलो भलो', 'भावसिद्ध',
तुलसी विचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
राम भगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
सियबट सेये करतल फल चारि हैं॥

(कवितावली)

सम्मान

रामचरित-मानस जैसे चमत्कार-पूर्ण काव्य के रचयिता का सम्मानित होना स्वाभाविक ही है। तुलसीदास ने अपने सम्मान का अनुभव बार-बार किया है।—

केहि गिनती महँ गिनती, जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी, तुलसीदास॥

(बरवै रामायण)

घर घर माँगे टूक पुनि, भूपन पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब रामसहाय॥

(दोहावली)

हौं तो सदा खर को असवार
तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो।

(कवितावली)

यह केवल नम्रता-सूचक ही नहीं है, सोरों के लड़के गधे पर चढ़ते भी हैं। मारवाड़ में तो मैंने आमतौर से देखा है।

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भये भाँग ते, तुलसी तुलसीदास॥
(रामचरित-मानस)

वचन विकार करतबउ खुवार मन,
बिगत बिचार कलिमल को निधानु है।
तेऊ तुलसी को लोग भलो भलो कहैं—

*   *

रामनाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनी सों।

*   *

तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम राम! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥

*   *

छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद
खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है

*   *

साधु जानैं महा साधु।

*   *

कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।

*   *

जागैं भोगी भोग ही, बियोगी रोगी रोग बस
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के।
(कवितावली)

पतित पावन राम नाम सों न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो।
(विनय-पत्रिका)

लहै न फूटी कौड़िहू , को चाहै, केहि काज।
सो तुलसी मँहगो कियो , राम गरीब नेवाज॥
(दोहावली)

राम नाम के प्रभाव से तुलसीदास का प्रताप इतना बढ़ा कि राजा भी उनके पैर पूजने लगे थे। प्रतिष्ठा अधिक बढ़ जाने पर उनके भजन में बाधा पड़ने लगी थी। संभव है, मिलने-जुलने-वालों के लिए उन्हें अधिक समय देना पड़ता रहा हो। संयोग से उन्हीं दिनों उनके शरीर में फोड़े निकल आये। तब उनको अपनी सम्मान-लोलुपता पर बड़ी ग्लानि हुई थी।—

तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिन्धु अपने सुभाय को।
नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइगो,
बिहाय प्रभु भजन बचन मन काय को॥

* *

तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस,
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को॥
(कवितावली)

काशी-वास

तुलसीदास के जीवन के अन्तिम कई वर्ष लगातार काशी में बीते और अन्त में उनका स्वर्गवास भी वहीं हुआ। राम के भक्त होकर वे राम की राजधानी छोड़कर काशी क्यों आये? इसका उत्तर उनके ग्रन्थों से नहीं मिल सकता। दोहावली के कुछ दोहों में तीर्थ-स्थानों की तत्कालीन दशा का जो चित्र उन्होंने खींचा है,

उससे इतना अनुमान किया जा सकता है, कि उन दिनों अयोध्या में काशी की अपेक्षा अशान्ति अधिक थी और इसीसे वे अयोध्या छोड़कर काशी आगये होंगे ।—

सुर सदननि तीरथ पुरिन , निपट कुचालि कुसाज ।
मनहुँ मवासे मारि कलि , राजत सहित समाज ॥

गोंड़ गँवार नृपाल महि , यमन महा महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि , केवल दण्ड कराल ॥

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन , लागे अढुक पहार ।
कायर कूर कपूत कलि , घर घर सहस।डहार ॥

वे काशी कब आये ? इसका कोई ठीक समय नहीं बताया जा सकता । पर यह निश्चित है कि वृद्धावस्था में अन्तिम बार काशी आकर वे फिर कहीं नहीं गये । काशी में शरीर छोड़ने ही की लालसा से वे आये थे ।—

जीव जहान में जायो जहाँ
सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है ।
दोष न काहू कियो अपनो
सपनेहु नहीं सुख लेस लहो है ।
राम के नाम तें होउ सो होउ
न सोऊ हिये रसना ही कहो है ।
कियो न कछू करिबो न कछू
कहिबो न कछू मरिबोई रहो है ॥

(कवितावली)

जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहिं
मालुम है तोहिं मरिबोई को रहतु हैं ।

(कवितावली)

तुलसीदास रुद्रबीसी के समय में काशी में थे, जो सं० १६६५ से १६८५ तक थी।---

अपनी बीसी आपुही, पुरिहि लगाये हाथ।

(दोहावली)

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी।

(कवितावली)

उस समय शनैश्चर भी मीन राशि पर था।---

कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।

(कवितावली)

मीन राशि पर शनैश्चर की स्थिति का योग सं० १६६६ के प्रारम्भ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तुलसीदास सं० १६६६ से सं० १६७१ के बीच किसी समय काशी में ज़रूर थे।

काशी में तुलसीदास का निवास-स्थान

काशी में तुलसीदास गंगा-तट पर रहते थे और प्रत्येक दिन गंगा-स्नान और गङ्गा-जल-पान करते थे।---

भागीरथी जलपान करौं अरु
नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।

(कवितावली)

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर!
पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं॥

(कवितावली)

तुलसीदास की काशी

काशी में तुलसीदास को सुख नहीं मिला। पहले उन्हें मानसिक और फिर शारीरिक कष्ट भोगने पड़े। काशी के शैवों और

गोसाइयों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। संभवतः राम-भक्त तुलसीदास का बढ़ा हुआ और बढ़ता हुआ सम्मान ही उनके उद्वेग का मूल कारण था।

राजा राम के दास होकर भी वे शिवजी का सुयश सुनकर काशी चले गये थे। पर शिव के भक्तों ने उनको इतना कष्ट दिया कि नम्रता और क्षमा की मूर्ति तुलसीदास की मनोव्यथा असह्य हो उठी और उन्होंने उसकी शिकायत शिवजी से की।—

देवसरि सेवौं बामदेव गाँउ रावरेही
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं।
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर देवे दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहिं
काल कला काशीनाथ कहे निबरत हौं॥

(कवितावली)

अगले कवित्त में वे शिव-सेवकों के विविध रूप का वर्णन करके अपने को उनके मुक़ाबले में बिलकुल असमर्थ बताते और शङ्कर और पार्वती से प्रार्थना करते हैं कि किसी तरह उनका पिंड छुड़ाइये।—

भूतभव ! भवत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनो समाज सिव आपु नीके जानिये।
नाना वेष बाहन बिभूषन बसन बास
खानपान बलि पूजा बिधि को बखानिये।
राम के गुलामनि की रीति-प्रीति सूधी सब
सबसों सनेह सबही को सनमानिये।

तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये ॥
(कवितावली)

उनका आदर-सत्कार देखकर आसपास के शिव-सेवक उनसे ईर्ष्या करते और उन्हें कष्ट भी पहुँचाते रहे। तुलसीदास ने तत्कालीन साधुओं, गोसाइयों और नाथों की कड़ी आलोचना की है।—

कीबे कहा, पढ़िबे को कहा,
फल बूझि न बेद को भेद बिचारैं।
स्वारथ को परमारथ को
कलि कामद राम को नाम बिसारैं।
बाद-बिवाद विषाद बढ़ाइ कै
छाती पराई और आपनी जारैं।
चारिहु को छहु को नव को दस
आठको पाठ कुकाठ ज्यों फारैं ॥
(कवितावली)

* *

आगम वेद पुरान बखानत
मारग कोटिन्ह जाहिं न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपुको
ईस कहावत सिद्ध सयाने ॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे
जप जोग बिराग लै जीव पराने।
को करि सोच मरै तुलसी
हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ॥
(कवितावली)

उनको उन्होंने शठ, गँवार, गधे, सुअर और कुत्ते से भी गया बीता, बिना सींग-पूँछ का पशु भी कहा है ।—

तिन्ह ते खर सूकर स्वान भले
जड़ता बस ते न कहैं कछु वै ।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं
सो सही पसु पूँछ बिखान न द्वै ।
जननी कत भार मुई दस मास
भई किन बाँझ गई किन च्वै ।
जरि जाइ सो जीवन जानकीनाथ
जियै जग मों तुम्हरो बिन ह्वै ॥
(कवितावली)

यह छन्द तो ख़ूब खिसियाकर ही लिखा गया है । 'भई किन बाँझ गई किन च्वै' का 'च्वै' तो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है और उसने कवि को साधारण कोटि के लोगों में लाकर खड़ा कर दिया है । इससे कवि की तत्कालीन विक्षुब्ध मनोदशा का अनुमान सहज में किया जा सकता है ।

'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग संत कहंत जे अंत लहा है,' इस प्रकार संसार को झूठा कहनेवाले संतों को 'जे अन्त लहा है' कहकर उन्होंने ताना भी मारा है । और 'काढ़त दंत करंत हहा है', कहकर उनकी खिल्ली भी उड़ाई है ।—

झूठो है झूठो है झूठो सदा जग।
संत कहंत जे अन्त लहा है ।
ताको सहै सठ संकट कोटिक
काढ़त दंत करंत हहा है ।
जानपनी को गुमान बड़ो
तुलसी के बिचार गँवार महा है ।

जानकी जीवन जान न जान्यो
तौ जान कहावत जान्यो कहा है ॥
(कवितावली)

किसी व्यक्ति को 'झूठो है' तीन बार कहने से यह प्रकट है, कि वे बहुत झुँझलाये हुये थे और अन्त में उन्होंने उसे गँवार कहकर संतोष लाभ किया था। 'काढ़त दंत करंत हहा है', किसी ख़ास व्यक्ति ही के लिए लिखा गया होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि काशी में उनका यह दैनिक संघर्ष था, जो उन्हें सुख से भजन नहीं करने देता था।

बहुत दुःखी होकर तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' लिखनी शुरू की। उसमें गणेश की स्तुति के बाद ही शिव की स्तुति है। आठवें ही पद तक पहुँचते-पहुँचते उन्होंने अपनी तत्कालीन शिकायत शिवजी के समक्ष पेश कर ही तो दी।—

गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे ॥
(विनय-पत्रिका)

इससे प्रकट होता है कि शिव के किंकरों ने तुलसीदास को कोई शारीरिक कष्ट पहुँचाया था। संभवतः उन्हें मारा-पीटा हो। उन्होंने शिवजी से प्रार्थना की थी कि कृपया अपने सेवकों को रोकिये कि वे अपना कठोर कर्म बन्द करें। पर प्रार्थना करते हुये भी वे इतने क्रुद्ध थे कि शिवजी के किंकरों को 'शठ' कहते ही जाते थे। पता नहीं, शिवजी ने इसे कितना पसन्द किया होगा। ऐसे देवता-पुरुष का जीवन उस समय कैसे संकट में था, इसे तो आज स्मरण करके हृदय भर आता है।

तुलसीदास की बढ़ती हुई कीर्त्ति उनके विरोधियों को और भी उत्तेजित करने लगी। इससे वे उनकी जाति-पाँति के सम्बन्ध में भी उनसे पूछताछ करने और मनचाहा उत्तर न पाकर उनके विषय में अनेक अपमान-जनक बातें फैलाने लगे। उन्हें सुनकर परम विरक्त और केवल मरने ही के लिये काशी में आये हुये तुलसीदास भी विक्षुब्ध हो उठते होंगे, इसमें संदेह ही क्या है? उन्होंने प्रतिद्वन्द्वियों को जो उत्तर दिया है, उससे उनकी झुँझलाहट पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

धूत कहौ अवधूत कहौ
रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब
काहूकी जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को
जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो मसीत में सोइबो
लैबे को एक न दैबे को दोऊ॥

(कवितावली)

'क्या मुझे किसीकी बेटी से अपना बेटा ब्याहना है?' यह बात पूर्ण आवेश ही में कही जाती है। मालूम नहीं, लोग उनकी जाति-पाँति के पीछे क्यों इतने पड़े थे; और तुलसीदास भी उसे छिपाते क्यों थे?

मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति-पाँति,
मेरे कोऊ काम को न मैं काहू के काम को।
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को।

अतिही अयाने उपखानो नाहिं बूझैं लोग
साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को।
साधु कै असाधु कै भलो कै पोच सोच कहा
का काहू के द्वार परौं जो हौं सो हौं राम को॥
(कवितावली)

'साह ही के गोत गोत होत है गुलाम को', का अभिप्राय यही जान पड़ता है कि वे किसी को अपनी जाति-पाँति नहीं बताते थे। स्मार्त वैष्णव होने के कारण सब प्रकार के साधुओं से वे भेदभाव कम रखते थे, इसीसे काशी के शैवों में वे आदर नहीं पाते रहे होंगे। लोग उनके लिये भली और बुरी दोनों तरह की सम्मतियाँ रखते थे।—

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महासाधु खल जानैं महाखल
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।
चहत न काहू सों न कहत काहूको कछु
सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है॥
(कवितावली)

इसमें शक नहीं, वे सबकी सहते थे, और न सहते तो करते ही क्या? पर उनके मन में ऊब नहीं थी, यह कहाँ तक सच हो सकता है? जब कि वे कह रहे हैं कि जो खल है, वही, उनको महाखल समझता है।

उन दिनों काशी में राज-प्रबन्ध बहुत शिथिल हो रहा था। दिन में डाके पड़ते थे और रात को चोर लगते थे। संभवतः

तुलसीदास पर यह विपत्ति पड़ चुकी थी; क्योंकि वे शिवजी से प्रार्थना करते हैं कि कृपा करके अपने पुर में रहने दीजिये।—

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँदिसि चोर।
संकर निजपुर राखिये, चितै सुलोचन कोर॥

(दोहावली)

काशी में गोरख-पंथियों का प्राबल्य उन दिनों बहुत था। वे धर्म-क्षेत्र में अपना अधिकार जमाये हुये थे। संत मतवालों का उदय-काल था। उनसे भी तुलसीदास का संघर्ष चलता था।—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते सो कलिही छरो सो है।

(कवितावली)

साखी सबदी दोहरा, कहि किहिनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान॥

* *

स्रुति संमत हरिभक्ति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिं बिमोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक॥

* *

सुरसदननि तीरथपुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥

(दोहावली)

मंदिरों और तीर्थों की दशा तब भी वैसी ही थी, जैसी आज है। देश में गोंड राजा थे, यवन सम्राट् था। यवन लोग मूर्तियों के धोखे सिल और बट्टे तक को फोड़ डालते थे। केवल दंड ही न्याय का स्वरूप रह गया था।—

गोंड गँवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

* *

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागे अढुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर घर सहस डहार॥
(दोहावली)

काशी मे वर्णाश्रम-धर्म का आदर नहीं रह गया था। अधर्म के भय से जनता में भगदड़-सी मच गई थी। बुरी वासनाओं ने कर्म और उपासना को नष्ट कर दिया था। ज्ञान की कोरी बातों और वैरागियों-जैसे वेष ने जगत् का विवेक हर लिया था। गोरखनाथ ने जोग क्या जगाया, लोगों के हृदय से भक्ति ही भगा दी थी। वेदों और पुराणों के मार्ग को छोड़कर लोग करोड़ों कुमार्गों पर चल रहे थे। राज-दर्बार बड़ा छली होगया था। न चारों वर्णों का भेद रह गया था, न आश्रम-धर्म ही शेष था। संसार को दुःख, दोष और दरिद्रता ने दबा लिया था।—

बरन धरम गयो आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो ज्ञान
वचन बिराग बेस जगत हरो सो है।
गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते सो कलिही छरो सो है।
काय मन वचन सुभाय तुलसी है जाहि,
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है॥

* *

वेद पुरान बिहाइ सुपंथ
कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन
राज-समाज बड़ोई छली है।
बर्न बिभाग न आस्रम धर्म
दुनी दुख दोष दरिद्र दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि
राम को नाम प्रताप बली है॥
(कवितावली)

धर्म की तो यह दशा थी; धन की दशा इससे भी भयानक थी। पेट की ज्वाला में मजूर, किसान, व्यवसायी और भिखमंगे सभी जल रहे थे।—

किसबी किसान कुल बनिक भिखारी भाँट,
चाकर चपल नट चोर चार चेटकी।
पेट को पढ़त गुन गढ़त चढ़त गिरि,
अटत गहन बन अहन अखेट की।
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी।
तुलसी बुझाइ एक राम घनश्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की॥
(कवितावली)

* *

समय ऐसा बुरा आगया था कि न तो किसान को खेती का काम मिलता था, न भिक्षुक को भीख मिलती थी। न व्यापारी के लिये व्यापार था, न नौकर के लिये नौकरी। जीविका-हीन

होकर लोग चिन्ताग्रस्त थे और एक दूसरे से पूछ रहे थे कि वे कहाँ जाय ? और क्या करें ?—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी ॥
(कवितावली)

दुष्ट स्वभाव के लोग पूरे स्वच्छंद हो रहे थे। वे नीचों का आदर करते और सत्पुरुषों को कष्ट पहुँचाते थे। वे स्वयं ऐसे दरिद्र थे कि चने चबाकर हाथ चाटते थे, पर हरिश्चन्द्र और दधीच को भी गाली देते थे। स्वयं तो वे महा पापी होते थे, पर विष्णु और शिव का भी मज़ाक उड़ाते थे और स्वयं भाग्यहीन होते हुये भी भाग्यवानों को फटकारते थे।—

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत
रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु हैं।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हूँ को
आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु हैं।
आप महापातकी हँसत हरि हरहू को
आपु हैं अभागी भूरिभागी डाटियतु हैं ॥
(कवितावली)

काशी में कलियुग की विकरालता देखकर तुलसीदास बहुत व्यथित हुये थे। उन्होंने शिवजी से ज़ोरदार शब्दों में प्रार्थना की थी।—

गौरीनाथ भोलानाथ भवत भवानीनाथ
विश्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की

संकर से नर गिरिजा सी नारी कासी बासी
बेद कही सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग
बिकल बिलोकियत नगरी बिहाल की।
पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारिये उघारि डीठि भाल की॥

*   *

ठाकुर महेस ठकुराइनि उमा सी जहाँ
लोक बेदहू विदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन भूत गनपति सेनापति
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी॥
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी
बूझिये न ऐसी गति संकर सहर की।
कैसे कहै तुलसी वृषासुर के बरदानि
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की॥
(कवितावली)

काशी में महामारी

उन्हीं दिनों काशी में महामारी का भी प्रकोप हुआ था। यद्यपि उसका कोई ठीक सन्-संवत् नहीं मिलता, पर तुलसीदास के वर्णनों में महामारी के प्रकोप की स्पष्ट छाया विद्यमान है। यह महामारी जहाँगीर के राजत्वकाल (सं० १६७३ से १६८१) में प्रकट हुई थी। हिन्दुस्तान का कोई भी हिस्सा इस बीमारी से नहीं बचा था। वाक़यात जहाँगीरी और इक़बालनामा जहाँगीरी में इसका विस्तृत वर्णन है।

आगरे में यह बीमारी सं० १६७३ में प्रकट हुई और शीघ्र ही आसपास के गाँवों और ज़िलों में फैल गई। तुलसीदास लिखते

हैं कि जब मीन राशि पर शनैश्चर था, उस समय (सं० १६६६-१६७१) काशी में महामारी का प्रकोप ज़ोरों पर था। अतएव अब तो यही मानना पड़ेगा कि यह रोग आगरे से पहले काशी में प्रकट हुआ था।

आगरे की महामारी का वर्णन सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास ने अपने अर्द्धकथानक में इस प्रकार किया है।—

इस ही समै ईति बिस्तरी।
परी आगरे पहिली मरी॥
जहाँ तहाँ सब भागे लोग।
परगट भया गाँठ का रोग॥
निकसै गाँठि मरै छिन माहिं।
काहू की बसाय कछु नाहिं॥
चूहे मरैं वैद्य मरि जाहिं।
भय सो लोग अन्न नहिं खाहिं॥

बनारसीदास जौनपुर के निवासी थे। उनका जन्म सं० १६४३ में हुआ था। आगरे की पहली महामारी अर्द्ध-कथानक के अनुसार सं० १६७३ में पड़ी थी। जहाँगीर के इतिहास-लेखक भी यही समय बताते हैं।

तुलसीदास ने कवितावली में बड़े ही मार्मिक शब्दों में काशी की महामारी का वर्णन किया है और उसे हटाने के लिये देवताओं की स्तुति भी की है। उन्होंने पार्वती से प्रार्थना की।—

रचत बिरञ्चि, हरि पालत, हरत हर,
तेरे ही प्रसाद जग अग जग पालिके।
तोहि में बिकास बिस्व, तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके॥

दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना तरङ्गिनी कृपातरङ्ग-मालिके।
रोष महामारी परितोष, महतारी! दुनी
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके॥

* *

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर
नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु,
लोभ मोह काम कोह कलिमल घेरे हैं।
लोकरीति राखी, राम साखी, बामदेव जान
जन की बिनति मानि मातु कही 'मेरे' हैं।
महामारी महेशानि महिमा की खानि, मोद
मङ्गल की रासि, दास कासी-बासी तेरे हैं॥

फिर उन्होंने रामचन्द्र से विनती की और हनुमानजी को प्रोत्साहित किया।—

संकर सहर सर नरनारि बारिचर
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगत जल थल मीचुमई है।
देवन दयालु महिपाल न कृपालु चित
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है॥

* *

देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे
भोरानाथ जानि भोरे आपनीसी ठई है।

करुनानिधान हनुमान बीर बलवान
जस रासि जहाँ तहाँ तैंही लूटि लई है ॥
(कवितावली)

जब किसी देवता ने तुलसीदास की न सुनी, तब अन्त में उन्होंने फिर अपने राम की शरण ली।—

बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो
प्रानहूँ ते प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप लिंगमई अगनित लिंगमई
मोच्छ बितरनि बिदरनि जग जाल की।

* *

हाहा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की ॥
(कवितावली)

स्तुति-प्रार्थनाओं का कुछ भी वांछित परिणाम न पाकर तुलसीदास ने फिर भी प्रार्थना नहीं छोड़ी। उन्होंने कहा—चारों आश्रम और वर्ण कलियुग के वश में होकर विकल हो रहे हैं। शिवजी क्रुद्ध हैं, यह महामारी ही से जाना जाता है। मालिक नाराज़ हो, तो दुनिया तो दिन-दिन दरिद्र होती ही जायगी। स्त्री-पुरुष आर्त्त होकर पुकार रहे हैं, कोई सुनता ही नहीं। जान पड़ता है, किसी ने देवताओं से मिलकर जादू कर दिया है।

आस्रम बरन कलि बिबस बिकल भय
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोस महामारि ही ते जानियत
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारिदी।

नारि नर आरत पुकारत सुनै न कोऊ
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी ॥
(कवितावली)

अन्त में रामचन्द्र ने प्रार्थना पर कान देकर अपनी करुणा को संकेत कर दिया और महामारी चली गई।—

तुलसी सभीत पाल सुमिरे कृपालु राम
समय सुकरुना सराहि सनकार दी।

पर यह बीमारी काशी में कितने समय तक रही, इसका उल्लेख उनके किसी छन्द में नहीं मिलता।

तुलसीदास की पहली बीमारी

जान पड़ता है, महामारी के दिनों में तुलसीदास भी बीमार हुये थे। उन्होने वामदेव से अपने शरीर को नीरोग करने के लिये प्रार्थना की थी।—

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर
पाइँ तर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं।
बामदेव राम को सुभाव सील जानि जिय
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं।
अविभूत बेदन बिषम होत भूतनाथ
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीबास खास फल
ज्याइये तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं॥
(कवितावली)

पर कष्ट अधिक बढ़ता ही गया। तब अधिक व्यथित होकर उन्होंने फिर शिवजी से प्रार्थना की—

जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहिं
मालुम है तोहिं मरिबेई को रहतु हौं।

* *

रोग भयो भूत सों कुसून भयो तुलसी के।
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं।
ज्याइये तौ जानकीरमन जन जानि जिय
मारियै तो माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं॥
(कवितावली)

जिस समय यह पीड़ा हुई थी, वह वर्षा-काल था। घटा घिरी थी, पानी बरस रहा था।

घेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यों
बासर जलद घनघटा धुकि धाई है।
(कवितावली)

जिस समय यह छन्द लिख रहे थे, उस समय पानी बरस रहा था।—

बरसत बारि पीर जारिये जवासे जस
रोष बिन दोष धूममूल मलिनाई है।
(कवितावली)

यह बीमारी उन्हें कबतक रही, इसका पता नहीं चलता; पर इस बीमारी से तुलसीदास मरते-मरते बचे। रोगों ने उन्हें खा ही डाला होता, यदि हनुमानजी ने ज़बरदस्ती उन्हें न बचा लिया होता।—

खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।
(कवितावली)

तुलसीदास की दूसरी बीमारी

पहली बार की बीमारी मे तुलसीदास को कई रोगों ने घेर लिया था और उनके विश्वास के अनुसार हनुमानजी की कृपा से वे उनसे बच गये थे। पर दूसरी बार की बीमारी पहले-पहल बाहु-मूल मे प्रकट हुई। यह कब हुई? पहली बीमारी के कितने समय पश्चात् हुई? यह अविदित है। उन्होंने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि मेरी बाँह की पीड़ा दूर कीजिये, मैं आर्त्त होकर पुकार रहा हूँ, किसी तरह बचा लीजिये; मैं लूला ही होकर दरबार में पड़ा रहूँगा।—

बाँह की बेदन बाँहपगार पुकारत आरत आनंद भूलो।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो।
(कवितावली)

पर वे समझ न सके कि उनकी पीड़ा का मूल कारण क्या था। उसे कभी वे काल की करालता, कभी भाग्य का दोष और कभी पाप का प्रभाव समझते रहे, और कभी स्वाभाविक बात-व्याधि मानते रहे।—

काल की करालता करम कठिनाई की धौं
पाप के प्रभाव की सुभाय बाय बावरे।
(कवितावली)

उनकी उसी बाँह मे रात दिन असह्य पीड़ा रहती थी, जिसे कभी हनुमानजी ने पकड़ी थी।—

बेदन कुभाँति सो सही न जाति रातिदिन
सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे॥
(कवितावली)

बाँह की पीड़ा बढ़ते-बढ़ते सारे शरीर में व्याप्त होगई।—

पाँय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहिं पर दवरि दमानक सी दई है॥
(कवितावली)

तुलसीदास ने सब देवताओं से प्रार्थनायें की, पर जब किसी ने उनकी नहीं सुनी, तब उन्होंने अपनी ही भर्त्सना की।—

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
रामनाम लेत माँगि खात टूकटाक हौं।
पर्‌यो लोकरीति में पुनीत प्रीति राम राय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं।
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार सोध्यो रामपानि पाक हौं।
तुलसी गुसाईं भयो भोंड़े दिन भूलि गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं॥
(कवितावली)

पहले वे भोजन-वस्त्र-विहीन और दुःख-सागर में निमग्न रहते थे। उनकी दुर्बलता और दीनता देखकर लोग हाय-हाय करते थे। रामचन्द्र ने उन्हें सनाथ किया; पर जब सम्मान बढ़ा, तब तुलसीदास को घमंड हो आया। वे समझते थे कि उसी घमंड का यह फल था, जो सारे शरीर में फोड़े के रूप में निकल आया था।—

असन बसन हीन, विषम विषाद लीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को ?
तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो
दियो फल सील सिंधु आपने सुभाय को।

नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइगो
बिहाय प्रभु भजन बचन मन काय को।
तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को ॥

सारे शरीर में पीड़ा व्याप्त हो जाने के बाद उसमें फोड़े भी निकल आये। उनकी वेदना से व्यथित होकर उन्होंने सब देवताओं की फिर स्तुतियाँ की; पर किसी ने उनकी न सुनी। तब वे सबसे निराश होगये और केवल रघुनाथजी की कृपा की राह देखने लगे।—

जीवौं जग जानकी जीवन को कहाय जन
मरिबे को बारानसी बारि सुरसरि को।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको ॥
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब
मेरे मन मान है न हर को न हरि को।
भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ॥
(कवितावली)

पीड़ा बढ़ती ही गई और अन्त में वे फिर सीतापति, भोलानाथ और कपिनाथ की प्रार्थना में निमग्न हुये।—

सीतापति साहेब सहाय हनुमान नित
हित उपदेस को महेस मानो गुर कै।

* *

व्याधि भूत जनित उपाधि काहू खल की
समाधि कीजै तुलसी को जानि जन फुर कै।

कपिनाथ रघुनाथ भोलानाथ भूतनाथ
रोगसिंधु क्यों न डारियत गाय खुर कै ॥
(कवितावली)

जान पड़ता है, तुलसीदास को इस बात का शक था कि उनकी पीड़ा किसी खल-द्वारा की हुई उपाधि से सम्बन्ध रखती है। तभी तो वे जानना चाहते थे कि उनकी वह व्याधि भूत-जनित थी, या किसी खल की उपाधि-जनित ? अब क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि उन्हें किसी ने विष दे दिया हो ?

वे हनुमान, राम और शङ्कर पर अन्त तक विश्वास रखे रहे; पर उनमें से किसी ने उनकी प्रार्थना का कोई उत्तर नहीं दिया। पीड़ा बढ़ती ही गई। पीड़ा की वृद्धि के साथ देवताओं पर से उनका विश्वास भी उठने-सा लगा था। हनुमानजी से उन्होंने कहा।—

आपने ही पाप तें त्रिताप तें कि साप तें,
बढ़ी है बाहुबेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जन्त्र मन्त्र टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है।
चेरो तेरा तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी बीर मोंहि पीर ते पिराति है॥
(कवितावली)

अन्तिम चरण में तुलसीदास ने कैसी व्याकुलता व्यक्त की है ! पर हनुमानजी ने फिर भी कान नहीं दिया। एक लंबी आयु व्यतीत कर लेने पर तब तुलसीदास को देवताओं की शक्ति का पता चला कि देवता व्यर्थ होगये, यह बीमारी तो देवताओं की स्तुति-प्रार्थना से और प्रबल होती है।

अन्त में उन्होंने यह लिखकर कि 'जैसा बोया था, वैसा काटेंगे' क़लम रख दी।—

कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों,
कृपानिधान संकर सों सावधान सुनिये।
हरष बिषाद राग रोष गुन दोषमई,
बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिये।
माया जीव काल के करम के सुभाय के,
करैया राम बेद कहैं साँची मन गुनिये।
तुमतें कहा न होय, हाहा सो बुझैये मोहिं,
हौंहूँ रहौं मौनही, बयो सो जानि लुनियें॥
(कवितावली)

यही लिखकर वे मौन होगये। पता नहीं, इसी रोग से उनका देहावसान हुआ, या अन्य किसी कारण से। पर चमत्कारों की चर्चा में मूड़ मारनेवाले लोगों को यहाँ तो इस बात पर विचार कर ही लेना चाहिये कि जो तुलसीदास मुर्दे को ज़िन्दा कर सकते थे, वे अपने निजी रोग के निवारण में कितने असमर्थ थे।

भुज-मूल की व्यथा की चर्चा उन्होंने दोहों में भी की थी। ऐसे तीन दोहे दोहावली में मिलते हैं।—

तुलसी तनु सर सुख सजल , भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये , कपि केसरी किसोर॥

भुज तरु कोटर रोग अहि , बरबस किये प्रबेस।
बिहँगराज-बाहन तुरत , काढ़िय मिटइ कलेस॥

बाहु बिटप सुख बिहँग थलु , लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिये , बेगि दीन हित लागि॥

तुलसीदास का शरीर-सम्बल

तुलसीदास का शरीर सुन्दर था, इसे वे कई स्थानों पर स्वीकार करते हैं और उन्हें भारत-भूमि में जन्म लेने का अभिमान भी था ।—

दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर

(विनय-पत्रिका)

भलि भारत भूमि भले कुल जन्म
समाज सरीर भलो लहि कै ।

(कवितावली)

वृद्धावस्था में उनके सिर पर बाल नहीं रह गये थे ।—

ऊँचो मन ऊँची रुचि भाग नीचो निपट ही
लोक रीति लायक न लंगर लबारु है ।
स्वारथ अगम परमारथ की कहा चली
पेट की कठिन जग जीव को जवारु है ॥
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख
जानत न कूर कछु किसब कबारु है ।
तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम नतु
भेंट पितरन कों न मूँड़ हू में बारु है ॥

(कवितावली)

तुलसीदास की
जनश्रुति-सञ्चित और कल्पना-प्रसूत जीवनी

ऊपर तुलसीदास के ग्रन्थों से उनकी जो कुछ जीवनी निकल सकती थी, उसे हमने निकाल लिया है। पर उतने से तो वह बिल्कुल ही अधूरी रह जाती है। अतएव विवश होकर हमें जनश्रुति और कल्पना का सहारा लेना ही पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा आधार हमें तुलसीदास के समकालीन और बाद के कवियों और लेखकों के उन ग्रन्थों से प्राप्त होता है, जिनमें तुलसीदास की चर्चा की गई है। उनमें जो ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, वे ये हैं।

१—भक्तमाल (नाभादासजी)
२—दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता (गोकुलनाथजी)
३—भक्तिरस-बोधिनी—भक्तमाल की टीका (प्रियादासजी)
४—भक्त-कल्पद्रुम (राजा प्रतापसिंह)
५—भक्तमाल (महाराजा विश्वनाथसिंह)
६—राम-रसिकावली (महाराजा रघुराजसिंह)
७—शिवसिंह-सरोज (शिवसिंह सेंगर)
८—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित (रानी कमल-कुँवरिजी)
९—नोट्स ऑन तुलसीदास (सर जार्ज ग्रियर्सन)
१०—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित (बैजनाथदास)
११—तुलसी-चरित्र (रघुबरदास)
१२—मूल गोसाईं-चरित (वेणीमाधवदास)

इनमें से प्रत्येक का साधारण परिचय यहाँ दिया जाता है।—

भक्तमाल

भक्तमाल की रचना सं० १६४२ के बाद नाभादासजी ने की थी। इसमे १९५ छप्पय, आदि, मध्य और अन्त के मिलाकर कुल १७ दोहे और १ कुण्डलिया हैं। नाभादासजी तुलसीदास के समकालीन थे। उन्होंने तुलसीदास के लिये वर्त्तमान-काल की क्रिया का प्रयोग किया है। पर खेद है कि उनका वर्णन इतना संक्षिप्त है कि उससे हम केवल इतनी ही जानकारी प्राप्त कर सकते हैं कि तुलसीदास उनके समय में विद्यमान थे। तुलसीदास के संबन्ध में भक्तमाल में केवल येही पंक्तियाँ मिलती हैं।—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।
त्रेता काव्य निबन्ध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तन सुखदेन बहुरि बपु धरि (लीला) बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता

यह पुस्तक गोस्वामी गोकुलनाथजी की लिखी हुई है, जो श्रीवल्लभाचार्यजी के पौत्र थे। श्रीवल्लभाचार्यजी, प्रियादास के कथनानुसार, सं० १५७७ में हुये थे। गोकुलनाथजी का जन्म सं० १६०८ में हुआ था। वे १६६८ तक जीवित रहे। अतएव सं० १६८० तक तुलसीदास और वे समकालीन थे। अपनी वार्ता में नन्ददास का वर्णन करते हुये उन्होंने तुलसीदास की

भी चर्चा की है। यहाँ हम उसका कुछ आवश्यक अंश उद्धृत करते हैं।—

"सो वे नन्ददास पूर्व रहते, सो वे दोय भाई हते। सो बड़े भाई तुलसीदास हते और छोटे भाई नन्ददास हते, सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते।

'नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई हते। सो विनकूँ नाच तमाशा देखबे को तथा गान सुनबे को शौक बहुत हतो। सो वा देश में सूँ एक संग द्वारका जात हतो। जब विननें तुलसीदास सूँ पूँछी, तब तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हते। जासूँ विननें द्वारका जायबे की नाहीं कही। सो मथुरा सूधे गये। मथुरा में वा संग कूँ बहुत दिन लगे सो नन्ददास संग कूँ छोड़कर चल दीने।

* *

'सो तब कितनेक दिन में वह संग काशी में आन पहूँच्यो, तब नन्ददास के बड़े भाई तुलसीदास हते, सो तिनने सुनी, जो यह संग श्रीमथुराजी को आयो है। तब तुलसीदास ने वा संग में आय के पूछ्यो। जो वहाँ श्रीमथुराजी श्रीगोकुल में नन्ददास करि के एक ब्राह्मण यहाँ सो गयो है, सो पहले वहाँ सुन्यो हतो, सो काहू ने देख्यो होय, तो कहौ। तब एक वैष्णव ने तुलसीदास सों कही, जो एक सनौढ़िया ब्राह्मण है, सो ताको नाम नन्ददास है, सो वह पढ़यो बहुत है, सो वह नन्ददास तो श्रीगुसाईं जी को सेवक भयौ है।

* *

'सो एक दिन नन्ददासजी के मन में ऐसी आई, जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है, सो हमहूँ श्रीमद्भागवत

भाषा करें। ये बात ब्राह्मण लोगन ने सुनी तब सब ब्राह्मण मिलके श्रीगुसाईंजी के पास गये। सो ब्राह्मणों ने बीनती करी। जो श्रीमद्भागवत भाषा होयगी तो हमारी आजीविका जाती रहेगी। तब गुसाईंजी ने नन्ददासजी सुँ आग्या करी। जो तुम श्रीमद्भागवत भाषा मत करो और ब्राह्मणन के क्लेश में मत परो। ब्रह्म-क्लेश आछो नहीं है और कीर्तन करके ब्रजलीला गाओ।

'सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदास हते। सो काशीजी सूँ नन्ददासजी कूँ मिलबे के लिए ब्रज में आये। सो मथुरा में आयके श्री जमुनाजी के दर्शन करे। पाछे नन्ददासजी की खबर काढ़ के श्रीगिरिराजजी गये उहाँ तुलसीदासजी नन्ददासजी कुँ मिले।"

नन्ददास के सम्बन्ध में नाभादासजी यह छप्पय लिखते हैं।—

लीला पद रसरीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रसगान उजागर॥
प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्ति पद रेनु उपासी॥
चंद्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पै मै पगे।
श्री नन्ददास आनन्दनिधि रसिक सुप्रभु हित रँग मँगे॥

यदि तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई मान लिये जायँ, जैसा "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" में लिखा है, तो उपरोक्त छप्पय के अनुसार वे भी रामपुर गाँव के निवासी और शुक्ल ब्राह्मण ठहरते हैं और उनके एक तीसरे भाई चन्द्रहास भी कम महत्व के नहीं ठहरते; क्योंकि नाभाजी ने नन्ददासजी की एक विशेषता यह भी बताई है कि वे चन्द्रहास के बड़े भाई थे।

भक्ति-रस बोधिनी

(भक्तमाल की टीका)

प्रियादास ने अपने गुरु के आदेशानुसार सं० १७६६ में भक्तमाल की टीका लिखी, उसमें सब मिलाकर ६३४ कबित्त हैं। टीका और मूल दोनों मिलाकर उसमें ३७४६ पंक्तियां हैं। यद्यपि प्रियादास उसे टीका कहते हैं, पर वास्तव में वह टीका नहीं, मूल का स्वेच्छापूर्वक विस्तार है। प्रियादास अपनी उस टीका के विषय में लिखते हैं।—

संवत् प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर
फालगुन मास बदी सप्तमी बिताइ कै।
नारायनदास सुखरासि भक्तमाल लैके
प्रियादास-दास उर बसौ रहौ छाइ कै।

* *

नाभाजू को अभिलाष पूरन लै कियो मैं तो—

* *

ताही समै नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि
टीका बिस्तारि भक्तमाल की सुनाइए।

इस 'टीका' में प्रियादास ने तुलसीदास के संबंध की सुनी-सुनाई बातें पद्य-बद्ध कर दी हैं। उससे केवल इतना ही जाना जा सकता है कि सं० १७६६ में तुलसीदास के विषय में कितनी और कैसी किम्बदन्तियाँ जनता में फैली हुई थीं। यद्यपि आज की अपेक्षा सवा दो सौ वर्ष पहले की बातें अधिक मूल्य अवश्य रखती हैं, पर फिर भी इतिहास की कसौटी पर जब वे ठीक उतरें, तभी मान्य हो सकती हैं।

प्रियादास के कबित्त, जो तुलसीदास के सम्बन्ध के हैं, यहाँ दिये जाते हैं:—

"निसा सो सनेह बिन पूछे पिता गेह गई
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आए हैं।
बधू अति लाज भई, रिस सों निकस गई,
'प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं' ॥
सुनी जग बात मानों ह्वै गयो प्रभात वह
पाछे पछिताय तजि काशीपुर धाए हैं।
कियो तहाँ बास प्रभु सेवा लै प्रकास कीनो
लीनो दृढ़ भाव नेम रूप के तिसाए हैं ॥ २०० ॥

शौच जल शेष पाइ भूत हू विशेष कोऊ
बोल्यो सुख मानि हनुमानजू बताए हैं।
'रामायन कथा सो रसायन है कानन को
आवत प्रथम, पाछे जात, घृणा छाए हैं ॥'
जाइ पहिचानि सङ्ग चले उर आनि आए
बन मध्य जानि धाइ पाइ लपटाए हैं।
करें सीतकार, कही 'सकोगे न टारि मैं तो
जाने रस सार' रूप धरयो जैसे गाए हैं ॥ २०१ ॥

'माँगि लीजे बर' कही—'दीजै राम भूप रूप
अतिही अनूप नित नैन अभिलाखिये'।
कियो लै संकेत वाहि दिन ही सौं लाग्यौ हेत,
आई सोई समै चित चेत कबि चाखिये।
आये रघुनाथ साथ लछुमन चढ़े घोड़े
पर रङ्ग बोरे हरे कैसे मन राखिये।
पाछे हनुमान आये बोले 'देखे प्रान प्यारे'?
'नेकु न निहारे मैं तो' 'भले फेरि' भाखिये ॥ २०२ ॥

हत्या करि बिप्र एक तीरथ करन आयो
कहै मुख 'राम' हत्या टारिये हत्यारे को।
सुनि अभिराम नाम धाम मैं बुलाइ लियो,
दियो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे को॥
भई द्विज सभा, कहि बोलिकै पठायो आप
'कैसे गयो पाप? सङ्ग लै कै जैए न्यारे को!'
'पोथी तुम बाँचो हिए भाव नहिं माँचो अजू
तातें मति काँची दूर ना करै अँध्यारे को'॥ ५०३॥

देखी पोथी बाँच नाम महिमा हू कही साँच
ए पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजिये।
आवै जो प्रतीति कही 'याकै हाथ जेवैं जब
शिव जू के बैल तब पंगति मैं लीजिये'।
थार में प्रसाद दियो चले जहाँ पान कियो
बोले आप नाम के प्रसाद मति भींजिये।
जैसी तुम जानी तैसी कैसे कै बखानो अहो
सुनि कै प्रसन्न पायो जै जै धुनि रीझिए॥ ५०४॥

आये निसि चोर चोरी करन हरन धन
देखे श्यामघन हाथ चाप सर लिए हैं।
जब जब आवै बान साध डरपावै ए तो
अति मँडरावै ए पै बलि दूरि किये हैं॥
भोर आय पूछे 'अजू साँवरो किसोर कौन'
सुनि कर मौन रहे आँसू डारि दिये हैं।
दै सबै लुटाय, जानी चौकी राम राय दई,
लई उन्हौं दिक्षा सिक्षा शुद्ध भये हिये हैं॥ ५०५॥

कियो तनु बिप्र त्याग लागी चली संग तिया
दूर ही तें देखि कियो चरन प्रनाम है।

बोले यों 'सुहागवती' मर्यो पति होहुँ सति'
'अब तो निकसि गई जाहु सेवो राम है' ॥
बोलि कै कुटंब कही 'जो पै भक्ति करो सही'
गही तब बात जीव दियो अभिराम है ।
भए सब साध व्याधि मेटी लै बिमुख ताकी
जाकी बास रहै तौन सूझै श्याम धाम हैं ॥ २०६ ॥

दिल्लीपति बादशाह अहिदी पठाए लैन
ताको सो सुनायो सूनै बिप्र ज्यायो जानिये ।
देखिबे को चाहैं नीके मुख सो निबाहे आइ
कही बहु बिनै गही चले मन आनिये ॥
पहुँचे नृपति पास आदर प्रकास कियो
दियो उच्च आसन लै बोल्यो मृदु बानिए ।
दीजै करामाति जग ख्यात सब मात किए,
कही झूठ बात, एक राम पहिचानिये ॥ २०७ ॥

देखौं 'राम कैसे !' कहि कैद किये किये हिए
'हूजिये कृपाल हनुमान जू दयाल हो' ।
ताही समै फैलि गए कोटि कोटि कपि नए
नोचैं तन खैंचैं चीर भयो यों बिहाल हो ।
फोरैं कोट मारैं चोट किए डारैं लोट पोट
लीजै कौन ओट आइ मानों प्रलय काल हो ।
भई तब आँखें दुख सागर को चाखें अब
वेई हमैं राखें भाखें 'वारौं धन माल हो' ॥ २०८ ॥

आइ पाइ लिए तुम दिए हम प्रान आवैं
आप समझावें करामाति नैक लीजिए ।
लाजि दबि गयो नृप तब राखि लियो कह्यौ
भयो घर रामजू को बेगि छाड़ि दीजिए ॥

सुनि तजि दयौ और करयौ लैकै कोट नयौ
अब हूँ न रहै कोऊ वामैं तन छीजिये।
कासी जाइ वृन्दाबन आइ मिले नाभाजू सों
सुन्यो हो कबित्त निज रीझ मति भीजिए ॥ ४०९ ॥

मदन गोपालजू को दरसन करि कही
'सही राम इष्ट मेरे दृग भाव पागो है'।
वैसोई सरूप कियो दियो लै दिखाई रूप
मन अनुरूप छवि देख नीकी लागी है॥
काहू कह्यो कृष्ण अवतारी जू प्रशंस महा
राम अंश सुनि बोले मति अनुरागी है।
'दसरथ सुत जानों सुन्दर अनूप मानों
ईसता बताई रति कोटि गुनो जागी है' ॥ ४१० ॥

भक्त-कल्पद्रुम, भक्तमाल, रास-रसिकावली

ये तीनों पुस्तकें प्रियादास के आधार पर बनी हैं। अतएव इनका महत्व प्रियादास की उक्त टीका के अन्तर्गत ही है।

शिवसिंह-सरोज

शिवसिंह-सरोज के कर्त्ता उन्नाव-निवासी शिवसिंह सेंगर थे। इसमें शिवसिंह के समय तक के हिन्दी-कवियों के साधारण परिचय दिये गये हैं। ऐसे समय में जब कि खोज के साधन बहुत कम थे, शिवसिंह ने प्रशंसनीय परिश्रम से हिन्दी-कवियों का समय, उनके ग्रन्थों के नाम और उनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करके यह संग्रह तैयार किया था। हम उनकी इस सुरुचि ही की प्रशंसा नहीं करते, बल्कि उनकी साहित्य-सेवा को भी बहुत मूल्यवान समझते हैं। यद्यपि नवीन खोजों के आधार पर शिवसिंह-सरोज की कुछ बातें निराधार प्रमाणित हो रही हैं, पर

शिवसिंह के समय तक जो बातें जिस रूप में प्रचलित थीं, उनका संग्रह तो हमें 'सरोज' ही द्वारा मिल रहा है।

'सरोज' में तुलसीदास के सम्बन्ध में यह मिलता है।—

"यह महाराज सरवरिया ब्राह्मण, राजापुर, ज़िले प्रयाग के रहनेवाले और संवत् १५८३ के लगभग उत्पन्न हुये थे। संवत् १६८० में स्वर्गवास हुआ। इनके जीवन-चरित्र की पुस्तक वेणीमाधवदास कवि पसका-ग्रामवासी ने, जो इनके साथ-साथ रहे, बहुत विस्तार-पूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें। निदान गोस्वामीजी बड़े महात्मा रामोपासक महायोगी सिद्ध होगये हैं। इनके बनाये ग्रन्थों की ठीक-ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे; अथवा हमारे पुस्तकालय में हैं, उनका ज़िकर किया जाता है। प्रथम ४९ काण्ड रामायण बनाया है, इस तफ़सील से, १ चौपाई-रामायण ७ काण्ड, २ कवितावली ७ काण्ड, ३ गीतावली ७ काण्ड, ४ छन्दावली ७ काण्ड, ५ बरवे ७ काण्ड, ६ दोहावली ७ काण्ड, ७ कुंडलिया ७ काण्ड। सिवा इन ४९ काडों के १ सतसई, २ रामशलाका, ३ संकटमोचन, ४ हनुमत्बाहुक, ५ कृष्ण-गीतावली, ६ जानकीमङ्गल, ७ पार्वती-मङ्गल, ८ करखाछन्द, ९ रोला-छन्द, १० झूलना-छन्द इत्यादि और भी ग्रन्थ बनाये हैं। अन्त में विनय-पत्रिका महाविचित्र मुक्तिरूप प्रज्ञानन्दसागर ग्रन्थ बनाया है। चौपाई गोस्वामी महाराज की ऐसी किसी कवि ने नहीं बना पाई, और न विनय-पत्रिका के समान अद्‌भुत ग्रन्थ आज तक किसी कवि महात्मा ने रचा। इस काल में जो रामायण न होती तो हम ऐसे मूर्खों का बेड़ा पार न लगता। गोसाईंजी श्रीअयोध्याजी, मथुरा-वृन्दावन,

कुरुक्षेत्र, प्रयाग, वाराणसी, पुरुषोत्तमपुरी इत्यादि क्षेत्रों में बहुत दिनों तक घूमते रहे हैं। सबसे अधिक श्रीअयोध्या, काशी, प्रयाग और उत्तराखंड, वंशीवट ज़िले सीतापुर इत्यादि में रहे हैं। इनके हाथ की लिखी हुई रामायण, जो राजापुर में थी, खंडित होगई है। पर मलीहाबाद में आजतक सम्पूर्ण सातों कांड मौजूद हैं। केवल एक पत्रा नहीं है। विस्तार-भय से अधिक हालात हम नहीं लिख सकते। दो दोहे लिखकर इन महाराज का वृत्तान्त समाप्त करते हैं:—

कविता कर्ता तीनि हैं , तुलसी, केसव, सूर।
कबिता खेती इन लुनी , सीला बिनत मजूर॥ १॥
सूर सूर तुलसी ससी , उडुगन केसवदास।
अब के कबि खद्योत सम , जहँ तहँ करत प्रकास॥ २॥

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित

यह पुस्तिका श्रीमती रानी कमलकुँवरिदेवजू (रियासत सरीला, ज़िला हमीरपुर) ने पद्य में बनाई थी। इसकी सं० १९५२ की छपी हुई प्रति मुझे लाला सीताराम (प्रयाग) के पुस्तकालय में देखने को मिली थी। इसमें दोहे और चौपाइयों में तुलसीदास का जीवन-चरित दिया हुआ है और नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई लिखा है।

इसमें दो-तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो यह कि तुलसीदास सनौड़िया ब्राह्मण थे और दूसरी यह कि वे सुरसरि (गंगाजी) को पार करके ससुराल गये थे। यह बात राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान माननेवालों के विरुद्ध पड़ती है; क्योंकि राजापुर में गंगाजी नहीं, जमनाजी हैं। पर इसीमें राजापुर को उनका जन्म-स्थान भी लिखा है। इससे दोनों में सत्य क्या

है, यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। तीसरी बात यह कि तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में हुआ था, जैसा सरोजकार ने भी लिखा है।—

द्विज सनौढ़िया पावन जानो।
राजापुर में जन्म बखानो।
पंद्रा सैं तैरासी, जन्म भयो सुभ जान।
सोरा सै अस्सी बरस, होगये अन्तरधान॥

* *

बनिता से अति प्रेम लगायो।
नैहर गई सोच उर छायो।
सुरसरि पार गये घबराई।
एक मुरदा की नाव बनाई।

नोट्स ऑन तुलसीदास

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'इण्डियन ऐंटीक्वेरी' में, सन् १८६३ में, तुलसीदास पर एक लेख प्रकाशित कराया था, जिसमें उस समय तक प्राप्त तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं पर प्रकाश डाला गया था। पीछे उक्त लेख अलग भी पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् हिन्दी में तुलसीदास-सम्बन्धी जितने इतिहास-ग्रन्थ लिखे गये, सबका आधार वही है।

तुलसीदास के अन्य अंग्रेज़ विद्वानों ने भी, जिनमें एफ० एस० ग्राउस और रेवरेंड एड्विन ग्रीव्स मुख्य हैं, ग्रियर्सन साहब ही का समर्थन किया है। ग्राउस साहब ने पहले-पहल सन् १८७६ में रामचरित-मानस के एक अंश का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित कराया था। अब उनका सम्पूर्ण मानस का अनुवाद

पुस्तकाकार छपा हुआ मिलता है। उसके प्रारम्भ में एक बहुत विचार-पूर्ण भूमिका लिखकर उन्होंने तुलसीदास पर अपना पूर्ण अधिकार प्रमाणित किया है। ग्रीव्स साहब ने सन् १८९९ की नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में तुलसीदास का जीवन-चरित लिखा था। उसमें भी ग्रियर्सन साहब की खोज का समर्थन किया गया है।

विस्तार-भय से यहाँ उनके समूचे लेख देने में हम असमर्थ हैं।

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित

यह जीवन-चरित रामचरित-मानस के सुप्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथदास कुरमी की रचना है। इसमें बैजनाथदास ने अपने समय तक की प्रचलित तुलसीदास के जीवन-सम्बन्धी कथाओं को संग्रह करके उन्हें पद्य-बद्ध कर दिया है। यह उनके राम-चरित-मानस की टीका के साथ सन् १८९० ई० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है। महात्मा रामचरणदास-लिखित रामचरित-मानस की टीका के साथ भी यही जोड़ा हुआ है।

घटनाओं की प्रामाणिकता का प्रश्न उठाये बिना केवल कविता की दृष्टि से मैं यह कह सकता हूँ कि इसकी कविता रघुबरदास के 'तुलसी-चरित' और वेणीमाधवदास के 'मूल गोसाईं-चरित' से कहीं अधिक सरस और सुबोध है। हम यहाँ तीनों के अलग-अलग उदाहरण देते हैं:—

तुलसी-चरित।—

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भयऊ।
हस्तग्रास भार्गव गृह ठयऊ।

भईं स्वर्गवासी दोउ नारी।
कुलगुरु तुलसि कहेउ ब्रतधारी।
तृतिय ब्याह कञ्चनपुर माँही।
सोइ तिय बच बिदेस अवगाही।
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई।
मात भ्रात परिवार छोड़ाई।
कुलगुरु कथन भई सब साँची।
सुख धन गिरा अवर सब काँची।

मूल गोसाईं-चरित।—

घरि पाँच इक बार चढ़ै मुनिआ।
निज सास के पाय गही चुनिया।
सब हाल हवाल बताय चली।
सुनि सास कही बहु कीन्ह भली।
घर माँहि कलोर को दूध पिआ।
बिनु माय को है सिसु लेहि जिआ।

*　　*

बालक दसा निहारि, गौरा माई जग जननि।
द्विजतिय रूप सँवारि, नितहिँ पवा जावहिँ असन॥

गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित।—

कुण्डलिया

राना की सुतबधू इक, कीरति जग अभिराम।
परम भागवत भक्तिदृढ़, मीराबाई नाम॥
मीराबाई नाम विषयरस परस घटायो।
सकल कामनाहीन चित्त हरि चरनन लायो।
लायो चरनन चित्त साधु सेवा प्रन ठाना।
लखि निज लज्जा भंग बहुत बरजै तेहि राना॥

अरिल्ल

कौन सुनै केहि बैन प्राण हरि पद बसै।
विष नहिं चढ़ै सरीर भुजङ्गम जो डसै।

तुलसी-चरित और मूल गोसाईं-चरित से बैजनाथदास-रचित जीवन-चरित की कविता अधिक शुद्ध और सरस होने पर भी उसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही कम है। उसमें केवल तुलसीदास के चमत्कारों का वर्णन है, जो साधारण जनता में अन्ध-विश्वास बढ़ाने के लिये ही अधिक उपयोगी है। जैसे चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में 'श्रीगुसाईंजी महाप्रभून' के दैवी चमत्कार बटोरे गये हैं, वैसे ही इसमें तुलसीदास के अलौकिक कार्यों की कथायें चमत्कारान्वेषक भक्तों के लिये सुलभ कर दी गई हैं।

तुलसी-चरित

प्रयाग से मर्यादा नाम की एक पत्रिका मासिक-रूप में निकला करती थी। उसकी ज्येष्ठ, सं० १९६९ की संख्या में श्रीयुक्त इन्द्रदेवनारायण ने अपने एक लेख में तुलसी-चरित की सूचना सर्व-साधारण को दी थी। उसकी अविकल लिपि यहाँ दी जाती है।—

"गोस्वामीजी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुबरदासजी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम 'तुलसी-चरित' है। यह बड़ा ही वृहत् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं—(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा; इनमें भी अनेक उपखंड हैं। इस ग्रन्थ की छन्द-संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—

यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामीजी के जीवन-चरित विषयक नित्य-प्रति के मुख्य-मुख्य वृत्तान्त लिखे हुये हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदासजी-विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्रीराम-चरित-मानस के टक्कर की है और यह 'तुलसी-चरित' बड़े महत्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय वृहत् ग्रन्थ के 'अवध-खण्ड' में लिखा है कि जब श्रीगोस्वामीजी घर से विरक्त होकर निकले, तो रास्ते में रघुनाथ नामक एक पंडित से भेंट हुई और गोस्वामीजी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहा।—

गोस्वामीजी का वचन

चौपाई

काल अतीत यमुन तरनी के।
रोदन करत चलेहुँ मुख फीके॥
हिय विराग तिय अपमित बचना।
कंठ मोह बैठो निज रचना॥
खींचत त्याग विराग बटोही।
मोह गेह दिसि कर सत सोही॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाहीं।
स्पंदन वपू खेत वन माहीं॥
तिनहूँ दिशा अपथ महि काटी।
आठ कोस मिसिरन की पाटी॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला।
बैठेहुँ देखि भूमि सुबिसाला॥
पंडित एक नाम रघुनाथा।
सकल शास्त्रपाठी गुण गाथा॥

पूजा करत डरत मैं जाई।
दंड प्रनाम कीन्ह सकुचाई॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना।
बैठि गयउँ महितल भय माना॥
बुध पूजा करि मोहिं बुलावा।
गृह वृतांत पूछब मन भावा॥

* *

जुवा गौर शुचि बदनि बिचारी।
जनु बिधि निज कर आपु सँवारी॥
तुम बिलोक आतुर गति धारी।
धर्मशील नहिँ चित्त विकारी॥
देखत तुम्हहिँ दूरि लगि प्रानी।
अद्भुत सकल परस्पर मानी॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे।
किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाहीं।
किधौं मूढ़ पुर वास सदाहीं॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा।
चले भागि तुम तजि वह ठामा॥
तब यात्रा विदेश कर जानी।
बिदरि हृदय किमि मरे अयानी॥
चित्त वृत्ति तुव दुख महँ ताता।
सुनत न जगत व्यक्त सब बाता॥
मोते अधिक कहत सब लोगा।
अजहुँ जुरे देखत तरु योगा॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी।
तुम्हहिं धाय नहिं गहे अनारी॥

जाति पाँति गृह ग्राम तुम्हारा।
पिता पीठि का नाम अचारा॥

दोहा

कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार॥
चले अश्रु गदगद हृदय, सात्विक भयो महान।
भुवि नख रेख लग्यौं करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान॥

चौपाई

दयाशील बुधवर रघुराई।
तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई॥
अश्रु पोंछि बहु तोष देवाई।
बिसे बीस सुत मम समुदाई॥
लखौं चिह्न मिश्रन सम तोरा।
बिसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीसा।
मेटहिं सकल दुसह दुख ईसा॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा।
पुनि बुध कीन्ह बिबिध सतकारा॥
परशुराम परपिता हमारे।
राजापुर सुख भवन सुधारे॥
प्रथम तीर्थयात्रा महँ आये।
चित्रकूट लखि अति सुख पाये॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनिवासा।
फिरे सकल प्रमुदित गत आशा॥
वीर मरुतसुत आश्रम आई।
रहे रैनि तहँ अति सुख पाई॥

परशुराम सोये सुख पाई।
तहँ मारुतसुत स्वप्न देखाई॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा।
उत्तर भाग सुभूमि ललामा॥
तुम्हरे चौथ पीठिका एका।
तप समूह मुदि जन्म बिबेका॥
सम्पति तीरथ भ्रमे अनेका।
जानि चरित अद्भुत गहि टेका॥
दंपति रहे पत्त एक तहवाँ।
गये कामदा शृङ्ग सु जहवाँ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई।
सीतापुर नृप के ढिग आई॥
राजापुर निवास हित भाषा।
कहे चरित कुछ गुप्त न राखा॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी।
मिश्र परशुरामहिं नृप आनी॥

दोहा

अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट जासु।
बहु सन्माने भूप तहँ, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर बसत, मंजु देश सरवार।
राज मँझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिये, कोश विंश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यो बौध स्वरूप॥

चौपाई

बौध स्वरूप पेंड ते भारी।
उपल रूप महि दीन बलारी॥

जैनाभास चल्यो मत भारी ।
रक्षा जीव पूर्ण परिचारी ॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पंडित ।
क्षत्री धर्म सकल गुण मंडित ॥
मैं पुनि गाना मिश्र कहावा ।
गणपति भाग यज्ञ महँ पावा ॥
मम बिनु महावंश नहिं कोई ।
मैं पुनि बिन संतान जो सोई ॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा ।
तिमि सम पलि जानि मति आजा ॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका ।
तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका ॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा ।
प्रगट स्वप्न बहु बिधि दरसावा ॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई ।
राजापुर निवास की ताई ॥
निर्धन बसब राजपुर जाई ।
वृत्त कलिन्दि तीर सचु पाई ॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी ।
बसब न होहिं जहाँ परितापी ॥
अति आदर कर भूप बसावा ।
बाममार्ग पथ शुद्ध चलावा ॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी ।
जिनके प्रगट शम्भु गिरिवासी ॥
परशुराम काशी तन त्यागे ।
राम मन्त्र अति प्रिय अनुरागे ॥
शंभु कर्ण गत दीन सुनाई ।
चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई ॥

तिनके शङ्कर मिश्र उदारा ।
लघु पंडित प्रसिद्ध संसारा ॥

दोहा

परशुरामजू भूप को , दान भूमि नहिं लीन ।
शिष्य मारवाड़ी अमित , धन गृह दीन्ह प्रवीन ॥
बचन सिद्धि शङ्कर मिसिर , नृपति भूमि बहु दीन ।
भूप रानि अरु राज नर , भए शिष्य मति लीन ॥
शङ्कर प्रथम विवाह ते , बसु सुत करि उत्पन्न ।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध , निसि दिन ज्ञान प्रसन्न ॥

चौपाई

जोषित मृतक कीन अनु ब्याहा ।
ताते मोरि साख बुधनाहा ॥
तिनके संत मिश्र द्वै भ्राता ।
रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता ॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह महँ जाई ।
लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई ॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी ।
प्रथम पुत्र को नाम मुरारी ॥
सो मम पिता सुनिय बुध भ्राता ।
मैं पुनि चारि सहोदर भ्राता ॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा ।
ताते लघु महेस गुण धामा ॥
कर्मकांड पंडित पुनि दोऊ ।
अति कनिष्ठ मंगल कहि सोऊ ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा ।
तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा ॥

तुलसिराम कुल गुरू हमारे।
जन्मपत्र मम देखि बिचारे॥
हस्त प्रास पंडित मतिधारी।
कह्यो बाल होईहिं ब्रतधारी॥
धन विद्या तप होय महाना।
तेजरासि बालक मतिमाना॥
भरतखण्ड एहि सम एहि काला।
नहिं महान कोउ परमित शाला॥
करिहिं खचित नृपगन गुरुवाई।
बचन सिद्धि खलु रहहिं सदाई॥
अति सुन्दर सरूप सित देहा।
बुध मङ्गल भाग्यस्थल गेहा॥
ताते यह विदेह सम जाई।
अति महान पदवी पुनि पाई॥
पंचम केतु रुद्र गृह राहू।
जतन सहस्र वंश नहिं लाहू॥

दोहा

राज योग दोउ सुख सु एहि, होहिं अनेक प्रकार।
अब्दै दया मुनीस को, लियो जन्म बर बार॥

चौपाई

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी।
तुलारोह तिय कहि अभिलाखी॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी।
कीन ब्याह सुन्दरी बिचारी॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे।
पिता मातु मम सहित निसारे॥

भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा ।
षोडस मनुज रहे एक साथा ॥

*　　*

बानी विद्या भगिनि हमारी ।
धर्म शील उत्तम गुण धारी ॥

*　　*

दोहा

अति उत्तम कुल भगिनि सब, ब्याही अति कुसलात ।
हस्त ग्रास पंडितन्ह गृह, ब्याहे सब मम भ्रात ॥

चौपाई

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भएऊ ।
हस्त ग्रास भार्गव गृह ठएऊ ॥
भईं स्वर्गवासी दोउ नारी ।
कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी ॥
तृतिय ब्याह कंचनपुर माहीं ।
सोइ तिय वच विदेश अवगाही ॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई ।
मात भ्रात परिवार छोड़ाई ॥
कुलगुरु कथन भई सब साँची ।
सुख धन गिरा अवर सब काँची ॥
सुनहु नाथ कंचनपुर ग्रामा ।
उपाध्याय लछिमन अस नामा ॥
तिनकी सुता बुद्धिमति एका ।
धर्मशील गुनपुञ्ज बिवेका ॥
कथा पुरान श्रवन बलभारी ।
अति कन्या सुन्दर मति धारी ॥

दोहा

मोह विप्र बहु द्रव्य ले , पितु मिलि करि उत्साह ।
यदपि मातु पितु सो विमुख , भयो तृतिय मम ब्याह ॥

*　　　　*

चौपाई

निज विवाह प्रथमहि करि जहवाँ ।
तीन सहस मुद्रा लिय तहवाँ ॥
षट् सहस्त्र लै मोहिं विवाहे ।
उपाध्याय कुल पावन चाहे ॥

"ऊपर लिखे हुये पदों का सारार्थ यह है कि सरयू नदी के उत्तर-भागस्थ सरवार देश में मझौली से तेइस कोस पर कसया ग्राम में गोस्वामी के प्रपितामह परशुराम मिश्र का जन्म-स्थान था और वहों के वे निवासी थे। एक बार वे तीर्थयात्रा के लिये घर से निकले और भ्रमण करते हुये चित्रकूट में पहुँचे। वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारी चौथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रांत के राजा के यहाँ गये और उन्होंने हनुमानजी की आज्ञा को यथातथ्य राजा से कहकर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान् जानकर अपने साथ अपनी राजधानी तीखनपुर में ले आये और बहुत सम्मानपूर्वक उन्हें राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई; इससे वे बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गये, तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और वे राजापुर लौट आये। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर उन्होंने राजापुर

में शिव-भक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रकट की; परन्तु राजा ने उनके मत के अनुयायी होकर बड़े सम्मानपूर्वक उनको रखा और भूमिदान दिया; परन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उनके शिष्यों में मारवाड़ी बहुत थे, उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अंतकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर-त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ में गणेशजी का भाग पाते थे।

'इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुये, जिनको वाक्‌सिद्धि प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुये और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्यायें हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुये—(१) संत मिश्र (२) रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुये। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महापुरुष के पुत्र गोस्वामीजी हुए।

'गोस्वामीजी चार भाई थे—(१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम और (४) मङ्गल।

'यही तुलाराम तत्वाचार्यवर्य भक्तचूड़ामणि गोस्वामीजी हैं। इनके कुल-गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रखा था। गोस्वामीजी के दो बहनें भी थीं। एक का नाम वाणी और दूसरी का विद्या था।

'गोस्वामीजी के तीन विवाह हुये थे। प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी के मरने पर तीसरा। यह तीसरा व्याह कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ। इस विवाह में इनके पिता ने छः हजार मुद्रा ली थी। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुये थे।''

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के विषय में हम और अधिक न कहकर तुलसीदास के सुप्रसिद्ध जीवनी-लेखक श्रीयुक्त शिवनन्दन-सहाय का एक लेख-खण्ड यहाँ उद्धृत करते हैं, जो श्रीश्याम-सुन्दरदास और बडथ्वाल-लिखित 'गोस्वामी तुलसीदास' के १६ वें पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है। उससे इस ग्रन्थ की मौलिकता और उपयोगिता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

"हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन)-निवासी बाबू इन्द्रदेवनारायण को गोसाईंजी के किसी चेले की, एक लाख दोहे-चौपाइयों में लिखी हुई, गोसाईंजी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं, गोसाईंजी ने पहले उसके प्रचार न होने का शाप दिया था; किन्तु लोगों के अनुनय-विनय से शाप-मोचन का समय सं० १९६७ निर्धारित कर दिया। तब उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गुसाईंजी को श्रीहनुमानजी से मिलने का उपाय बताकर श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन का उपाय बताया था। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर पड़ी रही। एक मुन्शी-जी उसके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नक़ल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुन्शीजी वहाँ से चंपत होगए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम अपने स्वजातीय इन मुन्शीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा न करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक नक़ल कर ली, तबतक ब्राह्मण देवता के कानों तक ख़बर न पहुँची, और जब भागे तो अपने बोरिए-बस्ते के साथ उस बृहत्काय ग्रन्थ को भी लेते हुए। इसके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुत-पूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए। पर प्रेत

ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची ? यह कुछ हमारे संवाददाता ने हमें नहीं बताया। जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ, उसके साथ गोसाईं जी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। वनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उद्योग तो भला करते ? उलटे उसके माथे ३०० वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया !"

मूल गोसाईं-चरित

शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में बाबा बेनीमाधवदास-रचित तुलसीदास के एक जीवन-चरित की सूचना दी है। शिवसिंह ने तुलसीदास का जन्म सं० १५८३ में होना लिखा है और मूल गोसाईं-चरित में, जो बेनीमाधवदास के 'चरित' का संक्षिप्त संस्करण कहा जाता है, जन्म-संवत् यह लिखा मिलता है—

पन्द्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
स्रावन सुक्ला सत्तमी, तुलसी धरेउ सरीर॥

शिवसिंह ने स्वयं उक्त चरित को देखा था या नहीं, इस विषय में मुझे संदेह है। देखा होता तो कम से कम तुलसीदास के जन्म-संवत् में दोनों ग्रन्थकारों में मतभेद न होता। यदि शिवसिंह की यह बात मान भी ली जाय कि उन्होंने बेनीमाधव-दास का गोसाईं-चरित देखा था, तो यह भी मान लेना ही चाहिये कि उन्होंने उसे पढ़ा नहीं था। पढ़ा होता तो वे संवत् न लिखने ही की भूल से न बचते; बल्कि अपने 'सरोज' में वे बेनी-माधवदास का परिचय और उनके कुछ छन्द भी देते, जैसा उन्होंने अन्य कवियों के लिये किया था।

शिवसिंह ने 'सरोज' में एक ऐसी पुस्तक का हवाला दिया है, जो अब अप्राप्य है। उस हवाले का परिणाम यह हुआ कि उसी नाम की पुस्तक प्राचीन काग़ज़ पर लिखकर या लिखवाकर चतुर आदमियों को तुलसीदास के प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिल गया। प्राचीन काग़ज़ मिलना कठिन नहीं। जितनी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें हैं; प्रायः सब के अन्त में कुछ न कुछ पत्रे सादे लगे रहते हैं, जो पुस्तक की समाप्ति पर बच रहते होंगे। उन पत्रों को लेकर कोई व्यक्ति चाहे, तो उनपर तुलसीदास या कालिदास के नाम से कोई एक नई पुस्तक लिख-कर या लिखवाकर प्रस्तुत कर सकता है और यदि उसको इस बात का भी सहारा मिल जाय कि उस नाम की पुस्तक कभी थी और अब नहीं मिल रही है, तब तो उसके पौ बारह हैं।

'मूल गोसाईं-चरित' को मैं इसी तरह की एक नव-निर्मित पुस्तक मानता हूँ। मैंने उसे ध्यान से पढ़ा है, उसके एक-एक शब्द और महावरों पर विचार किया है और तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उसकी आयु अभी बहुत थोड़ी है।

पचास-साठ वर्ष पहले ग्रियर्सन साहब और ग्राउस और ग्रीव्स साहबान भी तुलसीदास के जीवन-चरित की खोज में थे, पर उन्हें कोई लिखित प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ था। अब जब कि साहित्यिक खोज की क़द्र बढ़ रही है, कालेजों और यूनिवर्सिटियों में हिन्दी के प्राचीन कवियों को स्थान दिया जा रहा है, तब अप्राप्य पुस्तकों का यकायक प्रादुर्भाव अवश्य ही चतुर व्यक्तियों के लिये एक रोचक विषय होगया है।

सन् १९२५ में उन्नाव के एक वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल, बी० ए०, ने स्वसम्पादित रामचरितमानस के प्रारम्भ में

बाबा बेनीमाधवदास-कृत 'मूल गोसाईं-चरित' लगाकर नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित कराया है। उसमें वे लिखते हैं:—

"काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के विद्वान् सम्पादकों ने श्रीरामचरित-मानस का शुद्ध संस्करण संपादित करते समय 'गोस्वामीजी के जीवन-चरित की उपलब्धि' पर विचार करते हुये लिखा है—

'सबसे प्रामाणिक वृत्तान्त बतानेवाला' ग्रन्थ वेणीमाधवदास कृत 'गोसाईं-चरित' है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिह सेंगर ने 'शिवसिह सरोज' में किया है। परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ ही कहीं मिलता है और न शिवसिंह-सरोजकार ने उसका संक्षिप्त वृत्तान्त ही अपने ग्रन्थ में लिखा है। वेणीमाधव-दास कवि पसका ग्राम-निवासी थे और गोसाईंजी के साथ सदा रहते थे।'

'ऊपर जिस प्रामाणिक ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है, उसका अन्तिम अध्याय, सौभाग्य से, भगवत् की असीम कृपा से, हमें प्राप्त होगया है। इस अध्याय का नाम 'मूल गोसाईं-चरित' है। इसमें बाबा वेणीमाधवदासजी ने नित्य पाठ करने के अभिप्राय से, संक्षेप से, तुलसीदास के सम्पूर्ण चरित्र का उल्लेख कर दिया है।"

उक्त 'चरित' कैसे प्राप्त हुआ? कहाँ से प्राप्त हुआ? यह रहस्य बताने की आवश्यकता शुक्लजी ने नहीं समझी; यद्यपि ऐसी प्रामाणिक पुस्तक के लिये उसकी प्राप्ति का पूरा विवरण देना बहुत ही आवश्यक था। प्रसन्नता की बात है कि शुक्लजी का यह भार श्रीयुक्त श्यामसुन्दरदास और बडथ्वाल जैसे विद्वानों

ने अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने 'मूल गोसाईं-चरित' के आधार पर 'गोस्वामी तुलसीदास' नाम की एक भारी-भरकम पुस्तक ही रच डाली है, जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग से सन् १९३१ में प्रकाशित हुई है। उक्त सम्पादक-द्वय 'गोस्वामी तुलसीदास' के पृष्ठ २० और २१ पर 'मूल गोसाईं-चरित' की असली प्रति का हाल इस प्रकार लिखते हैं।—

'पंडित रामकिशोर शुक्ल को वेणीमाधवदास की प्रति कनक-भवन अयोध्या के महात्मा बालकराम विनायकजी से प्राप्त हुई थी। महात्माजी की कृपा से उनकी प्रति को देखने का हमें भी सौभाग्य मिला है। जिस प्रति से यह प्रति लिखी गई थी वह मौजा मरूव, पोस्ट ओवरा, ज़िला गया के पंडित रामाधारी पांडेय के पास है। पांडेयजी ने लिखा है कि यह प्रति उनके पिता को गोरखपुर में किसीसे प्राप्त हुई थी। तबसे वह उनके यहाँ है और नित्यप्रति उसका पाठ होता है। पांडेयजी इस प्रति को पूजा में रखते हैं। इससे वह बाहर तो नहीं जा सकती; परन्तु यदि कोई उसे वहाँ जाकर देखना और जाँचना चाहे तो ऐसा कर सकता है।

जाँच कराने से ज्ञात हुआ है कि यह प्रति पुराने देशी काग़ज़ पर देवनागरी अक्षरों में लिखी है। इसमें ६॥" × ५॥" के आकार के ५४ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ हैं।'

इतना विवरण मिलने पर भी यह जानना अभी शेष ही है कि उक्त महात्माजी को वह प्रति कैसे प्राप्त हुई? क्या वे गया गये थे? और स्वयं उन्होंने उसकी नक़ल की थी? वह पुस्तक तो पूजा में रहती है, कहीं बाहर जा नहीं सकती, फिर वह कनक-भवन अयोध्या तक कैसे पहुँची? असली प्रति भी तो अभी किसीने नहीं देखी है। केवल पत्र-द्वारा उसके पत्रों की लंबाई-चौड़ाई मँगा ली गई है।

खैर; हम एक बार यह मान ही लेते हैं कि उक्त 'मूल गोसाईं-चरित' बाबा वेणीमाधवदास ही के रचे हुये ग्रन्थ की नक़ल है। अब आइये, हम प्रस्तुत पुस्तक की प्रामाणिकता को तर्क की कसौटी पर तो कसकर देखें।

मेरे पास 'मूल गोसाईं-चरित' गीता प्रेस, गोरखपुर का छपा हुआ है। उसमें डबल क्राउन आकार के कुल ३६ पृष्ठ हैं। उसके प्रारम्भ में ये दो दोहे हैं।—

संतन कहेउ बुझाय , मूल-चरित पुनि भाषिये ।
अति संछेप सुहाय , कहौं सुनिय नित पाठ हित ॥

चरित गोसाइँ उदार , बरनि सकै नहिं सहस फनि ।
हौं मति मन्द गँवार , किमि बरनौं तुलसी सुजस ॥

अंत में यह दोहा है।—

सोरह सै सत्तासि सित , नवमी कातिक मास ।
बिरच्यो यहि निज पाठ हित , बे नी मा ध व दा स ॥

इसके आगे लेखक का यह वक्तव्य है।—

'इति श्री वेणीमाधवदास-कृत मूल गोसाईं-चरित समाप्त।

श्रीसूगरिडल्यगोत्रोत्पन्नपंक्तिपावनत्रिपाठीरामरत्नमणिरामदासेन तदात्मजेन च लिखितम्। मिति विजयादशमी संवत् १८४८ भृगुवासरे।

इससे यह तो प्रकट ही है कि वर्तमान पुस्तक 'मूल गोसाईं-चरित' की नकल है, जो संवत् १८४८ में की गई थी।

उक्त विद्वान् सम्पादक-द्वय ने पृष्ठ २१ पर यह भी लिखा है कि 'मूल गोसाईं-चरित' से इस बात का संकेत मिलता है, कि गोसाईं जी से वेणीमाधवदास की पहली भेंट संवत् १६०९ और १६१६ के बीच में हुई थी। संभवतः इसी समय वे उनके शिष्य

भी हुये हों। × × जिस व्यक्ति का अपने चरितनायक से ६४-७० वर्ष का दीर्घकालीन संपर्क रहा हो, उसके लिखे जीवन-चरित की प्रामाणिकता विपय में संदेह के लिये बहुत कम अवकाश हो सकता है। यदि यह मूल चरित प्रामाणिक न हो तो, आश्चर्य की बात होगी।'

पर 'मूल-चरित' को अच्छी तरह पढ़ने पर यदि वह प्रामाणिक माना जाय, तो वास्तव में यही आश्चर्य की बात होगी। मैंने मूल-चरित को कई बार पढ़ा, मुझे तो कहीं यह आभास नहीं मिला कि तुलसीदास मे वेनीमाधवदास की भेंट संवत् १६०६ और १६१६ के बीच (में ?) हुई थी और यह कैसे विदित हुआ कि वे शिष्य भी हुये और शिष्य होने के बाद लगातार ६४ या ७० वर्षों तक साथ भी रहे। ऐसी लचर कल्पनाओं पर इतिहास लिखना ही सब से बड़े आश्चर्य की बात है। इस प्रकार दो विद्वान् सम्पादक एक महंत और एक वकील के हथकंडों के शिकार होगये, यह कम आश्चर्य की बात नहीं।

'मूल गोसाईं-चरित' में वर्णित घटनाओं पर विचार करने के पहले हम उसकी भाषा-सम्पत्ति पर विचार कर लेना चाहते हैं। जिस व्यक्ति ने 'मूल गोसाईं-चरित' की रचना की, भाषा पर तो उसका कुछ भी अधिकार नहीं जान पड़ता। तुक मिलाने के लिये उसमें शब्दों को तो ऐसे बेढंगे तौर पर मरोड़ा गया है कि 'चरित' के रचयिता की असमर्थता पर दया आती है। रचयिता को न छंद का ज्ञान था, न व्याकरण का; और न वह तुक ही मिला सकता था। जो व्यक्ति तुलसीदास जैसे महाकवि के साथ सत्तर वर्षों तक रहता हुआ माना जाय, और वह चंदन के बन में एरंड ही बना रहे, तो उसके कथन का प्रमाण ही क्या होगा ?

काव्य-रचना तुलसीदास का एक मुख्य विषय था, उसका लाभ तो 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता को सहज ही में प्राप्त हो सकता था। पर उसे न लेकर वह तुलसीदास की डायरी लिखा करता था, यह कहाँ तक विश्वसनीय माना जायगा? हिन्दू-साधुओं में कभी डायरी लिखने-लिखवाने की चाल सुनी नहीं गई। फिर बाबा बेनीमाधवदास को यह प्रवृत्ति कैसे हुई? तुलसीदास तो हमेशा निःसंग जीवन पसन्द करनेवाले व्यक्ति थे; स्तुति-प्रार्थनाओं से प्रसन्न होनेवाले देवता ही उनके पहरेदार थे; उनको बाबा बेनीमाधवदास जैसे तुक-रंक प्राइवेट सेक्रेटरी की क्या आवश्यकता थी?

सन्-संवत् और दिनों और तिथियों का ठीक उतरना कोई कठिन बात नहीं है। तुलसीदास से भी दो-चार सौ वर्षों पहले की तिथियाँ और दिन किसी संवत् के साथ ठीक-ठीक जाने जा सकते हैं और उनकी एक सूची बनाकर उसमें एक कल्पित कथा पिरो दी जा सकती है।

इस पर इस प्रश्न का हम स्वागत कर सकते हैं कि तब तो कोई भी ग्रन्थ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि तुलसीदास ने कवितावली में रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर का ज़िक्र किया है, हम उसे सत्य ही समझते हैं; क्योंकि तुलसीदास ने उसे कहा है। किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता उसके रचयिता की योग्यता पर निर्भर होती है, न कि इस बात पर कि वह किसके साथ कै वर्षों तक रहा।

हममें से बहुतों को मालूम है, कि सन् १६३१ में महात्मा गाँधी और सम्राट् जार्ज पंचम से मुलाक़ात हुई थी। मुलाक़ात दस-पन्द्रह मिनटों से अधिक देर तक नहीं हुई थी और उनमें जो बातें हुई थीं, वे भी गिनी-चुनी थीं। पर वे बातें मालूम कितनों को

हैं ? महात्मा गाँधी के निरन्तर सहवास में रहनेवाले भी कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जो यह नहीं जानते कि दोनों ओर से किन-किन शब्दों का आदान-प्रदान हुआ था और कै मिनटों तक ? पर यदि किसी कल्पना-निपुण तुक-बन्द को उक्त मिलन पर कुछ लिखने को दे दिया जाय, तो वह एक लम्बी-सी गाँधी-गीता तैयार कर देगा, जिसको सुनकर गाँधीजी भी आश्चर्य-चकित हो जायँगे और फिर गाँधीजी के बाद सौ-दो-सौ वर्षों में वह प्रामाणिक भी माना जाने लगेगा। तब भक्त लोग इस बात का प्रसंग ही न उठने देंगे कि मुलाक़ात कै मिनटों में समाप्त हुई थी ? और उतनी देर में गाँधी-गीता कही या सुनी जा सकती है, या नहीं ?

ठीक यही दशा 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता ने उपस्थित कर दी है। एक साधारण तुक-बन्द ने ग़ैर ज़िम्मेदारी के साथ, जो कुछ उसके मग़ज़ में से निकला, या निकलवाया गया, बे सिर-पैर के पद्यों में निकालकर रख दिया है। हमें उसका कहाँ तक विश्वास करना चाहिये ? फिर भी एक बार हमें 'मूल गोसाईं-चरित' की भाषा और उसमें वर्णित विषय पर गंभीरता से विचार कर लेना चाहिये।

उसकी भाषा तीन सौ वर्षों की पुरानी नहीं मालूम होती। कुछ उदाहरण लीजिये।—

एक दासि कढ़ी तेहि अवसर में।
कहि देव बुलाहट है घर में॥

हमें इस 'बुलाहट' के 'हट' को देखकर संदेह हुआ था। क्योंकि 'हट' प्रत्यय-युक्त शब्द, जैसे घबराहट 'मुसकाहट' चिल्लाहट आदि, बहुत प्राचीन नहीं हैं। कम से कम मुझे किसी प्राचीन

कवि की कविता में अभीतक नहीं मिले। हिन्दू-विश्व-विद्यालय के हिन्दी-अध्यापक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मैंने पत्र लिखकर और फिर मिलकर भी पूछा। वे भी 'हट' को प्राचीन नहीं मानते।

२१ वें पृष्ठ पर एक छंद है।—

पोथी पाठ समाप्त कैके धरे,
सिवलिंग ढिग रात में।
मूरख पंडित सिद्ध तापस जुरे,
जब पट खुलेउ प्रात में।
देखिन तिरषित दृष्टि से सबजने,
कीन्ही सही संकरं।
दिव्याषर सो लिख्यो पढ़े धुनि सुने,
सत्यं सिवं सुन्दरं॥

इस 'सत्यं सिवं सुन्दरं' ने तो मूल-चरित के आधुनिक रचयिता को अँधेरे में से खींचकर उजाले में लाकर खड़ा कर दिया। 'सत्यं शिवं सुन्दरं' संस्कृत का प्राचीन वाक्य है, पर अभी थोड़े दिनों से हिन्दीवालों में इसने प्रवेश पाया है। हिन्दी के किसी प्राचीन कवि ने इसका उपयोग नहीं किया था। तुलसीदास ही ने नहीं किया तो उनके एक साधारण पढ़े-लिखे कल्पित चेले की क्या बिसात थी, जो इस वाक्य तक पहुँचता?

ऊपर शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द की छीछालेदर आप देख चुके; अब ज़रा दूसरे छंदों के कुछ नमूने लीजिये।—

सुत जन्म बधाव लग्यो बजने,
सजने छजने रजने गजने।

* *

घरि पाँचइ बार चढ़ै मुनिया,
निज सास के पाँय गही चुनिया ।

*   *

चरनारि हती तहँ सो परषी,
जब माथ खवाय ललाट रषी ।

*   *

जिन जूह जसूस पै आइ जकै,
परिचय द्विज नारिन पाइ थकै ।

*   *

सुठि घाट मनोहर पंच पगा,
गंगिया कर कौतुक केलि भगा ।

*   *

पुनि चारु कुँवरि बरदान दियो,
जिन संत सुसेवा लियो रु कियो ।

*   *

वृन्दावन के हरिबंस हितू,
प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू ।

*   *

कवि केसवदास बड़े रसिया,
घनस्याम सुकुल नभ के बसिया ।

*   *

पहुँचे लखनैपुर मोद भरे,
अरु धेनुमती तट पै उतरे ।

कहुँ दीनन को प्रतिपाल करैं,
कहुँ साधुन के मन मोद भरैं।
कहुँ लखनलाल को चरित बचैं,
कहुँ प्रेम मगन ह्वै आपु नचैं।
कहुँ रामायन कलगान सचैं,
उत्साह कोलाहल भूरि मचैं॥

* *

निमिसार को विप्र सुधर्म रता,
वन खंडि सुनाम बिमोह गता।

ये छंद आपही बतला रहे हैं कि इनके रचयिता की शब्द-सम्पत्ति और काव्य-कला कैसी थी; और इनकी रचना का समय क्या होना चाहिये ?

अब आइये, 'मूल गोसाईं-चरित' के ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करें।

पृष्ठ २ पर तुलसीदास का जन्म-काल इस प्रकार दिया हुआ है—

पन्द्रह सै चैावन विषै, कालिन्दी के तीर।
सावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर॥

इसके अनुसार संवत् १६३१ में, जब तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' लिखना प्रारम्भ किया, उनकी आयु ७७ वर्षों की होनी चाहिये। यदि रामचरित-मानस का रचना-काल सं० १६३१ उसमें न दिया होता, तो हमें तुलसीदास का जन्म १५५४ ही नहीं, दस-पाँच वर्ष और भी पहले मान लेने में शायद आपत्ति न होती। क्योंकि संयमी पुरुषों का सौ-सवा-सौ वर्षों तक जीवित रहना असंभव नहीं है। पर ७७ वर्ष की आयु में रामचरित-

मानस जैसे महाकाव्य का प्रारम्भ करना असम्भव-सा दिखता है। जिस राम-कथा को तुलसीदास ने बालपन से लेकर युवावस्था तक गुरु-मुख से कई बार सुना था और जिसके लिये वे प्रतिज्ञा-बद्ध हुये थे कि "भाषा-बद्ध करबि मैं सोई"; उसे वे ७७ वर्षों की आयु तक मन में लिये बैठे रहे, यह बात कवि-स्वभाव के अनुकूल नहीं है। अतएव यह जन्म-संवत् सत्य नहीं जान पड़ता।

'मूल गोसाईं-चरित' में, संवत् १६०९ में, जब तुलसीदास चित्रकूट में थे, हितहरिवंशजी के सम्बन्ध में यह उल्लेख है।—

वृन्दावन ते हरिबंस हितू,
प्रियदास नवल निज सिष्य भृतू।

***　　　　***

जमुनाष्टक राधा-सुधानिधिजू,
अरु राधिकातन्त्र महाविधिजू॥
अरु पाति दई हित हाथ लिखी,
सोरह सै नव जन्माष्टमि की॥
तेहि माँहि लिखी विनती बहुरी,
सोइ बात मुखागर सो कहुरी॥
रजनी महरास की आवत जू,
चित चोर सदय ललचावत जू॥
रसिकै रस मों तन त्याग चहौं।
मोहि आसिष देहुअ कुंज लहौं॥
सुनि विनती मुनिनाथ, एवमस्तु इति भाषेउ।
तनु तजि भये सनाथ, नित्य निकुञ्ज प्रवेस करि॥

हितहरिवंश का जन्म बैसाख बदी ११, सं० १५३० में हुआ था। सं० १६०९ में वे ७९ वर्ष की आयु के हुये होंगे। ऊपर के

वर्णन से मालूम होता है कि इसी आयु में उन्होंने तुलसीदास से आज्ञा लेकर शरीर-त्याग किया। पहले तो यही विचारणीय है कि उन्होंने तुलसीदास का आशीर्वाद लेकर महारास के दिन नित्य-निकुञ्ज में इस लोक की लीला समाप्त करने का विचार क्यों किया? हितजी तो अनन्य राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक थे। अन्त समय में वे अपने इष्टदेव का ध्यान न कर, वृन्दावन से कई सौ मील दूर बैठे हुये तुलसीदास से आशीर्वाद लेकर शरीर छोड़ने को उत्सुक क्यों हुये? और उन्होंने सं० १६०६ में शरीर छोड़ा भी तो नहीं। संवत् १६२२ तक उनके जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं।—'ओरछानरेश महाराज मधुकरशाह के राजगुरु श्रीहरिराम व्यासजी १६२२ वि० के लगभग आपके शिष्य हुये थे।*' हाँ, मिश्रबन्धुओं ने अपने विनोद में अवश्य लिखा है कि 'स्वामी हितहरिवंशजी की जीवन-यात्रा प्रायः ७६ वर्ष की अवस्था में समाप्त हुई'। जो ठीक सं० १६०६ में पड़ती है। यह कौतूहल की बात है कि 'मूल गोसाईं-चरित' में 'विनोद' की आत्मा बोल रही है।

मूल गोसाईं-चरित के पृष्ठ १५ पर सूरदास के सम्बन्ध में यह उल्लेख है।—

सोरह सै सोरह लगै, कामद गिरि ढिग बास।
सुचि एकांत प्रदेस महँ, आये सूर सुदास॥
पठये गोकुलनाथजी, कृष्ण रङ्ग महँ बोरि।
दग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाईं छोरि॥

* *

* (पृ० १७७)

कवि सूर दिखायउ सागर को।
सुचि प्रेमकथा नटनागर को॥

*　　　　*

दिन सात रहे सतसंग पगै।
पदकंज गहे जब जान लगै॥

इससे प्रकट है कि सूरदास संवत् १६१६ में तुलसीदास से मिलने के लिये चित्रकूट आये थे, और उन्होंने उन्हें अपना सूरसागर भी दिखलाया था। अभीतक सूरदास का समय १५४० से १६२० तक माना जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता ने ब्रजभाषा के कट्टर कृष्णोपासक कवियों को उनकी आयु के अन्तिम दिनों में दौड़ा-दौड़ाकर और सैकड़ों मील दूर लाकर तुलसीदास के चरणों पर गिराया है। माना तो यह जाता है कि सूरदास अन्तिम दम तक ब्रजमण्डल से नहीं टले। और कहने के इस साहस की तो श्लाघा कीजिये कि ८ वर्ष के गोकुलनाथजी ने ७६ वर्ष के वृद्ध सूरदास को 'कृष्ण रङ्ग में बोरि' तुलसीदास के पास भेजा था!

वह गोस्वामी विट्ठलनाथजी का समय था, न कि गोकुलनाथजी का। विट्ठलनाथजी का जन्म सं० १५७२ में और अन्त सं० १६४३ में हुआ, और गोकुलनाथजी का जन्म और मरण क्रमशः सं० १६०८ और १६६० में माना जाता है।

'मूल गोसाईं-चरित' के उसी पृष्ठ पर मीराबाई के सम्बन्ध में यह छपा हुआ मिलता है।—

तब आयो मेवाड़ तें, बिप्र नाम सुखपाल।
मीराबाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रबाल॥

इससे यह अर्थ निकलता है कि सं० १६१६ में मीराबाई ने तुलसीदास के पास सुखपाल ब्राह्मण के हाथ पत्र भेजा था। मीराबाई का विवाह सं० १५७३ में हुआ था और राजपूताने के ऐतिहासिकों ने यह निश्चयपूर्वक निर्णय कर दिया है कि मीराबाई का देहान्त सं० १६०३ में हुआ था, तब उनका सं० १६१६ में तुलसीदास को पत्र लिखना कैसे सम्भव हो सकता है?

'मूल गोसाईं-चरित' के पृष्ठ २० पर यह छपा हुआ मिलता है।—

स्वामि नन्द सुलाल को सिष्य पुनी।
तिसु नाम दयाल सुदास गुनो।
लिषि कै सोइ पोथि स्वठाम गयो।
गुरु के ढिग जाय सुनाय दयो।
जमुना तट पै तय बत्सर लौं।
रसखानहिं जाइ सुनावत भो।

इससे ज्ञात होता है कि रसखान ने लगातार तीन वर्षों तक यमुना-तट पर किसी दयालदास से 'मानस' सुना था। पर रसखान की जीवनी से तो यह पता चलता है कि वे सं० १६४० के आस-पास गोस्वामी बिट्ठलनाथ के शिष्य हुये थे। शिष्य होने के पहले वे एक साहूकार के लड़के पर आशिक़ थे और उसके साथ-साथ घूमा करते थे। सं० १६७१ में उन्होंने 'प्रेम बाटिका' की रचना की थी। सं० १६३४ से १६३७ तक वे 'मानस' के प्रेमी रहे होंगे या अपने माशूक़ के आशिक़? यह विचार करने की बात है। उस समय तो वे यौवन के उन्माद में थे, और उनका प्रेम-परिवर्त्तन भी पहले-पहल कृष्ण के लिये हुआ था, न कि राम के लिये। अतएव 'मूल गोसाईं-चरित' के रचयिता की यह बात भी असत्य है।

बाबा बेनीमाधवदास केशवदास के सम्बन्ध में लिखते हैं ।—

कवि केसवदास बड़े रसिया।
घनस्याम सुकुल नभ के बसिया ॥
कवि जानि के दरसन हेतु गये।
रहि बाहर सूचन भेजि दये ॥
सुनि कै जु गोसाईं कहै इतनो।
कवि प्राकृत केसव आवन दो ॥
फिरिगे झट केसव सो सुनि कै।
निज तुच्छता आपुइ ते गुनि कै ॥
जब सेवक टेरेउ गे कहि कै।
हौं भेंटिहौं कालिह बिनै गहि कै ॥

* *

रचि राम सुचन्द्रिका रातहि में।
जुरे केसवजू असि घाटहि में ॥
सतसङ्ग जमी रसरंग मची।
दोउ प्राकृत दिव्य बिभूति खची ॥

* *

उड़छै केसवदास, प्रेत हतौ घेरेउ मुनिहिं।
उधरे बिनहिं प्रयास, चढ़ि बिमान स्वरगहि गयौ ॥

इस उद्धरण से मालूम होता है कि केशवदास ने एक रात में रामचन्द्रिका रच डाली थी। यह घटना 'मूल गोसाईं-चरित' के अनुसार सं० १६४३ के आसपास की है। पर केशवदास तो स्वयं अपनी रामचन्द्रिका की रचना का यह समय देते हैं।—

सोरह सै अट्ठावनै, कातिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तब लीन्हों अवतार ॥

अतएव बेनीमाधवदास का कथन तो बिल्कुल ही असत्य है। और सोरठे में जो केशवदास के प्रेतोद्धार की कथा है, वह भी मिथ्या ही है। बेनीमाधवदास के कथनानुसार यह घटना सं० १६५० के लगभग की है। पर केशवदास ने तो सं० १६५८ में कविप्रिया और रामचंद्रिका, १६६४ से वीरसिंहदेवचरित, १६६७ में विज्ञानगीता और १६६९ में जहाँगीर-जस-चन्द्रिका की रचना की थी। वे प्रेत हुये होंगे, तो सं० १६६९ के बाद ही कभी हुये होंगे।

'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार सं० १६५१ के आसपास तुलसीदास 'दिल्लीपति' से मिले थे।—

तहँ ते पँचये दिन मुनी, पहुँचे दिल्ली जाय।
षबरि पाय तुरतहिं नृपति, लिय दरबार बुलाय॥

दिल्लीपति बिनती करी, दिषरावहु करमात।
मुकरि गये बंदी किये, कीन्हे कपि उतपात॥

बेगम को पट फारेऊ, नगन भई सब बाम।
हाहाकार मच्यो महल, पटको नृपहिं धड़ाम॥

पर यह 'दिल्लीपति' कौन था? इतिहास से प्रकट है कि अकबर ने सं० १६६२ तक राज्य किया था। बेनीमाधवदास के कथनानुसार यदि तुलसीदास की भेंट दिल्लीपति अकबर से हुई होती, तो उसका उल्लेख अवश्य 'आईन अकबरी' में होता। पर आश्चर्य की बात है कि अबुलफ़ज़ल ने आईन अकबरी में अकबर से तुलसीदास के मिलने की कौन कहे, उस समय तुलसीदास की विद्यमानता का भी कहीं उल्लेख नहीं किया है। अतएव यह प्रसङ्ग भी बेनीमाधवदास की कपोल-कल्पना के सिवा और कुछ नहीं।

बेनीमाधवदास ने सं० १६७० में काशी में जहाँगीर का आना लिखा है।—

जहाँगीर आये तहाँ, सत्तर सम्बत बीत।
धन धरती दीबो चहै, गहे न मुनि विपरीत॥

पर जहाँगीर के इतिहास से प्रामाणिकता के साथ यह विदित है कि सन् १६१३ (सं० १६७०) में वह आगरे में था और उसने खुर्रम को मेवाड़-विजय के लिये भेजा था, और उसी सन् में मेवाड़ के राणा अमरसिंह ने उसकी अधीनता स्वीकार की थी। जहाँगीर सं० १६६९ से १६७३ तक दक्षिण और राजपूताने ही के युद्धों में लगा रहा। वह इस अवसर में पूर्व की ओर तो आया ही नहीं। ६ मार्च, सन् १६१७ में उसने दक्षिण पर चढ़ाई की थी।

इस प्रकार 'मूल गोसाईं-चरित' हमें भ्रम-पूर्ण और असत्य बातों से भरा हुआ मिलता है। हम उसे तुलसीदास के जीवन-चरित के लिये बिल्कुल ही विश्वास के योग्य नहीं मानते। वह किसी अनधिकारी व्यक्ति का लिखा हुआ है। सम्भव है, उसका उत्पत्ति-स्थान कनक-भवन (अयोध्या) ही हो।

तुलसीदास के जीवन-चरित की खोज

तुलसीदास के जीवन-चरित से सम्बन्ध रखनेवाले जितने प्राचीन प्रमाण उपलब्ध हैं, प्रायः वे सब ऊपर आगये हैं। तुलसीदास के इधर के चरित-लेखकों में कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता, जो ग्रियर्सन साहब की सीमा के बाहर खड़े होकर देख या सोच रहा हो। गत पचास वर्षों से ग्रियर्सन साहब ही तुलसीदास के चरित-लेखकों का मार्ग-प्रदर्शन कर रहे हैं। ग्रियर्सन साहब ने अपनी खोज के अनुसार जो कुछ निर्धारित कर दिया था, उसका समर्थन ही बाद के चरित-लेखकों का धर्म-सा होगया है।

तुलसीदास के जीवन-चरित सम्बन्धी दो पद्य-पुस्तकों—'तुलसी-चरित' और 'मूल गोसाईं-चरित' की समीक्षा ऊपर कुछ विस्तार के साथ की जा चुकी है। यद्यपि उनमें संवत्, तिथियाँ, दिन और प्रसिद्ध पुरुषों और स्थानों के नाम सभी कुछ हैं; पर उनमें वह सत्य नहीं निकला, जिसे इतिहास चाहता है। इससे हमें उनसे कुछ प्रकाश पाने की आशा त्याग ही देनी पड़ी। अब अतीत के अन्धकार में हमें कोई प्रकाश की रेखा दिखाई पड़ती है, तो वह है, 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'। मुझे आश्चर्य है कि तुलसीदास के चरित-लेखकों ने अबतक 'वार्ता' की ऐसी उपेक्षा की है। इसे हम उनकी विचार-परतन्त्रता के सिवा और क्या कहें?

किसीको कभी 'वार्ता' की कुछ पीड़ा उठी, तो उसने यह कहकर उसे टाल दिया कि वह सत्य नहीं है। उसमें के तुलसीदास कोई और होंगे। पर ये तो टालमटोल की बातें हैं। ऐसी मनोवृत्ति

के साथ कोई जीवन-चरित या इतिहास लिखा जायगा, तो सत्य-निर्णय की जिज्ञासा तो बनी ही रहेगी।

तुलसीदास के जितने जीवन-चरित अबतक प्रकाशित हो चुके हैं, करीब-करीब सबके पढ़ने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। किसी चरित-लेखक ने राजापुर (बाँदा) को, किसी ने तारी को, किसीने हाजीपुर (चित्रकूट) को और किसीने हस्तिनापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान माना है। पर किसी ने इस शंका का समाधान नहीं किया कि तुलसीदास जब बहुत बालक और 'अति अचेत'* थे, तब वे सूकरखेत कैसे पहुँच गये? यदि यह भी मान लिया जाय कि वे मँगते के लड़के थे, घर से भीख माँगते हुये उधर निकल गये होंगे, तो इस प्रश्न का हल होना तो और भी कठिन हो जायगा कि काशी और प्रयाग जैसे निकटवर्ती शहरों और तीर्थ-स्थानों की अपेक्षा सूकरखेत में उनके लिये कौन-सा विशेष आकर्षण था। सूकरखेत मँगतों का कोई खास अड्डा तो था नहीं। और राजापुर या तारी जैसे गाँववाले तो शायद सूकरखेत का नाम भी नहीं सुने होंगे।

बहुत दिनों से मेरे मन में इस बात की शङ्का उठ रही थी कि संभव है, तुलसीदास का जन्म-स्थान सूकरखेत ही हो। इससे वहाँ चलकर पता लगाना चाहिये। संयोग से विगत वर्ष टीकमगढ़ से 'बुन्देल-वैभव' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई। उसमें भी 'वार्ता' के आधार पर तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया देखकर मेरी धारणा को और भी प्रोत्साहन मिला और मैं ऑक्टोबर, १९३५ के पहले

---

* **पुनि मैं निज गुरु सन सुनी , कथा सो सूकर खेत।**
समुझि नहीं तसु बालपनु , तब अति रहेउँ अचेत॥
(बालकांड)

सप्ताह में तुलसीदास की जीवनी की खोज में घर से निकल ही पड़ा। भिन्न-भिन्न स्थानों में होता हुआ ता० २० ऑक्टोबर को मैं सोरों पहुँचा।

सोरों जाकर मुझे निश्चय होगया कि तुलसीदास का जन्म-स्थान वही है। वहीं उन्होंने पहले-पहल, बाल्यावस्था में, गुरु-मुख से राम-कथा सुनी थी। सोरों में मैं कई विद्वानों से मिला, जिनमें विद्वद्वर पंडित गंगावल्लभ पांडेय, व्याकरणाचार्य, काव्य-तीर्थ, न्यायशास्त्री, वैद्यराज, प्रिंसिपल मेहता-संस्कृत-विद्यालय और पंडित गोविन्दवल्लभ शास्त्री मुख्य हैं। सबने तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों ही बताया। मैंने राह चलते हुये साधारण व्यक्तियों से भी पूछ-ताछ की, जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों थे, सबने ऊपर की बात का समर्थन किया। यह स्वीकार करना होगा कि ऐसा उन्होंने इस लोभ से नहीं किया कि तुलसीदास-जैसे अमर कवि का जन्म-स्थान होने से उनके सोरों की महिमा बढ़ जायगी; क्योंकि इस रहस्य को तो वे बेचारे समझते भी नहीं। वहाँ तो आमतौर से सबको यह बात विदित है कि यह तुलसीदास का घर है, यह उनकी ससुराल है और यहाँ से वे गंगा पार करके सावन की रात में ससुराल गये थे।

मुझे सोरों के योगमार्ग महल्ले में वह स्थान दिखलाया गया, जहाँ तुलसीदास का घर था। वह इस समय एक कसाई के अधिकार में है, और कसाई ने उसके चारोंओर नये कमरे बनवाकर उसे भीतर कर लिया है। फिर भी कर्णमूल रोग पर लेप करने के लिये उस मकान की मिट्टी लेने को गाँव के लोग आते ही रहते हैं। उनको मालूम है कि तुलसीदास का मकान यही है, जिसकी मिट्टी कर्णमूल रोग के लिये लाभदायक है

जान पड़ता है, तुलसीदास का घर शुरू ही से कसाइयों के महल्ले में पड़ गया था। वहाँ इस प्रकार के कई दोहे सुनने को मिले।—

तुलसी तेरी झोपड़ी, गलकटियों के पास।
जौन करै सोई भरै, तू कत होत उदास॥

और यह तो मुझे पहले से याद भी था; पर मैं 'गलकटियों' को काम, क्रोध आदि समझता रहा। सोरों जाने पर यह रहस्य खुला कि वे 'गलकटिये' वास्तव में कसाई थे।

तुलसीदास के गुरु नरसिंहजी

सोरों में तुलसीदास के विद्या-गुरु नरसिंहजी नाम के एक विद्वान् थे। वहाँ उनका एक मन्दिर भी है। वह 'नरसिंहजी का मन्दिर' के नाम से प्रसिद्ध है। मैंने उसे देखा। निस्सन्देह उसके बाहरी दालान की अपेक्षा भीतर का असली मन्दिर बहुत पुराना है। कहा जाता है, पहले उस मन्दिर में हनुमानजी की मूर्त्ति थी; क्योंकि नरसिंहजी हनुमानजी के उपासक थे; पर कुछ वर्ष हुए, उनके किसी कुटुम्बी ने हनुमानजी की मूर्त्ति वहाँ से निकाल कर बाहर एक ताक में जड़ दी और उस स्थान पर पीतल की एक मूर्त्ति रख दी है, जो किसी अन्य देवता की है। मन्दिर के सामने, अहाते के कोने पर, बरगद का एक वृक्ष है, जो तुलसी-दास के समय के किसी बड़े वट-वृक्ष की जटा से उत्पन्न हुआ बताया जाता है। मन्दिर के सामने जो रास्ता है, उसके एक कोने पर एक प्राचीन कुवाँ है, जो 'नरसिंहजी का कुँवाँ' कहलाता है। "तुलसीदास ने 'कृपासिंधु नररूप हरि' में इन्हीं नरसिंहजी की ओर संकेत कया है।

तुलसीदास की ससुराल

सोरों के पास ही एक फर्लाङ्ग की दूरी पर बदरिया नाम का एक छोटा-सा गाँव है, जिसमें तुलसीदास की ससुराल थी। ससुरालवाला मकान, जो मुझे दिखाया गया, अब एक मन्दिर के रूप में है। सोरों और बदरिया के बीच में किसी समय गंगाजी की एक धारा बहती थी। सरकार ने गंगा की मुख्य धारा के पास नहर के लिये बाँध बँधवा दिया, जिससे सोरों आनेवाली धारा का मुख बन्द होगया; पर अब भी कई फर्लाङ्ग लम्बा, नदी के आकार का, एक तालाब वहाँ पर विद्यमान है, जो बरसात में दोनों ओर गंगाजी से जुड़ जाया करता है। अब भी उसमें काफ़ी जल है। अब तो उस तालाब पर पुल बन गया है, पर तुलसीदास के समय में संभव है, नाव ही से सोरों और बदरिया के बीच आवागमन होता रहा हो। वहाँ जाने पर यह बात तत्काल ध्यान में आती है कि तुलसीदास गङ्गा की इसी धारा को पारकर अपनी ससुराल गये होंगे।

सोरों का ऐतिहासिक महत्व

भारतवर्ष में सोरों नाम के कई स्थान प्रसिद्ध हैं, और सभी को शूकरक्षेत्र का अपभ्रंश बताया जाता है; पर प्राचीन शूकरक्षेत्र एटा ज़िले का हैं, क्योंकि वही गंगा-तट पर है। वह एक क़स्बा और तीर्थ-स्थान है। उसकी बाहरी रूप-रेखा एक अत्यन्त प्राचीन स्थान जैसी है। नवीं सदी में वहाँ सोलङ्की-वंश का सोमदत्त नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा राज करता था। उसके चिन्ह वहाँ अबतक मिलते हैं। सोरों के आसपास कुछ टीले हैं, जिनके अन्दर पत्थर के पुराने मकान ढके पड़े हैं। खोदने पर समूचे के समूचे मकान मिलते हैं। एक टीले पर एक मकान अभीतक खड़ा

है। मैंने उसे अन्दर जाकर देखा। उसके खम्भों पर बारहवीं और तेरहवीं सदी के अनेक शिलालेख हैं।

सोरों में सनाढ्य ब्राह्मणों ही की बस्ती अधिक है। पर सनाढ्य वहाँ के मूल-निवासी नहीं हैं; सब बाहर से आकर वहाँ बस गये हैं। वे अबतक अपने मूल-स्थान का नाम अपने नाम के साथ रखते आ रहे हैं। जैसे बड़ेगाँव से आनेवाले बड़गैयाँ, लखनपुर से लखनपुरिया और राजोर से राजोरिया, इत्यादि।

तुलसीदास के समय में सोरों में गोसाइयों के मठ बहुत थे। वे सब शैव थे। केवल नरसिंहजी वैष्णव थे। सनाढ्यों में ब्राह्मण भी सिंह शब्द अपने नाम के साथ लगाते हैं। जैसे हिन्दीवालों के सुपरिचित कवि पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय सनाढ्य हैं। कहा जाता है कि नरसिंहजी स्मार्त वैष्णव थे और अच्छे विद्वान् थे।

सोरों में तुलसीदास के एक कुटुम्बी पंडित मुरारी शुक्ल हैं, जो इस समय मेहता लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन हैं। मैं उनसे मिलने दो बार गया; पर खेद है, वे न घर पर उपस्थित मिले और न लाइब्रेरी में।

अन्य प्रमाण

मैं समझता हूँ, तुलसीदास का जन्म-स्थान सोरों प्रमाणित करने के लिये ऊपर के प्रमाण कमज़ोर नहीं हैं। पर उनका समर्थन यदि तुलसीदास के ग्रन्थों से भी हो, तो हमें वह सहायता भी ले लेनी चाहिये।

तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली, दोहावली और विनय-पत्रिका में बहुत-से ऐसे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है, जो सोरों में आमतौर से प्रचलित हैं, पर राजापुर और तारी में वे उस अर्थ में प्रचलित नहीं हैं। जैसे—

तायो ।—

स्रवन नयन मन मग़ लगे सब थलपति तायो ।

(विनय-पत्रिका)

'तायो' का अर्थ है जाँचा। यह सोरों में अब भी बोल-चाल में आता है। पर राजापुर में तोपने, ढँकने या गरम करने के अर्थ में व्यवहृत होता है।

ओर को ।—

हौं तो बिगरायल ओर को ।

(विनय-पत्रिका)

'ओर को' का अर्थ सोरों में है अन्त का। पर राजापुर और उसके आसपास 'ओर' का अर्थ है, 'आदि'। जैसे, ओर-छोर।

चकडोरि ।—

खेलत अवध खोरि , गोली भँवरा चकडोरि ।

(गीतावली)

ब्रज और उसके आसपास के ज़िलों में भौंरा और चकडोरी खेलने का रिवाज बहुत है। लड़के बाज़ी लगाकर यह खेल खेलते हैं। पर अयोध्या, बनारस और राजापुर में इस खेल का प्रचार शायद ही है। सोरों में इसका बड़ा प्रचार है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि तुलसीदास का जन्म ऐसे स्थान में हुआ था, जहाँ भौंरा और चकडोरी खेलने का बड़ा रिवाज था।

सोरों में प्रचलित एक और शब्द भी तुलसीदास को सोरों ही का प्रमाणित करता है। वह है,

कुटिल कीट ।—

तनु जनेउ कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिताहू ।

सोरों में केकड़े को कुटीला कहते हैं। उसकी यह विशेषता है कि वह माँ के पेट को फाड़कर निकलता है। उसके जन्म लेते ही उसकी माँ मर जाती है। ठीक ऐसी घटना तुलसीदास के सम्बन्ध में भी हुई जान पड़ती है। उनके जन्म के समय ही उनकी माता का देहान्त होगया होगा।

तुलसीदास की कविता का अनुशीलन सोरों में बैठकर करने से ऐसे और भी बहुत-से शब्द उसमें मिलेंगे, जो तुलसीदास को सोरों ही का बतायेंगे।

तुलसीदास का एक अन्य प्रयोग भी हमारा ध्यान सोरों की ओर खींचता है।—

स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजरा को सो टोटक
औचट उलटि न हेरो।
(विनय-पत्रिका)

अर्थात्, स्वार्थ के साथियों ने तिजरा के टोटके की तरह मुझे छोड़ दिया; उन्होंने एक बार लौटकर मुझे देखा भी नहीं।

विनय-पत्रिका के टीकाकारों ने तिजरा का अर्थ तिजारी (ज्वर) किया है। पर सोरों में तिजरा पसली चलने के रोग को कहते हैं। इस रोग में आटे का एक पुतला बनाकर, उसे चौराहे पर डालकर, लोग चले जाते हैं और फिरकर उसे नहीं देखते।

तुलसीदास ने ब्रजभाषा और अवधी-मिश्रित भाषा में सफलता के साथ रचना की है; यह भी उनके ब्रज और अवध की सरहद पर होने का एक प्रबल प्रमाण है।

सोरों ब्रज, राजपूताना, पंजाब, काठियावाड़ और गुजरात निवासियों का मुख्य तीर्थ-स्थान है। वहाँ उन प्रान्तों के लोग

गङ्गाजी में अपने मृतकों की अस्थियाँ डालने के लिये लाते हैं। वहाँ हरसाल एक बड़ा मेला लगता है, जिसमें उपर्युक्त प्रान्तों ही के लोग अधिक संख्या में एकत्र होते हैं। इससे सोरों की बोल-चाल में उन प्रान्तों के बहुत-से शब्द स्वभावतः भर गये हैं। तुलसीदास के काव्यों में उन शब्दों का हम ऐसा स्वाभाविक प्रयोग पाते हैं, जैसे वे तुलसीदास के अत्यन्त परिचित शब्द थे और उन्होंने जान-बूझकर अपनी बहुज्ञता दिखलाने के लिये उन्हें वहाँ नहीं बैठा दिया था। उदाहरण लीजिये—

माय जायो।—

तोसे माय जायो को।

(विनय-पत्रिका)

'तेरे जैसा माँ से उत्पन्न और कौन है?' यह शब्द ब्रज और मारवाड़ में आमतौर से प्रचलित है। पर राजापुर में यह इसी रूप में नहीं बोला जाता।

मींजो।—

मींजो गुरु पीठ।

(विनय-पत्रिका)

'गुरु ने पीठ पर हाथ फेरा'।

'मींजो' का अर्थ 'हाथ फेरना' सोरों और उसके आस-पास ही प्रचलित है, अवध या राजापुर में नहीं।

मैन।—

मैन के दसन कुलिस के मोदक।

(श्रीकृष्ण-गीतावली)

मैन (मैण) मारवाड़ी बोली में मोम को कहते हैं।

मोखे ।—

नयन बीस मन्दिर के मोखे।

(गीतावली)

'बीस नेत्र घर के झरोखे (गवाक्ष) की तरह'। मोखा शब्द मारवाड़ में व्यवहृत होता है।

माठ ।—

पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के।

(गीतावली)

माठ मारवाड़ी शब्द है और घड़े के अर्थ में व्यवहृत होता है।

मौंगी ।—

मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।

(गीतावली)

मौंगी का अर्थ है चुप। यह ठेठ गुजराती शब्द है।

मूकी ।—

मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।

(कवितावली)

मूकी शब्द ठेठ गुजराती है और छोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

बियो ।—

कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है।

(कवितावली)

बियो गुजराती के बीजा शब्द का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है, दूसरा।

म्हाको ।—

मन्दमति कंत सुन मन्त म्हाको।

(कवितावली)

म्हाको मारवाड़ी शब्द है, जिसका अर्थ है, मेरा या मुझको।

दारू।—

काल तोपची तुपक महि , दारू अनय कराल।

(दोहावली)

दारू मारवाड़ी में बारूद को कहते हैं।

नारि, नार।—

जियत न नाई नारि , चातक घन तजि दूसरहि।

(दोहावली)

नाड़ शब्द मारवाड़ी है, जिसका अर्थ है, गर्दन। नार या नारि नाड़ का अपभ्रंश है।

खेरो।—

दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों
सुबस बसै अब खेरो।

(विनय-पत्रिका)

खेरो या खेड़ा गुजराती शब्द है। जिसका अर्थ है, गाँव।

इसी प्रकार के और भी बहुत-से शब्द आये हैं, जो सोरों और उसके पश्चिमी प्रान्तों के हैं। इन शब्दों को तुलसीदास ने जान-बूझकर पूर्वी हिन्दी में रख लिये हैं, ऐसा कोई कारण नहीं जान पड़ता। बल्कि यह अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है कि ये उनके घरू शब्द थे, और उन्होंने इन्हें अपनी विचार-धारा में से पकड़ लिये थे।

तुलसीदास ने अपनी कविता में अरबी-फारसी के शब्दों का स्वच्छन्दता से प्रयोग किया है। यह भी उनके पश्चिम-प्रान्त-निवासी होने का एक प्रबल प्रमाण माना जा सकता है। सोरों और उसके आसपास के ज़िलों में मुसलमानों की बस्तियाँ बहुत हैं। इसीसे अरबी-फारसी के जितने शब्द पश्चिमी हिन्दी

में मिलते हैं, उतने पूर्वी हिन्दी में नहीं। या तो तुलसीदास तत्कालीन राज-भाषा जानते थे, या अरबी-फ़ारसी के बहुत-से शब्द उनके घर में ऐसा घर कर लिये थे कि उनके प्रयोग में उनको कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचना पड़ता था। जैसे।—

सीपर।—

लागति साँग विभीषन ही पर सीपर आप भये हैं।

(गीतावली)

सीपर फ़ारसी का सिपर है, जिसका अर्थ है, ढाल। यह तो स्पष्ट ही है कि 'ही पर' (हृदय पर) का अनुप्रास मिलाने के लिये ही सीपर आया है। पर आया है कितनी आसानी से; यह ध्यान देने की बात है। तुलसीदास न म्लेच्छों के हिमायती थे, न म्लेच्छ-भाषा के प्रेमी। यदि सिपर शब्द उनकी बोलचाल में आमतौर से प्रचलित न होता, तो फ़ारसी कोष में से निकालकर वे इस शब्द को राम के साथ प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज़ न करते। दो शब्द और लीजिये।—

दिल और सबील।—

भई आस सिथिल जगन्निवास दील की।

*   *

मैं बिभीषन की कछु न सबील की।

(कवितावली)

दील (दिल) और सबील शब्दों को देखिये, किस स्वाभाविक प्रवाह में जड़ दिये गये हैं। राम के मुख से तुलसीदास-जैसे वैष्णव साधु का यह कहलाना कि 'मैंने विभीषण की कुछ सबील (प्रबन्ध) नहीं की,' साधारण महत्व नहीं रखता। यदि सबील और दिल उनकी रोज़मर्रा की बोल-चाल के शब्द न

होते, तो मेरा विश्वास है, कम से कम राम के मुख में तो वे उन्हें न जाने देते। एक प्रयोग और देखिये।—

साहब दीन दुनीको।—

जो करता भरता हरता सुर साहिब
साहब दीन दुनी को।

'दीन (मज़हब) और दुनिया के साहब (स्वामी)' यह प्रयोग राजापुर के तुलसीदास नहीं कर सकते। यह महावरा मुसलमानी सभ्यता से अनुप्राणित समाज ही में प्रचलित है। एक और उदाहरण लीजिये—

जान।—

जग जाँचिये कोऊ न जाँचिये तो
जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे।

जान फ़ारसी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है प्राण, जीव, प्रेमिक और माशूक। राजापुर, काशी, प्रयाग और अयोध्या के लोग अपने आराध्य देवताओं के साथ अरबी फारसी के शब्द जोड़ना कभी पसंद न करेंगे। पर तुलसीदास ने जानकी के साथ राम के लिये 'जान' शब्द इतनी आसानी से रख दिया है, कि देखकर आश्चर्य होता है।

रामचरितमानस और तुलसीदास के दूसरे प्रायः सभी ग्रन्थों में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का एक ताँता-सा लगा हुआ है। उनकी सूची इस पुस्तक में अलग दी जा रही है, वहाँ देखिये।

अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि वे पश्चिमी प्रांत के निवासी थे, जहाँ अरबी-फ़ारसी के शब्द हिन्दुओं के घरों में निधड़क चलते थे और उनके साथ छुआछूत का विचार नहीं रक्खा जाता था।

अपने तर्क को अधिक सबल करने के लिये यहाँ विरोधी पक्ष की इस बात पर भी हमें विचार कर लेना चाहिये कि तुलसीदास ने पूर्वी प्रान्तों में प्रचलित बहुत-से घरेलू शब्दों और प्रथाओं का ज़िक्र भी तो किया है; फिर उन्हें पूर्वी ही प्रान्त में उत्पन्न हुआ क्यों न मान लें? यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं है। पर यह तो स्पष्ट ही है कि उन्होंने पूर्वी हिन्दी में रामचरित-मानस लिखा। वे जीवन के अन्त समय तक रहे भी इसी तरफ़। अतएव इधर के घरेलू शब्द उनकी भाषा में आगये, इसमें आश्चर्य की बात क्या है? पर अरबी-फ़ारसी के शब्द उन्होंने पूर्वी हिन्दी से नहीं चुने, यह हम संदेह-रहित होकर कह सकते हैं। क्योंकि यदि अरबी-फ़ारसी के शब्द उनकी मातृ-भाषा-द्वारा उनको न मिले होते, तो वे कदापि म्लेच्छ शब्दों को देवताओं के पवित्र मुख में रखने की प्रवृत्ति मन में न उठने देते। आजकल हिन्दी के कवि, जो भक्त नहीं हैं, और बहुत अंशों में उच्छृङ्खल ही हैं, अपनी रचना में अरबी-फ़ारसी के शब्दों को रखने में भड़कते हैं। तुलसी-दास तो भक्त थे और हिन्दू-संस्कृति के प्रबल समर्थक भी; अतएव अरबी-फ़ारसी के शब्दों से उनकी भड़क साधारण न होती।

'वार्ता' का प्रमाण

अब हम अपने पाठकों को 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' की ओर फिर लाना चाहते हैं। 'वार्ता' में तुलसीदास को नन्ददास का बड़ा भाई बताया गया है और नन्ददास को सनौढ़िया ब्राह्मण। सनौढ़िया सनाढ्य का अपभ्रंश है। अतएव तुलसीदास को भी सनाढ्य मानना पड़ेगा। 'वार्ता' में नन्ददास रामपुर ग्राम के निवासी माने गये हैं। रामपुर सोरों के निकट एक गाँव था; और नन्ददास के पिता का जन्म उसी गाँव में हुआ था। वे

किसी कारण-वश वहाँ से उठकर सोरों के योगमार्ग महल्ले में आकर आबाद होगये थे।

तुलसीदास के जो चरित-लेखक राजापुर या तारी को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानते हैं, उनको ऊपर के वर्णन पर एक बार फिर विचार कर लेना चाहिये। अब भी राजापुर और उसके आसपास के गाँवों में बहुत-से वृद्ध ऐसे मिलते हैं, जो राजापुर को तुलसीदास का जन्म-स्थान नहीं मानते। वे कहते हैं कि तुलसीदास कुछ दिनों तक वहाँ आकर रहे थे। किसी विशेष स्थान पर जाकर कुछ दिनों तक रहना और वही जन्म-स्थान होना दोनों भिन्न बातें हैं।

जन-श्रुति यह भी है कि तुलसीदास गङ्गा पार करके ससुराल गये थे। राजापुर में गङ्गा नहीं है, जमुना है। और एक यह दलील भी विचारणीय है कि राजापुर से विरक्त होकर निकले हुये तुलसीदास फिर उसी गाँव में कैसे आकर रहते? सोरों के पक्ष में यह बात अधिक ज़ोरदार मालूम होती है कि सच्चे त्यागी की तरह एक बार सोरों छोड़ने के बाद तुलसीदास फिर वहाँ लौट-कर नहीं गये। अतएव वह अवश्य ही उनका जन्म-स्थान हो सकता है।

काष्ठजिह्वा स्वामी ने तुलसीदास को, "तुलसी परासर गोत दूबे पतिऔजा के" लिखा है। 'भक्त-कल्पद्रुम' में राजा प्रतापसिंह ने उनको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है; ठाकुर शिवसिंह, पडित रामगुलाम द्विवेदी, पंडित सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन साहब ने उनको सरयूपारीण ब्राह्मण लिखा है; पर ये सब सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अवलंबित हैं। 'वार्ता' की रचना उस समय की है, जब तुलसीदास जीवित थे, और उसमें नन्ददास और तुलसीदास की भेंट का वर्णन एक प्रत्यक्षदर्शी की तरह किया गया है। उसे

मिथ्या क्या इसलिये मानना चाहिये कि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरिया ब्राह्मणों की मंडली से निकल जायँगे ? और सनाढ्य हो जायँगे ?

यहाँ हमें 'वार्ता' की प्रामाणिकता पर थोड़ा और विचार कर लेना है। 'वार्ता' के गोकुलनाथजी-द्वारा रचित होने के विरुद्ध एक यह दलील दी जाती है कि उसमें गोकुलनाथजी का भी हाल लिखा गया है। इससे उसे किसी अन्य ने गोकुलनाथजी के बहुत पीछे लिखा होगा। पर गोकुलनाथजी भी तो एक गद्दी-धर थे; एक प्रमुख वैष्णव और दो सौ बावन शिष्यों में थे; 'वार्ता' में उनका वर्णन तो आना ही चाहिये था। क्या एक वैष्णव भक्त की हैसियत से अपना वर्णन वे स्वयं नहीं लिख सकते थे ? और क्या यह संभावना नहीं है कि शिष्टाचार-वश अपना अंश उन्होंने स्वयं न लिखकर किसी अन्य से अपने सामने ही लिखा दिया हो ? 'मिश्रबन्धु-विनोद' में मिश्र-बन्धुओं ने अपना वर्णन स्वयं लिखा है, ऐसा ही गोकुलनाथजी भी तो कर सकते थे ?

एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि 'वार्ता' में 'सनौढ़िया ब्राह्मण' वाला वाक्य नहीं है। पर अब किसी खास संस्करण में न हो, तो यह कैसे स्वीकार कर लिया जाय कि वह किसी भी संस्करण में न होगा। 'रास-पंचाध्यायी' की भूमिका में स्व० बाबू राधाकृष्णदास ने नन्ददास का जो परिचय 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' से लेकर और उसका हिन्दी-अनुवाद करके दिया है, उसका पहला वाक्य यह है।—

'नन्ददास सनौढ़िया ब्राह्मण तुलसीदास के छोटे भाई पूर्व देश के रहनेवाले थे।'

इससे यह तो निश्चय ही है कि 'वार्ता' की जो प्रति स्व० बाबू राधाकृष्णदासजी के सामने थी, उसमें यह वाक्य था।

मैंने एक गुजराती सज्जन द्वारा सम्पादित और बम्बई से प्रकाशित 'वार्ता' की एक ऐसी प्रति भी देखी है; जिसमें नन्ददास की वार्ता ही नहीं है। पर भूमिका में उसके सम्पादक ने लिख दिया है कि उन्होंने कुछ वार्त्तायें, जो उन्हें अनावश्यक जान पड़ीं, निकाल दी हैं। अतएव 'वार्त्ता' की जो प्राचीन से प्राचीन हस्तलिखित प्रति श्रीनाथद्वारे में और श्रीगट्टूलालजी के पुस्तकालय (बम्बई) में है, उसीको प्रमाण मानना चाहिये।

अंत में मैं निश्चित रूप से सोरों को, जिसका प्राचीन नाम शूकरक्षेत्र या वाराहक्षेत्र है और जो इस समय एटा ज़िले में एक क़स्बा और तीर्थ-स्थान है, तुलसीदास का जन्म-स्थान स्वीकार करता हूँ। साथ ही यह भी कि वे सनाढ्य ब्राह्मण थे और शुक्ल थे। सनाढ्यों में शुक्ल, तेवारी आदि सभी आस्पद होते हैं।

अब यहाँ दो प्रश्न और उठ खड़े होते हैं।—

१—क्या तुलसीदास नन्ददास के सगे बड़े भाई थे ? यदि थे, तो पहले प्रमाणित किया जा चुका है कि तुलसीदास की माता का तो उनके जन्मते ही देहान्त होगया था, तब नन्ददास और चन्द्रहास किससे पैदा हुये थे ?

२—तुलसीदास के 'ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं' का क्या अभिप्राय है ? वे अपनी जाति-पाँति छिपाते क्यों थे ?

इन प्रश्नों पर हमें गम्भीरता से विचार करना होगा। खेद है, यहाँ हमें अनुमान ही से काम लेना पड़ेगा। 'वार्ता' में सगा भाई होना नहीं लिखा है। चचेरा भाई भी भाई ही कहलाता है। संभव है, तुलसीदास नन्ददास के चचेरे भाई हों। दोनों के पिता पहले ही अलग हो चुके हों। तुलसीदास के माता-पिता सोरों में पहले ही आकर बस गये हों और नन्ददास के माता-पिता रामपुर ही में रहते रहे हों। जब बचपन में तुलसीदास अनाथ होकर घर-

घर टुकड़े माँगकर जीवन चला रहे थे, तब उनको नरसिंहजी ने स्वजाति का बालक समझकर पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया होगा। पीछे तुलसीदास विवाह करके गृहस्थ बने, तब नन्ददास के पिता भी सपरिवार सोरों में आ बसे होंगे।

'वार्ता' से मालूम होता है।—

"नन्ददास बड़े रसिया और गाने-बजाने के बड़े शौक़ीन थे। उन्होंने तुलसीदास से द्वारका चलने को कहा। तुलसीदास नहीं गये; तब नन्ददास अकेले चले गये। पर फिर वे नहीं लौटे। मथुरा पहुँचकर वे एक क्षत्रिय की सुन्दरी बहू पर आसक्त होगये। उसके पीछे वे ऐसे पड़े कि क्षत्रिय अपने परिवार-सहित चुपके से घर छोड़कर भाग निकला और गोकुल पहुँचा। नन्ददास उस बहू को एक बार देखे बिना अन्न ही जल न ग्रहण करते थे। वे भी खोज लगाते हुये गोकुल पहुँचे। वहाँ गोसाईं विट्ठलनाथजी से उनका साक्षात्कार हुआ। उनके उपदेश से उन्होंने उक्त बहू का पिंड छोड़ा।

'गोसाईं जी के दरबार में रात-दिन रस की वर्षा होती रहती थी। अतएव नन्ददास वहीं रम गये और फिर घर नहीं लौटे। गोसाईं जी की एक सेविका रूपमंजरी से उन्होंने मित्रता भी जोड़ ली थी। उसके नाम पर उन्होंने 'रूपमंजरी' नामक एक पुस्तक भी रची है।"

सोरों में यह प्रसिद्ध है कि नंददास एक बार कुछ धन कमा-कर लौटे थे और उन्होंने रामपुर को हस्तगत किया और उसका नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया। सोरों के निकटवर्त्ती ग्रामों में 'नंददास सुकुल कियो रामपुर से श्यामपुर' की कहावत अबतक प्रचलित है। नंददास के गृह त्यागने के बाद तुलसीदास ने गृह

त्यागा था। इसका संकेत 'वार्ता' में भी मिलता है। मेरा अनुमान है कि तुलसीदास नंददास के चचेरे भाई थे।

तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे

दूसरे प्रश्न के उत्तर में भी अनुमान ही से काम लेना पड़ेगा। यदि तुलसीदास कान्यकुब्ज या सरवरिया ब्राह्मण होते, तो उनको जाति बताने में कोई खटका ही नहीं था। क्योंकि इन नामों से काशी के लोग परिचित थे। वे थे सनाढ्य। पूर्वी प्रांतों में सनाढ्यों की बस्ती आजकल भी कम है। पहले तो बिलकुल ही न रही होगी। सनाढ्यों में विद्वानों की संख्या अब भी बहुत कम है। इससे काशी के लोग विश्वास ही न करते होंगे कि सनाढ्य भी कोई ब्राह्मण होते हैं।

तुलसीदास को वे अब्राह्मण, रजपूत, धूत, अवधूत आदि कहकर चिढ़ाया करते थे। उसी पर झुँझलाकर तुलसीदास कहते थे—मुझे ब्याह-बरेखी तो करना नहीं है, किसी की बेटी से बेटा ब्याहना नहीं है, न किसीकी जाति बिगाड़नी है। फिर मेरी जाति-पाँति के पीछे क्यों पड़े हो? यह उनका तत्सामयिक उत्तर था। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि उनका विवाह ही नहीं हुआ था और न उनकी कोई जाति-पाँति थी।

सनाढ्यों में खान-पान का वैसा बन्धन भी नहीं होता, जैसा कान्यकुब्जों या सरवरियों में होता है। और लड़कपन में तुलसीदास सब जातियों के टुकड़े खा भी चुके थे। इससे उनके हृदय से खान-पान और जाति-पाँति की भावना उड़ ही गई थी। काशीवालों-जैसे खान-पान सम्बन्धी आचार-विचार उनके न रहे होंगे। पर लोगों के ताने और आक्षेप सुनकर वे कुढ़ते अवश्य थे।

तुलसीदास क्या पाप की संतान थे ?

यहाँ पर यह बात भी हमें हल कर लेनी चाहिये कि तुलसीदास ने कवितावली में जो यह लिखा है।—

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो
सुनि पाप परिताप भयो जननी जनक को।

इसका अभिप्राय क्या है ? इसमें आये हुये 'पाप' शब्द से कुछ लोग तर्क करते हैं कि वे संभवतः पाप की सन्तान थे। यद्यपि यह बात एक साधारण बुद्धिवाला भी समझ सकता है कि पाप की संतान को जन्म देने का लांछन केवल माता पर लगाया जा सकता है, पिता तो इस विषय में प्रायः अनभिज्ञ ही रहता है। अतएव उसे परिताप क्यों होगा ? मंगन कुल में जन्म लेने की बात पर तो यह अनुमान किया जा सकता है कि वे भिक्षुक ब्राह्मण के कुल में जन्मे थे। पर उनके जन्म से उनके माता-पिता को पाप और परिताप क्यों हुआ ? कुछ चरित-लेखकों ने इसपर यह विचार दौड़ाया है कि वे अभुक्तमूल में पैदा हुये थे; इससे उनके माता-पिता को दुःख हुआ, और वे यह भी कहते हैं कि इसी कारण से माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया। पहले तो अभी यही निश्चित नहीं कि वे १५८३ में उत्पन्न हुये थे, या १५८९ में। वे चाहे जब पैदा हों, हर वक्त अभुक्तमूल ही उनके मत्थे क्यों पड़ेगा ? और यदि मान भी लिया जाय कि वे अभुक्त-मूल में पैदा हुए थे, तो उनको छोड़ देने का क्या कारण था ? जो ज्योतिषी अभुक्तमूल बतलाता है, वह उसका प्रायश्चित्त भी तो बतलाता है। अभुक्तमूल में कितने ही बच्चे पैदा होते रहते हैं, पर उनमें से कोई छोड़ नहीं दिया जाता। इससे अभुक्तमूल-वाली कल्पना तो निस्सार जान पड़ती है।

तुलसीदास के उक्त कथन का अभिप्राय मैं यह समझता हूँ कि तुलसीदास का जन्म लेना उनकी माता के लिये पाप हुआ, क्योंकि वह उनके जन्मते ही मर गई। और स्त्री के वियोग और एक नवजात, मातृहीन शिशु की प्राप्ति से उनके पिता को परिताप हुआ। मेरा अनुमान है कि 'भयो' के स्थान पर 'भयों' पाठ होगा। कवितावली की कोई प्रामाणिक प्रति ही इस गुत्थी को सुलझा सकती है। 'भयों' पाठ होने से अर्थ अधिक स्पष्ट हो जायगा। अर्थात् तुलसीदास कहते हैं कि मैं अपनी माता के लिए तो पाप रूप हुआ; क्योंकि वह उनके जन्मते ही मर गई; और अपने पिता के लिये परिताप स्वरूप हुआ; क्योंकि पिता को स्त्री का वियोग ही नहीं सहन करना पड़ा, बल्कि एक नवजात शिशु की सँभाल भी करनी पड़ी।

तुलसीदास का स्वभाव

कवि के स्वभाव का बहुत कुछ प्रतिबिम्ब उसकी कृति में आजाता है। तुलसीदास स्वभाव ही से कवि थे, जहाँ वे एक सूक्ष्मदर्शी, अनुभवी, विद्वान्, भक्त, निरभिमान और विनीत थे, वहाँ बड़े विनोद-प्रिय भी जान पड़ते हैं। इस कोटि के महापुरुषों में विनोद की ऐसी मात्रा बहुत कम पाई जाती है, जैसी तुलसीदास में थी। साधु-महात्मा प्रायः गम्भीर और उदासीन-से रहते हैं, पर तुलसीदास को हम कभी हास-परिहास में पिछड़ा हुआ नहीं पाते। राम को छोड़कर उन्होंने शेष सब देवताओं के रूप-रङ्ग, रहन-सहन का मज़ाक़ उड़ाया है। और बरवै रामायण में तो उन्होंने राम को भी नहीं छोड़ा। उनके साँवले रूप की चुटकी उन्होंने ले ही ली।—

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ॥
(बरवै रामायण)

इसी प्रकार शिवजी पर भी एक व्यंग छोड़े बिना उनसे न रहा गया ।—

कैसे कहै तुलसी वृषासुर से वरदानि,
बानि जानि सुधा तजि पिअनि जहर की ।

अर्थात् जिसकी आदत ऐसी है कि वह अमृत छोड़कर ज़हर पीता है, उससे मैं क्या विनय करूँ ? समझिये, कैसा मज़ाक़ है !

ऋषि-मुनियों के प्रति उनमें काफ़ी श्रद्धा होने पर भी उनके सम्बन्ध में उन्होंने एक ऐसा छन्द लिखा है, जिसे पढ़कर उनके विनोदी स्वभाव पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। राम के बन आने का समाचार सुनकर बनवासी लोग बहुत सुखी हुये थे। उनमें विंध्याचल के तपस्वी मुनि भी थे; पर वे इसलिये प्रसन्न नहीं हुये थे कि राम बड़े सुन्दर हैं, उनको वे आँख भरकर देखेंगे, या राम राक्षसों को मारकर उन्हें निर्विघ्न करने आये हैं; बल्कि इसलिये कि राम के चरण लगने से पर्वत की सब शिलायें चंद्र-मुखी स्त्रियाँ हो जायँगी। वे बेचारे स्त्री-रहित थे ही। राम के आगमन से उनका यह कष्ट दूर हो जाता ।—

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोव्रत-
धारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी तुलसी
सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे ।
ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।

कीन्हीं भली रघुनायकजू
करुना करि कानन को पगु धारे ॥
(कवितावली)

अहल्या का उद्धार राम के चरण-स्पर्श से हुआ था। जब वह शिला से स्त्री होगई, तब गौतम उसे लेकर जाने लगे। तुलसीदास से इस अवसर पर मज़ाक़ किये बिना रहा न गया। कह ही तो डाला।—

गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।

'गौनो सो लिवाइ कै' पढ़ते ही देहाती दृश्य सामने आ जाता है। ऐसे ही एक स्थान पर उन्होंने गौतम को गुरु कहकर फिर 'ख़सम' कहा है।—

राम के प्रसाद गुरु गौतम ख़सम भए।
(गीतावली)

शिव के पारषदों के रूप-रंग बेढंगे तो थे ही, देवताओं में भी कुछ मूर्तियाँ ऐसी थीं, जिनको देखकर कौतूहल हो सकता था। जान पड़ता है, तुलसीदास बहुत समय से उनकी ताक में थे। अन्त में राम के विवाह के अवसर पर उन्होंने उनको एक साथ पाकर पकड़ ही तो लिया और उनकी शक्ल-सूरत को लेकर ख़ासा विनोद किया।—

शिव के पाँच मुख और पन्द्रह नेत्र थे। वे पन्द्रहों नेत्रों से जी भरकर राम-रूप की माधुरी पी रहे थे।—

संकर राम रूप अनुरागे।
नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥
(रामचरितमानस)

ब्रह्मा के चार मुख और आठ आँखें थीं। राम के विवाह के अवसर पर वे आठों आँखों से राम के रूप-रस का पान कर रहे थे। पर उनका जी ललचा रहा था कि और अधिक आँखें क्यों न हुईं।—

निरखि राम छबि बिधि हरखाने।
आठै नयन जानि पछिताने॥

स्वामिकार्तिक भी वहाँ मौजूद थे। उनके छः मुख और बारह आँखें थीं। तुलसीदास की दृष्टि उनपर पड़ी, तो वे इसलिये उन्हें प्रसन्न दिखाई पड़े कि वे ब्रह्मा से ड्योढ़ा आनन्द ले रहे थे।—

सुरसेनप उर बहुत उछाहू।
बिधि ते डेवढ़ सुलोचन लाहू॥

पास ही इन्द्र था। गौतम के शाप से पहले उसे हज़ार भग प्राप्त हुये थे; फिर उन्हीं स्थानों पर उसे नेत्र मिल गये थे। पहले तो अपने कलङ्क से वह बहुत लज्जित रहा करता था; पर उस दिन वह गौतम के शाप को अपने लिये बड़ा ही सुखदायक समझने लगा।—

रामहिं चितव सुरेस सुजाना।
गौतम स्राप परम हित जाना॥

अन्य देवता खड़े-खड़े ईर्ष्या से देख रहे थे और मन ही मन कह रहे थे कि आज इन्द्र के समान कोई नहीं है।—

देव सकल सुरपतिहिँ सिहाहीं।
आजु पुरन्दर सम कोउ नाहीं॥

विनोदी स्वभाव होने के अतिरिक्त तुलसीदास बड़े निर्भीक और स्पष्टवादी भी थे।

सच्ची बात कहने में वे कभी संकोच नहीं करते थे। राम के सच्चे भक्त होते हुये भी उन्होंने उनकी एक कमज़ोरी कही डाली।—

तुलसी जु पै गुमान को, होतो कछू उपाव।
तौ कि जानकिहि जानि जिय, परिहरतेउ रघुराव॥
(दोहावली)

दीनता और नम्रता उनके स्वभाव के खास गुण थे, जो उनके जीवन में प्रारंभ से लेकर अंतिम दम तक साथ रहे।

अपने स्वभाव के बारे में उनकी निजी राय यह है।—

जपकी न तप खप कियो न तमाइ जोग,
जाग न बिराग त्याग तीरथ न तन को।
भाई को भरोसो न खरोसो बैर बैरीहू सों,
बल अपनो न हित जननी न जनको॥
लोक को न डर परलोक को न सोच,
देव सेवा न सहाय गर्व धाम को न धन को।
राम ही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागे,
ऐसोई स्वभाव कछु तुलसी के मन को॥
(कवितावली)

अगले कवित्त में भी वे अपने बारे में कहते हैं।—

रावरो कहावौं गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं।
जानत जहान मन मेरे हू गुमान बड़ो,,
मान्यो मैं न दूसरो न मानत न मानिहौं।
पाँच की प्रतीति न भरोसो मोहिँ आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं।

गढ़ि गुढ़ि छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं,
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनि हौं ॥

अपने आराध्य पर, अपने प्रियतम पर प्रत्येक सच्चे भक्त या प्रेमी को अभिमान होना ही चाहिये। वह तुलसीदास में भी था। इसीसे वे राम को भी खरी-खरी सुनाने में कसर नहीं रखते थे।—

ब्याध अपराध की साध राखी कवन ?
पिंगला कौन मति भक्ति भेई ?
कौनधौं सोमजागी अजामिल अधम,
कौन गजराज धौं बाजपेई ?

* *

परम पुनीत सन्त कोमल चित , तिनहिं तुमहिं बनि आई ।
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहिं , तारेहु ? कछु रही सगाई ?

* *

जद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥

सुग्रीव और विभीषण ने राम की शरण ली थी, उनकी इतनी ही मुरौवत तुलसीदास को थी; नहीं तो वे सुग्रीव और विभीषण के कृत्यों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। राम को उन्होंने कहा।—

महाबली बालि दलि कायर सुकंठ कपि
सखा किये, महाराज हौं न काहू कामको ।
भ्रात घात पातकी निसाचर सरन आये
कियो अङ्गीकार नाथ ऐसे बड़े बाम को ॥
(कवितावली)

सुग्रीव की घटना को लेकर उन्होंने राम पर एक व्यंग और भी चलाया है।—

बंधु-बधू-रत कहि कियो, बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की, चितइ न कछू कुचालि॥
(दोहावली)

इस दोहे के अंदर तुलसीदास की स्वाभाविक स्पष्ट-वादिता स्पष्ट झलक रही है। यद्यपि उन्होंने प्रभु की प्रशंसा ही में यह दोहा कहा है; पर उन्होंने प्रभु के चरित में आक्षेप-योग्य स्थान देख लिया था।

उनका हृदय बड़ा विशाल था। उसमें सद्‌गुण के लिये, चाहे वह शत्रु ही के पास क्यों न हो, पर्याप्त सम्मान और शिष्ट-जनोचित उदारता विद्यमान थी। अपने प्रबल शत्रु रावण की प्रशंसा में कहा हुआ उनका यह दोहा उनके व्यक्तित्व को बड़ा स्तुत्य बना देनेवाला है।—

बीस बाहु दस सीस दलि, खंड खंड तनु कीन्ह।
सुभट सिरोमनि लंकपति, पाछे पाँवन दीन्ह॥

उनको अपनी भक्ति और भगवान की शरणागत-वत्सलता पर बड़ा विश्वास था। ज़रा उनकी आत्मश्लाघा तो सुनिये।—

जानहिं सिय रघुनाथ भरत को, सील सनेह महा है।
कै तुलसो जाको रामनाम सो, प्रेम नेम निबहा है॥
(गीतावली)

वे राम को सावधान करते हुये कहते हैं।—

हौं अबलौं करतूति तिहारिय
चितवत हुतो न रावरे चेते।

अब तुलसी पूतरो बाँधि है
सहि न जात मोपै परिहास एते ॥
(विनय-पत्रिका)

अर्थात्, अबतक मैं आपकी करतूत देखता रहा कि कब आप मेरी ओर दृष्टि करते हैं; पर आपने ध्यान ही नहीं दिया। अब मुझसे उपहास सहा नहीं जाता। मैं आपके नाम का पुतला बाँधूँगा।

भाटों या नटों को जब खेल दिखाने पर कुछ नहीं मिलता, तब कपड़े का एक पुतला बनाकर वे उसे बाँस पर लटकाये घूमते हैं और कहते फिरते हैं कि देखो यह सूम है, इसने मुझे कुछ नहीं दिया। उपहास के भय से लोग कुछ न कुछ दे ही देते हैं। तुलसीदास का कहना है कि वे भी इसी तरह अपने राम को सूम प्रसिद्ध करते घूमेंगे और बदनाम करेंगे। आगे वे फिर कहते हैं।—

कहैही बनैगो राम !
"तुलसी तू मेरो, हारि हिये न हहरु !
(विनय-पत्रिका)

देखा आपने ! भक्ति की दृढ़ता इसे कहते हैं।

तुलसीदास के स्वभाव में हम सहिष्णुता की भी काफ़ी मात्रा विद्यमान पाते हैं। रामचरितमानस के प्रारंभ में उन्होंने दुष्टों की जो स्तुति की है, उसमें उनकी अपार मनोव्यथा सजीव हो उठी है। कवितावली और विनय-पत्रिका में भी बहुत-से ऐसे छन्द मिलते हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि राम-कथा के साथ-साथ किसी या किन्हीं के साथ उनका रोज़ का कोई संघर्ष भी चल रहा था।—

मारग मारि महीसुर मारि
कुमारग कोटिक कै धन लीयो ।
संकर कोप सों पाप को दाम
परीच्छित जाहिगो जारिकै हीयो ॥
कासी में संकट जेते भये
ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो ।
आजु कि काल्हि परौं कि नरौं
जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो ॥
(कवितावली)

काशी में तुलसीदास के हृदय को अनेक आँधियों और तूफानों का सामना करना पड़ता था । फिर भी वे राम के प्रेम में हिमालय के समान अचल प्रमाणित हुये । जो आत्मानन्दी न होगा, सहिष्णुता जिसे सिद्ध न होगी, वह वैसी गम्भीर भावपूर्ण कविता नहीं रच सकता, जैसी तुलसीदास ने अपने अन्तिम दिनों में विनय-पत्रिका और कवितावली में रची है । दोनों ग्रंथ अपने रचयिता के हृदय की विशालता और उसकी एकान्त-चिन्ता के अनोखे साक्षी हैं ।

तुलसीदास का व्यक्तित्त्व

पहले मेरा अनुमान था कि रामचरितमानस के कारण तुलसीदास की महिमा बढ़ी होगी । पर उनके ग्रंथों का अच्छी तरह अनुशीलन करने के उपरान्त मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि रामचरितमानस रचने के पहले ही वे अपने व्यक्तित्त्व की विशेषता से बहुत सम्मान प्राप्त कर चुके थे । रामचरितमानस केवल उनके सम्मान को बढ़ाने में सहायक हुआ है, निर्माण में नहीं । 'मानस' में वे स्वयं लिखते हैं ।—

नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भये भाँग ते, तुलसी तुलसीदास॥

इससे विदित होता है कि रामचरित-मानस की रचना के पहले तुलसीदास 'भाँग' से 'तुलसी' बन चुके थे। इसी भाव की दो पंक्तियाँ वे बरवै-रामायण में भी लिखते हैं।—

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥

इसमें तो संदेह ही नहीं है कि तुलसीदास ने संस्कृत-साहित्य का गम्भीर अनुशीलन किया था। वे वेद, उपनिषद्, दर्शन और पुराणों ही के पंडित नहीं थे, नाटक, छन्द-शास्त्र, काव्य, इतिहास, ज्योतिष, संगीत और अंकगणित के भी अच्छे ज्ञाता थे। मेरा तो विश्वास है कि वे अपने समय की राज-भाषा फ़ारसी से भी अच्छी तरह परिचित थे। उनकी कविता में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य ही इसका प्रमाण है। उर्दू में प्रचलित बहुत से महावरे भी उनकी कविता में पाये जाते हैं। अनुपम विद्वत्ता के साथ-साथ उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति ने सोने में सुगन्ध का रूप धारण कर लिया था। राम-नाम के प्रभाव से उनकी विद्वत्ता और भी चमक उठी थी। रामचरित-मानस में जितने प्रकार के मनोभावों का चित्रण उन्होंने किया है, वे सब केवल कवि-कल्पना नहीं हैं, उनमें बहुत-से उनके अनुभूत भी हैं। गुणों और दोषों से भरे हुए एक विस्तृत जगत् का अच्छा अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् ही वे 'मानस' की रचना में प्रवृत्त हुये थे। उनकी प्रसिद्धि में चाहे उनके अलौकिक चमत्कार अथवा चमत्कारों की रचना करके उनका प्रचार करने-वाले उनके सुचतुर श्रद्धालु भी कारण क्यों न हुये हों, पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वे स्वयं एक चमत्कारी पुरुष

थे, और उनका उच्च कोटि का व्यक्तित्व, बिना किसी दैवी सहायता के, स्वतन्त्र रूप से, सम्मान का पात्र था।

तुलसीदास का जन्म-संवत्

तुलसीदास के जन्म-संवत् का यदि कहीं कोई लिखित प्रमाण अभी तक मिला है तो वह शिवसिंह सेंगर के 'सरोज' में है। शिवसिंह ने तुलसीदास का जन्म संवत् १५८३ में माना है। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर या यह तुक भिड़ाकर कि कितने दिनों में उन्होंने विद्या पढ़ी होगी, कितने दिनों तक वे गृहस्थी में रहे होंगे और कम से कम किस आयु में उन्होंने रामचरित-मानस लिखना प्रारम्भ किया होगा, तुलसीदास का जन्म-संवत् स्थिर करना एक दिमाग़ी कसरत है। शिवसिंह सेंगर ने आज से पचास-साठ वर्ष पहले जो कुछ सुना था, उसे तो आज की अपेक्षा सत्य के कुछ अधिक निकट मानना ही होगा। लेकिन पंडित रामगुलाम द्विवेदी, पंडित सुधाकर द्विवेदी और ग्रियर्सन साहब तुलसीदास का जन्म-सं० १५८९ मानते हैं। उक्त विद्वानों की राय से मैं भी सहमत हूँ और तुलसीदास के जन्म-संवत् १५८९ ही को ठीक मानता हूँ।

तुलसीदास की गुरु-परम्परा

'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में तुलसीदास ने जो गुरु-वन्दना की है, उसमें आये हुये 'कृपासिंधु नर रूप हरि' ने उनके चरित्र-लेखकों को बड़े विचार में डाल दिया है। 'नरहरि' के लिये कोई नरहर्यानन्द या नरहरिदास खोज निकाले गये हैं, जो श्रीरामानन्दजी के बारह शिष्यों में कहे जाते हैं। प्रमाण के लिये ग्रियर्सन साहब को पटने में मिली हुई वैष्णव-संप्रदाय की एक सूची पेश की जाती है, जो आगे दी जा रही है।—

१ श्रीमन्नारायण ।
२ श्रीलक्ष्मी ।
३ श्रीधर मुनि ।
४ श्रीसेनापति-मुनि ।
५ श्रीकारिसूनु मुनि ।
६ श्रीसैन्यनाथ मुनि ।
७ श्रीनाथ मुनि ।
८ श्रीपुण्डरीक ।
९ श्रीराम मिश्र ।
१० श्रीपारांकुश ।
११ श्रीयामुनाचार्य ।
१२ श्रीरामानुज स्वामी ।
१३ श्रीशठकोपाचार्य ।
१४ श्रीकूरेशाचार्य ।
१५ श्रीलोकाचार्य ।
१६ श्रीपराशराचार्य ।
१७ श्रीवाकाचार्य ।
१८ श्रीलोकाचार्य ।
१९ श्रीदेवाधिपाचार्य ।
२० श्रीसैलेशाचार्य ।
२१ श्रीपुरुषोत्तमाचार्य ।
२२ श्रीगङ्गाधरानन्द ।
२३ श्रीरामेश्वरानन्द ।
२४ श्रीद्वारानन्द ।
२५ श्रीदेवानन्द ।
२६ श्रीशामानन्द ।
२७ श्रीश्रुतानन्द ।
२८ श्रीनित्यानन्द ।
२९ श्रीपूर्णानन्द ।
३० श्रीहर्यानन्द ।
३१ श्रीश्रयानन्द ।
३२ श्रीहरिवर्यानन्द ।
३३ श्रीराघवानन्द ।
३४ श्रीरामानन्द ।
३५ श्रीसुरसुरानन्द ।
३६ श्रीमाधवानन्द ।
३७ श्रीगरीबानन्द ।
३८ श्रीलक्ष्मीदासजी ।
३९ श्रीगोपालदासजी ।
४० श्रीनरहरिदासजी ।
४१ श्रीतुलसीदासजी ।

पर तुलसीदास के ग्रंथों को ध्यानपूर्वक पढ़ने के उपरान्त यही धारणा दृढ़ होती है कि वे एक स्मार्त वैष्णव थे, श्रीरामानुज या रामानन्द-सम्प्रदाय के शिष्य नहीं । यदि वे किसी रामानन्दी साधु के शिष्य होते, तो रामचरित-मानस के प्रारम्भ में पहले-पहल वे वाणी या विनायक की स्तुति न करते; वे कहीं

न कहीं; किसी बहाने से, स्वामी रामानुज या रामानन्द का नाम अवश्य देते ।

इसके सिवा वे स्मार्तों ही की रामनवमी भी मनाते थे। 'मानस' का प्रारम्भ उन्होंने संवत् १६३१ में मधुमास की नवमी को किया था, जो भौमवार को पड़ी थी। ज्योतिष की गणना से यह नवमी बुधवार को पड़ती है । पर स्मार्तों और वैष्णवों की रामनवमियों में अन्तर होता है। स्मार्तों की रामनवमी उस दिन मानी जाती है, जिस दिन मध्याह्न में भी नवमी की तिथि रहती है। किन्तु वैष्णव उस नवमी को ठीक मानते हैं, जो मध्यान्ह के पूर्व ही समाप्त हुई रहती है। इस नियम के अनुसार वैष्णवों की रामनवमी १६३१ में बुधवार को पड़ी थी। तुलसीदास रामानन्दी वैष्णव होते, तो कभी मंगलवार की रामनवमी न मनाते ।

वास्तव में तुलसीदास के शिक्षा और दीक्षा दोनों के गुरु सोरों-निवासी नरसिंहजी थे, जो स्मार्त वैष्णव थे। उनका स्थान अब भी सोरों में है और वहाँ उनके वंशज भी विद्यमान हैं, जो चौधरी कहलाते हैं।

तुलसीदास की लिपि

तुलसीदास कैसे अक्षर लिखते थे? यह जानने की उत्कंठा प्रत्येक साक्षर व्यक्ति में होनी स्वाभाविक है। पर अभीतक एक भी ऐसा लेख कहीं नहीं मिला, जो निश्चित रूप से तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ कहा जा सके। अबतक राजापुरवाले रामचरितमानस के अयोध्या-कांड को लोग तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ मानते थे। पर जाँच करने पर यह बात ग़लत प्रमाणित हुई ।

रामचरितमानस, अयोध्या की प्रति का एक पृष्ठ

(पृष्ठ १२४)

हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद।
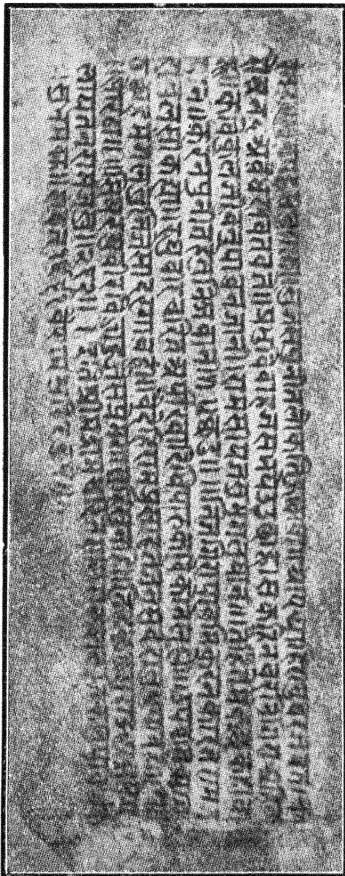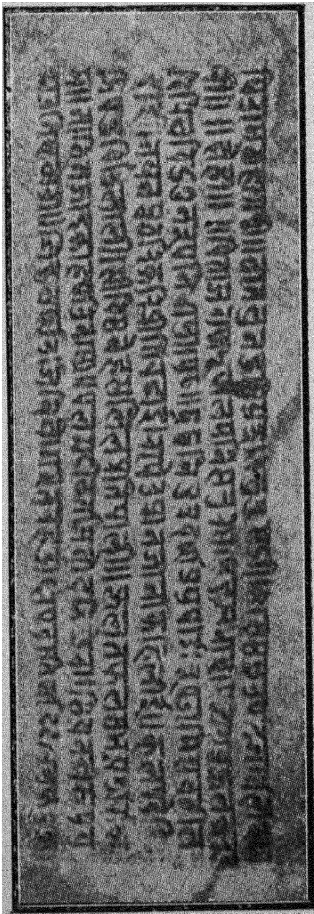
रामचरितमानस

(राजापुर की प्रति, पृ० १२५)

दूसरा एक पंचनामा है, जिसपर तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई छः पंक्तियाँ कही जाती हैं। यह पंचनामा तुलसीदास के एक मित्र टोडरमल के पुत्र और पौत्र के बीच जायदाद के बँटवारे के लिये लिखा गया था। टोडरमल और तुलसीदास की मित्रता का वर्णन दन्त-कथाओं में दिया गया है। इससे यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इस पंचनामे के विषय में श्रीश्यामसुन्दरदास और बड़थ्वाल लिखते हैं।—

"यह पंचनामा ग्यारह पीढ़ी तक टोडरमल के वंश में रहा। ११ वीं पीढ़ी में पृथ्वीपालसिंह ने इसे काशिराज को दे दिया। अब भी यह काशिराज के यहाँ अच्छी तरह सुरक्षित है।"

मैंने स्वयं असली पंचनामे को नहीं देखा है। उसका छपा हुआ फोटो ही हमें प्राप्त है, जिसके साथ उसमें वर्णित विषय की नकल यहाँ दी जाती है।—

पंचनामे की प्रतिलिपि

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

द्विशरं नाभिसंधत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्॥
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते॥ १॥

तुलसी जान्यो दसरथहि, धरमु न सत्य समान॥
रामु तजे जेहि लागि बिनु, राम परिहरे प्रान॥ १॥

धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतम्॥
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥ १॥

जो फ़ारसी नहीं जानते, उनके लिए आगे का अंश, जो फ़ारसी अक्षर और फ़ारसी भाषा में है। हिन्दी अक्षरों में दिया जाता है।—

अल्लाहो अकबर

चूं अनन्दराम बिन टोडर बिन देओराय व कन्हई बिन रामभद्र बिन तोडर मज़कूर दर हुजूर आमदः क़रार दादन्द कि दर मवाज़िए मतरूकः कि तफ़सीलि आं दर हिंदी मज़कूर अस्त बिल् मुनासफः बतराज़ीए जानिबैन क़रार दादेम व यक सद व पिंजाह बिघा ज़मीन ज़्यादः किस्मत मुनासिफः खुद दर मौज़े भदैनी अनन्दराम मज़कूर व कन्हई बिन रामभद्र मज़कूर तजवीज़ नमूदः बरीं मानी राजीगश्तः अतराफ़ सहीह शरई नमूदन्द बिनाबर आं मुहर करदः शुद मुहर साादुल्लाह बिन............।

किस्मत अनन्दराम किस्मत कन्हई

क़रिया क़रिया क़रिया क़रिया

भदैनी दो हिस्सः लहरतारा भदैनो सेह हिस्सः शिवपुर

दरोबिस्त दरोबिस्त

क़रिया क़रिया

नैपुरा हिस्सै टोडर तमाम नदेसर हिस्सै टोडर तमाम

क़रिया

चित्तूपुरा खुर्द हिस्सै टोडर तमाम अन्हरुल्ला (मशकूक)।

इसके आगे का अंश देवनागरी अक्षरों में है।—

श्री परमेश्वर

संवत् १६६६ समय कुआर सुदि तेरसी बार शुभ दीने लिषीतं पत्र अनंदराम तथा कन्हई के अंश विभाग पुर्वमु आगें जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य भै शे प्रमान माना दुनहू जने विदित तफसीलु अंश टोडर मलु के माह जे विभाग वहुहोत रा...... ।

अंश अनंदराम

मौजे भदेनी मह अंश पाँच तेहि मह अंश दुइ अनन्दराम, तथा लहरतारा सगरेउ तथा छितुपुरा अंश टोडर मलु क तथा नयपुरा

अंश टोडर मलु क हील हुज्जती नास्ती जिखीतं अनन्दराम जे ऊपर लिखा से सही।

साछी रायराम रामदत्त सुत
साछी रामसेनो उद्धव सुत
साछी उदेयकरन जगतराय सुत
साछी जमुनी भान परमानन्द सुत
साछी जानकी राम श्रीकान्त सुत
साखी कवलराम वासुदेव सुत
साखी चन्द्र भान केसौदास सुत
साछी पांडे हरीबलभ पुरुषोतम सुत
साखी भावश्रो केसौउदास सुत
साखी जदुराम नरहरि सुत
साखी अयोध्या लछी सुत
साखी सबल भीष्म सुत
साछी रामचन्द्र वासुदीव सुत
साखी पितम्बर दास वधीपूरन सुत
साखी रामराय गरीबराय मकदूरीकरन सुत
(शहीद ब माफिह जलाल मकबूली वख़तही)

अंश कन्धई

मौजे भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह तीनि अंश कन्हई तथा मौजे शिपुरा तथा नदेसरी अंश टोडर मलु का हील हुज्जती नास्ती......लीषीतं कन्हई जे ऊपर लिषा से सही।

साछी रामसिंह उद्धव सुत
साछी जादो राय गहर राय सुत
साछी जगदीश राय महोदधी सुत
साखी चक्र पानी शीवा सुत
साखी मथुरा पीठा सुत

साखी काशीदास वासुदेव सुत दसखत मथुरा
साखी खरगभान गोसाईं दास सुत
साखी रामदेव बींसभर सुत
साखी श्रीकान्त पांडे राजचक्र सुत
साछी विट्ठलदास हरिहर सुत
साछी हीरा दसरथ सुत
साछी लोहग कीस्ना सुत
साखी नजराम शीतल सुत
साखी कृष्णदत्त भगवन् सुत
साखी बिनराबन जय सुत
साखी धनीरामी यधुराय सुत

इसके आगे फारसी अक्षरों में यह लिखा है।—

(शहीद ब माफिह ताहिर इबन् खाजे दौलते कानूनगोय)

सम्पूर्ण 'पंचनामा' तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ नहीं है। सिर्फ ऊपर की छः पंक्तियाँ ही, जिनके ऊपर-नीचे दो श्लोक और बीच में एक दोहा है, तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ अनुमान किया जाता है। अनुमान मैं इसलिये कहता हूँ कि 'पंचनामे' में तुलसीदास का हस्ताक्षर नहीं है। वे जब जायदाद का झगड़ा निपटाने के वक्त मौजूद थे और कहा जाता है कि उन्होंने पञ्चायत भी की थी, तब पञ्चनामे में साक्षी-रूप से उनका नाम तो आ ही सकता था। संभव है, किसी गूढ़ कारण से वे साक्षी न बनाये गये हों। फ़ारसी में जो इबारत है, उसमें भी यह ज़िक्र नहीं है कि तुलसीदास की मौजूदगी में वह निपटारा हुआ था।

ऊपर की छः पंक्तियों में बीच का जो दोहा है, वह तुलसीदास का है, इसमें तो कोई संदेह नहीं है। और

पंचनामे का फोटो

(पृ० १६८)

हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद।

वाल्मीकि रामायण का अन्तिम पृष्ठ

(तुलसीदास का हस्ताक्षर, पृ० १२६)

केवल उसी दोहे के कारण यह मानने को विवश होना पड़ता है कि यदि तुलसीदास ने वे छः पंक्तियाँ न लिखी होतीं, तो किसी अन्य लेखक को तुलसीदास का उक्त दोहा वहाँ लिखने की क्या आवश्यकता थी? अतएव पञ्चनामे के ऊपर की पंक्तियाँ तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई स्वीकार करने में हमें कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ती।

काशी के सरस्वती-भवन में वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। उसके अन्त में उसके लिखे जाने का समय और लेखक का नाम इस प्रकार दिया हुआ है।—

समाप्तं चेदं महाकाव्यं श्रीरामायणमिति ॥ संवत् १६४१ समये मार्ग सुदि रवौ लि० तुलसीदासेन ॥

इससे तो केवल इतना ही ज्ञात होता है कि तुलसीदास नाम के किसी व्यक्ति ने इसे लिखा था। वह और रामचरित-मानस के रचयिता दोनों एक हैं, इसका क्या प्रमाण है? और 'लि० तुलसीदासेन' के आगे दूसरी कलम से एक और श्लोक लिखा मिलता है, जिससे लेखक का नाम दत्तात्रेय दानाध्यक्ष निकलता है। श्लोक यह है।—

श्रीमद्देदिल्लशाहभूमिपसभासभ्येन्द्रभूमीसुर—
श्रेणीमंडनमंडलीधुरिदयादानादिभाजिप्रभुः।
वाल्मीकेः कृतिमुत्तमां पुररिपोः पुर्यां पुरोगः कृती।
दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपिकृतेः कर्मेत्वमाचीकरत ॥ १ ॥

इसके अक्षर इस बात के स्वयं साक्षी हैं कि यह श्लोक किसी ने बाद में रचकर लिख दिया है। जिस कलम से सारा उत्तरकांड लिखा हुआ है, उसी कलम से 'लि० तुलसीदासेन'

भी है। अतएव वहाँ तक तो तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ माना ही जायगा।

पंचनामे के अक्षर और इस उत्तरकांड के अक्षर मिलते हैं। दोनों की लिखावट एक ही व्यक्ति के हाथ की जान पड़ती है। अन्तर इतना ही है कि उत्तरकांड जमकर लिखा गया है, जिससे अक्षर अधिक सुन्दर हैं, और पंचनामा जल्दी में लिखा गया है, जिससे उसके अक्षर बहुत सुन्दर नहीं बन सके। उत्तरकांड की लिखावट देखकर यह मानना पड़ता है कि तुलसीदास बहुत सुन्दर अक्षर लिखते थे।

पंचनामा और उत्तरकांड की लिखावट को तुलसीदास के हाथ की स्वीकार कर लेने पर राजापुर की प्रति का प्रश्न और भी आसानी से हल हो जाता है; क्योंकि राजापुर की प्रति के अक्षर उक्त दोनों लिखावटों से बिल्कुल भिन्न हैं। पंचनामा, उत्तरकांड और राजापुर के अयोध्याकांड की लिखावटों के फोटो से उनके अक्षर मिलाकर देखिये। अयोध्या के श्रावण-कुंज में रामचरितमानस की जो प्रति सं० १६६१ की है, उसके अक्षर भी उत्तरकांड के अक्षर से मिलते-जुलते-से हैं, यद्यपि दोनों में २० वर्षों का अंतर है। फोटो देखिये।

तुलसीदास का चित्र

इस समय तुलसीदास के दो मुख्य चित्र हमारे सामने हैं। एक चित्र खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से प्रकाशित रामायण में दिया हुआ है, और जिसके खोज निकालने का श्रेय ग्रियर्सन साहब को है। दूसरा चित्र काशी के प्रह्लाद-घाट-निवासी श्रीयुक्त रणछोड़लाल व्यास के पास है, जिसे वे सं० १६५५ का बतलाते हैं। उसके आधार पर, उसी से मिलते-जुलते अन्य कई चित्र

गोस्वामी तुलसीदास

(खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित प्राचीन चित्र, पृ० १३०)

हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद
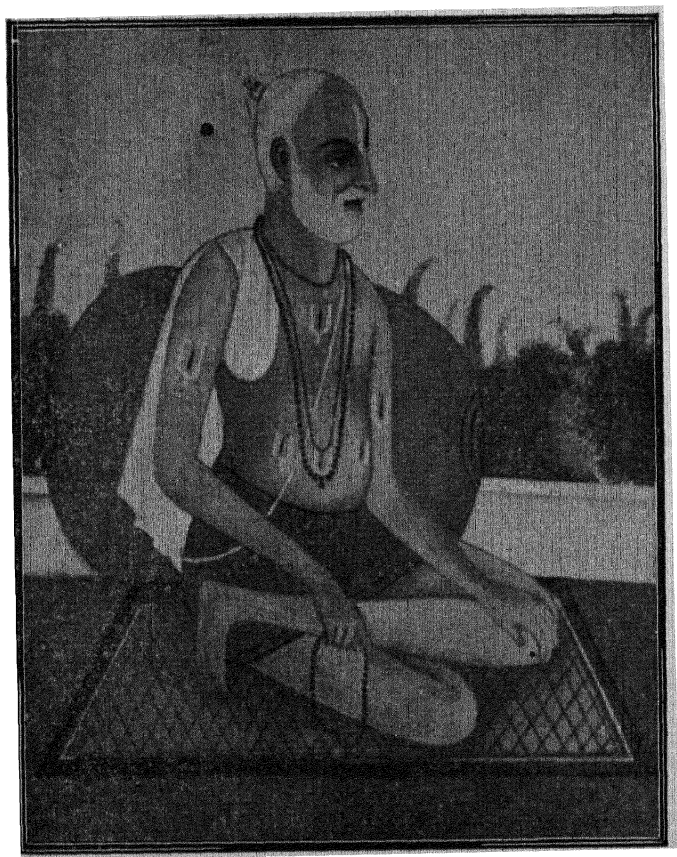
गोस्वामी तुलसीदास

(काशी में प्राप्त एक प्राचीन चित्र की नक़ल, पृ० १३१)

तैयार हुये हैं, जिनके फोटो इस पुस्तक में दिये जा रहे हैं। पर किसी के लिये निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वास्तव में तुलसीदास का असली चित्र कौन-सा है? खड्गविलास प्रेस-वाले चित्र में तुलसीदास का शरीर काफी मोटा-ताज़ा दिखलाया गया है, जो उनकी अधेड़ अवस्था का होगा। काशी के चित्र में तुलसीदास का शरीर रुग्ण-सा दिखता है। सं० १६५५ में उनके रुग्ण होने का कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है।

भारतवर्ष के प्राचीन चित्रों के एक विशेषज्ञ काशी-निवासी राय कृष्णदासजी तुलसीदास के चित्रों के सम्बन्ध में यह सम्मति रखते हैं।—

"श्रीयुक्त रणछोड़लाल व्यास के पास जो चित्र है, वह सं० १६५५ का नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें जो इमारत बनी है, उसकी शैली बहुत पीछे की है। वह उस शैली का है, जिसका प्रचलन मुहम्मदशाह के बाद हुआ है। किन्तु वह चित्र संभवतः तुलसीदास के किसी मूल चित्र पर अवलम्बित है; क्योंकि उसीसे मिलते-जुलते कई चित्र भिन्न-भिन्न संग्रहों में मिलते हैं। उनमें एक तो प्रसिद्ध पुस्तक-संग्रहीता श्रीमयाशङ्कर याज्ञिक के पास है, और एक भारत-कला-भवन काशी में है। ये दोनों चित्र निश्चित रूप से प्राचीन हैं। अतएव तुलसीदासजी के उस चित्र को वास्तविक मानना चाहिये। खड्गविलास प्रेसवाला चित्र अधेड़ अवस्था का होगा। उक्त चित्रों के देखने से यह जान पड़ता है कि ये उसी व्यक्ति की वृद्धावस्था के हैं, जिसका यह अधेड़ अवस्था का है।

काशी के अस्सी घाटवाले तुलसीदास के स्थान में उनका जो दाढ़ीवाला चित्र है, वह एक आधुनिक चित्रकार की कृति है और सर्वथा कृत्रिम है।"

तुलसीदास का देहावसान

नीचे लिखे एक दोहे के आधार पर यह कहा जाता है कि तुलसीदास ने संवत् १६८० में, श्रावण शुक्ला सप्तमी को काशी में शरीर-त्याग किया था।—

संवत सोरह सै असी , असी गङ्ग के तीर।
सावन सुक्ला सत्तमी , तुलसी तजेउ सरीर॥

पर यह दोहा किसने बनाया? और इसमें कथित संवत् कहाँ तक प्रामाणिक है? यह किसी को ज्ञात नहीं।

काशी के सुप्रसिद्ध रामायणी श्रीविजयानन्द त्रिपाठी का कथन है कि गोस्वामीजी के अखाड़े में और टोडरमल के वंशज चौधरी लालबहादुरसिंह के यहाँ श्रावण श्यामा तीज को तुलसीदास की निधन-तिथि मनाई जाती है।

अब पहला झगड़ा तो सत्तमी और तीज का है। 'सावन सुक्ला सत्तमी' को तो यह कहकर अशुद्ध बताया जा रहा है कि यह वाक्य 'भड्डर' के कई दोहों में आने से लोगों की ज़बान पर था, इससे लोग 'सावन स्यामा तीज' के बदले उसे कहने लगे। पर इसी तरह कोई तर्क करना चाहे, तो कर सकता है है कि असी (अंक) और असी (नदी) का तुक मिलता देखकर किसीने उक्त दोहे में १६८० संवत् डाल दिया है। संभव है, तुलसीदास वर्ष दो वर्ष आगे-पीछे लोकान्तरित हुये हों। तब इसका उत्तर क्या होगा? मेरी राय में उक्त संवत् पञ्चों की राय के सिवा और कोई बल नहीं रखता।

'सावन स्यामा तीज' के आगे कोई 'सनि' शब्द बताते हैं और कोई-कोई 'को'। श्रीश्यामसुन्दरदास ने 'सनि' ही पाठ माना है। पर श्रीरामदास गौड़ का एक लेख मैंने पढ़ा है, जिसमें वे

उस दिन 'शुक्रवार' होना मानते हैं, 'सनि' नहीं। अतएव यह पाठ भी अभी भ्रमात्मक ही है।

मृत्यु के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठा हुआ है कि तुलसीदास की मृत्यु कैसे हुई? कुछ चरित-लेखक कहते हैं कि प्लेग से उनकी मृत्यु हुई; कुछ कहते हैं कि फोड़े से हुई; कुछ कहते हैं, स्वाभाविक रीति से वृद्धावस्था के कारण हुई। मैंने किसी पिछले पृष्ठ पर यह प्रकट किया है कि उनको शक था कि 'खल की उपाधि' से उनको पीड़ा पहुँच रही है; अतएव यह भी सम्भव हो सकता है कि किसी विरोधी ने उनको विष दिया हो, जिससे तमाम बदन में फोड़े निकल आये हों, जैसे स्वामी दयानन्द को विष दिये जाने पर निकले थे। कवितावली में जहां वे अपनी लेखनी छोड़ते हैं, वहाँ तक तो वे बड़े कष्ट में थे। उसके आगे का पता नहीं है कि वे उस कष्ट से मुक्त होकर कुछ दिन और जिये, या वही उनका अन्तिम कष्ट था। कवितावली के आधार पर केवल एक ही बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि वे प्लेग से नहीं मरे थे।

कहा जाता है कि अंतिम समय में तुलसीदास ने क्षेमकरी पक्षी देखकर यह सवैया कहा था।—

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचंद सो चंदन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकत सोच विषाद हरी है।
गौरी कि गंग बिहंगिनि वेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखु सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है॥

इस लोक से प्रयाण करते समय यह दोहा भी उन्हींका कहा हुआ कहा जाता है।—

राम नाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब हीं तुलसी सोन॥

दन्त-कथायें

तुलसीदास का परिवार

तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध है। 'हुलसी' उनकी माता का नाम था, इसके लिये लोग कुछ प्रमाण भी देते हैं।—

अकबर के प्रसिद्ध वज़ीर अब्दुर्रहीम खानखाना से तुलसीदास की मित्रता थी। एक बार एक ग़रीब ब्राह्मण की कन्या के विवाह में कुछ सहायता देने के लिये तुलसीदास ने रहीम के पास यह आधा दोहा लिखकर उसी ब्राह्मण के हाथ भेजा।—

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहत सब कोय।

रहीम ने ब्राह्मण को बहुत कुछ धन देकर और दोहे की यह पूर्ति करके उसे तुलसीदास के पास वापस भेजा।—

गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी से सुत होय॥

लोगों की यह धारणा है कि यहाँ 'हुलसी' शब्द श्लेषार्थ में प्रयुक्त हुआ है। हुलसी तुलसीदास की माता थीं और हुलसी का अर्थ प्रसन्न होकर भी है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के कई स्थलों में इस शब्द का प्रयोग प्रसन्न होने ही के अर्थ में किया है। जैसे।—

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरितमानस कवि तुलसी।

यहाँ 'हुलसी' शब्द 'उत्साहित हुई' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पर मानस में एक स्थान पर यह शब्द कुछ भ्रम भी उत्पन्न करता है।—

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी।
तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥

इसी 'हुलसी' को लेकर 'माता' की कल्पना की जा रही है। पर जिस माता ने तुलसीदास को जन्मते ही छोड़ दिया, उसका कौन-सा सुख स्मरण करके वे इतनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं, यह विचारणीय है। और चौपाई के पहले चरण से तो यह भाव टपकता है कि राम-कथा राम को पवित्र तुलसी की तरह प्रिय है। तुलसी जलन्धर दैत्य की स्त्री थी, जिसका पातिव्रत-धर्म विष्णु ने नष्ट किया था। उसके समकक्ष हुलसी को तुलसीदास की माता क्यों माना जाय? उनकी स्त्री क्यों न माना जाय? स्त्री ने तो तुलसीदास को उपदेश भी दिया था; पर माता ने जन्म देने के सिवा और क्या किया था?

यह सब अर्थ की खींचतान है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उनकी माता का नाम हुलसी था, या क्या था?

सोरों में प्रसिद्ध है कि तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली और ससुर का दीनबन्धु पाठक था। रत्नावली से तुलसीदास को एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम तारक था। पर वह बचपन ही में मर गया। तुलसीदास का विवाह अनुमान से पच्चीस वर्ष की अवस्था में हुआ होगा।

गृह-त्याग

श्रावण का महीना था। तुलसीदास कहीं बाहर गये हुये थे। उनकी अनुपस्थिति में रत्नावली अपने नैहर बदरिया गाँव को चली गई, जो सोरों से एक ही फलाँग की दूरी पर गङ्गा के उस पार था। तुलसीदास घर आये, और अपनी स्त्री को घर में

न पाकर उसके वियोग से बहुत विकल हुये और आधीरात के समय बढ़ी हुई गङ्गा को तैरकर वे ससुराल पहुँचे। यकायक अनिमन्त्रित पति को आधीरात के समय घर में देखकर स्त्री चकित होगई और उसने व्यङ्गपूर्वक कहा।—

अस्थि चर्ममय देह मम , तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ , होति न तौ भवभीति॥

स्त्री का यह व्यङ्ग-बाण तुलसीदास को करारा लगा। वे उसी वक्त घर से निकल पड़े और उनके प्रेम की जो धारा स्त्री के अस्थि-चर्ममय देह की ओर उमड़ रही थी, उसको उन्होंने सचमुच श्रीराम की ओर मोड़ लिया।

यह नहीं कहा जा सकता कि रत्नावली भी दोहा बनाना जानती थी, और उसने तुलसीदास को देखते ही उसी वक्त दोहा बनाकर कह दिया; या यह तुलसीदास ही का या किसी अन्य कवि का रचा हुआ है, जिसे रत्नावली ने अवसर पर कह डाला। अथवा किसी सहृदय कवि ने इस घटना को लेकर पीछे से बना दिया। जो हो, यदि दोहा ही कहा गया हो तो मानना पड़ेगा कि उसमें किसी हृदयवान् के हृदय को बेधनेवाला भाव पर्याप्त मात्रा में था और तुलसीदास उसके शिकार होगये।

यदि तुलसीदास का जन्म-सं० १५८९ ठीक माना जाय, तो घर छोड़ने का समय सं० १६२० के आसपास होगा। क्योंकि विवाह के उपरान्त पाँच ही छः वर्ष बीते होंगे, जब उनके प्रेमोन्माद को ऐसा ज़ोरदार धक्का लग सकता है।

श्रीरामदास गौड़ लिखते हैं कि काशी-नरेश के पुस्तकालय में गोस्वामीजी-रचित विंध्येश्वरी-पटल नाम की एक पुस्तक है, जो सं० १६१५ की रचना है। उसमें ज्योतिष और तान्त्रिक

विषय भी हैं। उससे मालूम होता है कि सं० १६१५ तक तुलसीदास के हृदय में राम-भक्ति का प्राबल्य नहीं था। उस समय वे पूर्ण विषयासक्त थे। यदि उसमें कुछ कमी होती, तो सहसा ऐसा न परिवर्तन होता। एक बार घर छोड़ने के बाद तुलसीदास फिर कभी सोरों नहीं गये।

एक बार स्त्री ने तुलसीदास के पास यह दोहा लिख भेजा।—

कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सँग सोय।
मोहिं फटे की डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

अवश्य ही यह दोहा तुलसीदास की उस अवस्था की ओर संकेत कर रहा है, जब उनकी स्त्री को उनके लिये 'अन्यत्र कटने' की चिंता हो सकती थी।

इसपर तुलसीदास ने यह उत्तर लिख भेजा।—

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

पत्नी के उपदेश से तुलसीदास एक दुनिया से निकलकर दूसरी दुनिया में चले गये, जो पहली से कहीं अधिक मधुर थी। उसके लिये अपने प्रेरक का कृतज्ञ होना एक महान् व्यक्ति के लिये बिल्कुल स्वाभाविक है। इस दोहे की आड़ में कृतज्ञता के भावों से भरा हुआ तुलसीदास का हृदय कितना सुन्दर लग रहा है।

तुलसीदासजी जैसे महाकवि की स्त्री भी कविता करती हो, यह असंभव नहीं। पर पति-पत्नी के मार्मिक प्रसंगों को रसिक-जनों ने भी सरस बनाया है, यह स्मरण रखना चाहिये।

कहा जाता है कि वृद्धावस्था में एक बार वे भूलकर अपनी ससुराल पहुँच गये। उस समय उनकी स्त्री जीवित थी और बहुत

ही वृद्धा होगई थी। पहले तो दोनों में से किसी ने एक-दूसरे को नहीं पहचाना। पर रात में भोजन के समय स्त्री को संदेह हुआ। सबेरे जब तुलसीदास जाने लगे, तब स्त्री ने अपना भेद प्रकट किया और अपने को भी साथ रखने के लिये कहा। तुलसीदास ने स्वीकार नहीं किया। तब स्त्री ने कहा।—

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहिं मेलिकै, अचल करहु अनुराग॥

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब चीज़ें ब्राह्मणों को बाँट दी और अपनी राह ली।

संभवतः सं० १६१६ या २० में तुलसीदास घर से निकले थे। वे सीधे काशी गये और वहाँ से अयोध्या और अयोध्या से चित्रकूट गये। वे चित्रकूट और अयोध्या में प्रायः अधिक रहा करते थे। जब कभी काशी जाते, पंडित गंगाराम जोशी के यहाँ ठहरा करते थे। रामाज्ञा में गंगाराम का नाम आया है।—

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर, गोगन गङ्गाराम।

भृगु-आश्रम और ब्रह्मपुर की यात्रा

एक बार काशी से तुलसीदास ने भृगु-आश्रम (बलिया) की यात्रा की। रास्ते में हंसनगर और परसिया होते हुये वे गायघाट के राजा गंभीरदेव के अतिथि हुये थे। वहाँ से गंगा पार करके ब्रह्मपुर (शाहाबाद) में ब्रह्मेश्वर महादेव के दर्शन करते हुये वे कांत नाम के गाँव में आये।

कांत के लोग उन्हें बड़ी क्रूर-प्रकृति के दिखाई पड़े। वहाँ उन्हें भोजन का कोई पदार्थ नहीं मिला। गाँव के बाहर मँगरू नाम का एक अहीर मिला, जो साधु-ब्राह्मणों का सत्कार किया

करता था। वह तुलसीदास को बड़े अनुनय-विनय से अपने घर ले गया। उसने तुलसीदास को दूध दिया, जिससे उन्होंने खोवा बनाकर खाया। मँगरू की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी इच्छा जाननी चाही, तब मँगरू ने कहा—भगवान के चरणों में मेरा दृढ़ विश्वास हो और मेरा वंश बढ़े। तुलसीदास ने कहा—यदि तुम्हारे वंश के लोग चोरी न करेंगे और किसीको दुःख न देंगे, तो ऐसा ही होगा।

बलिया और शाहाबाद ज़िले में मँगरू के वंशवाले अबतक वर्त्तमान हैं, जो चोरी नहीं करते, भक्त और साधु-सेवी हैं और अतिथि-सत्कार के लिये प्रसिद्ध हैं।

कांत से तुलसीदास बेलापतौत आये। वहाँ गोविन्द्र मिश्र शाकद्वीपीय ब्राह्मण और रघुनाथसिंह क्षत्रिय ने उन्हें बड़े सत्कार से ठहराया। तुलसीदास वहाँ कुछ समय तक ठहरे रहे। उस गाँव का नाम बदलकर उन्होंने रघुनाथपुर कर दिया। वह गाँव ब्रह्मपुर से कोस भर की दूरी पर है। वहाँ तुलसीदास का चौरा अबतक है।

वहाँ से तुलसीदास कैथी गाँव को गये, जो रघुनाथपुर के पास ही है। कैथी के मुखिया जोरावरसिंह ने उनका बड़ा सत्कार किया और वे उनके शिष्य भी होगये।

वहाँ से घूमते-घामते तुलसीदास पुरुषोत्तमपुरी गये और फिर काशी लौट आये।

काशी में उनके निवास-स्थान

यद्यपि तुलसीदास की कविता से विदित होता है कि उनको अयोध्या और चित्रकूट बहुत प्रिय थे, इससे वे वहाँ अधिक समय तक रहा करते होंगे; पर काशी में भी वे कम नहीं रहे। यद्यपि

काशी में उनको शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के कष्ट बहुत मिले, पर काशी के प्रति उनकी धार्मिक प्रेरणा इतनी प्रबल थी कि वे कष्ट पर कष्ट झेलते रहे और वहीं रहते रहे। अन्त में वहीं उनका देहावसान भी हुआ। काशी में वे पहले हनुमान फाटक पर आकर रहे। वहाँ से मुसलमानों के उपद्रव से तंग आकर वे गोपाल-मन्दिर में चले आये। वहाँ भी बल्लभ-कुल-वाले गोसाइयों से उनका विरोध हुआ, तब वे वहाँ से उठकर अस्सी पर रहने लगे।

काशी में साधारणतः उनके रहने के चार स्थान प्रसिद्ध हैं।—

१ अस्सी—यहाँ तुलसीदास का घाट प्रसिद्ध है। यहाँ तुलसीदास के स्थापित किये हुये हनुमानजी हैं। उनके मन्दिर के बाहर बीसा-यंत्र खुदा है, जो पढ़ा नहीं जाता। यहाँ तुलसीदास की एक गुफा भी है। इसी स्थान में तुलसीदास अन्त समय में रहे थे। यहाँ उन्होंने अपने रामायण के अनुसार रामलीला प्रारम्भ की थी, जो अबतक होती है। अस्सी से दक्षिण जहाँ इस रामलीला की लंका थी, उस स्थान का नाम अब तक लंका है। यह रामलीला सबसे पुरानी है।

२ गोपाल-मन्दिर—यहाँ एक कोठरी है, जो तुलसीदास की बैठक कहलाती है। वह सदा बन्द रहती है और लोग उसके झरोखे से दर्शन करते हैं। केवल श्रावण सुदी ७ को वह वर्ष में एक दिन खुला करती है, तब लोग जाकर पूजा करते हैं। कहा जाता है कि उसमें बैठकर तुलसीदास ने विनय-पत्रिका का कुछ अंश लिखा था।

३ प्रह्लाद-घाट—यहाँ तुलसीदास पंडित गङ्गाराम जोशी के घर पर ठहरा करते थे।
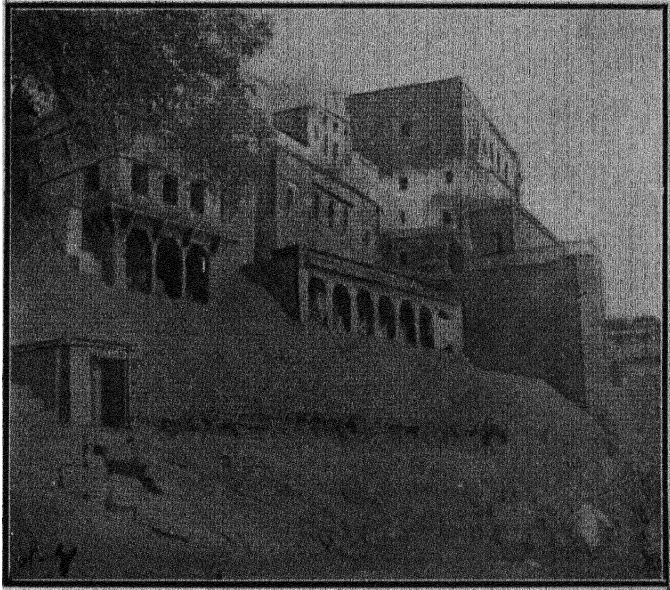
तुलसी-घाट, काशी
(असी-संगम, पृष्ठ १४०)

हिन्दी-मन्दिर प्रेस, इलाहाबाद

तुलसीदास और उनकी कविव
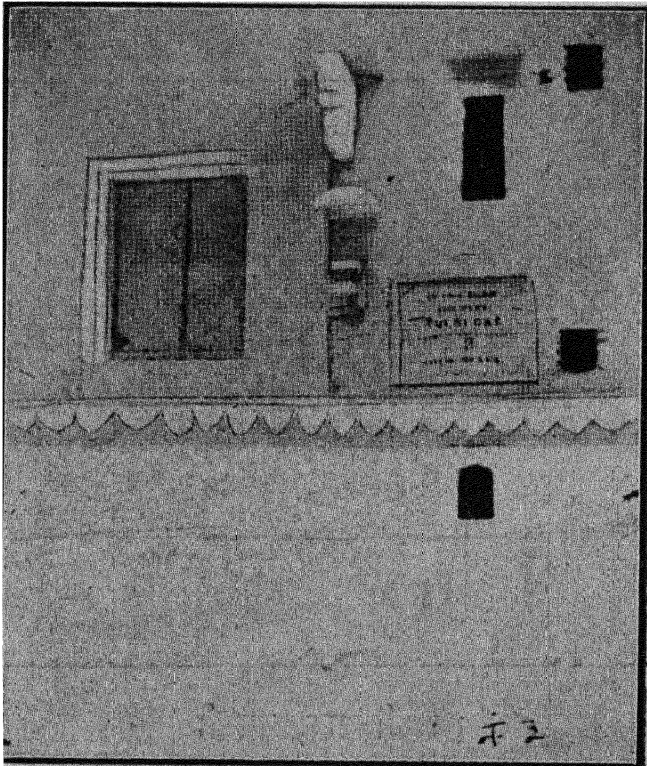
(गोपाल-मन्दिर की कोठरी, जिसमें बैठकर तुलसीदास ने विनय-पत्रिका लिखी थी पृ० १४१)

४ संकट-मोचन—नगवा के पास अस्सी नाले पर तुलसीदास ने संकट-मोचन हनुमान की एक मूर्त्ति स्थापित की थी। प्रह्लाद-घाटवाले पंडित गङ्गाराम ने एक राजा से बहुत-सा द्रव्य पाया था, उसमें से उन्होंने बारह हज़ार रुपये तुलसीदास को दिये थे। तुलसीदास ने उन रुपयों से हनुमान्‌जी के बारह मन्दिर बनवाये। उनमें एक संकट-मोचन भी है।

प्रेत-मिलन

काशी में रहते हुये तुलसीदास शौच के लिए गंगापार जाया करते थे और लौटते समय शौच से बचा हुआ जल आम के एक वृक्ष की जड़ में डाल दिया करते थे। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। वह उस जल से तृप्त हुआ करता था। एक दिन वह प्रकट हुआ और उसने कहा—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ; कुछ माँगो।

तुलसीदास ने कहा—मैं राम का दर्शन चाहता हूँ।

प्रेत ने कहा—यह तो मेरी शक्ति के बाहर की बात है। पर मैं तुमको एक बात बतलाता हूँ। काशीजी में अमुक स्थान पर रामायण की कथा होती है। उसे सुनने के लिये हनुमानजी एक कोढ़ी का वेष धरकर सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। तुम उनके चरण पकड़ो। वे राम का दर्शन करा देंगे।

हनुमानजी से परिचय

प्रेत की सूचना के अनुसार तुलसीदास रामायण की उक्त कथा सुनने के लिये गये। कथा समाप्त होने पर जब सब चले गये, तब अन्त में वह कोढ़ी उठा। तुलसीदास ने तत्काल उसके चरण पकड़ लिये। उसने छुटकारे की बहुत कोशिश की, पर

तुलसीदास ने उसे नहीं छोड़ा और अपना मनोरथ कहा। तब उसने कहा—जाओ, चित्रकूट में दर्शन हो जायँगे।

राम का दर्शन

काशी से तुलसीदास चित्रकूट गये और वहाँ राम के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे। एक दिन वे राम का स्मरण करते हुये बैठे थे। उसी समय दो अपूर्व सुन्दर राजकुमार मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाते हुये उनके सामने से निकल गये। ध्यान में बाधा न पहुँचे, इस विचार से तुलसीदास ने उधर से दृष्टि हटाकर पृथ्वी की ओर कर ली और फिर वे ध्यानावस्थित होगये। इतने में ब्राह्मण-वेष में हनुमानजी आये और उन्होंने पूछा—क्यों, राम-लक्ष्मण के दर्शन हुये?

तुलसीदास चकित होकर बोले—नहीं।—

हनुमानजी ने कहा—अभी तो तुम्हारे सामने से वे घोड़ों पर गये हैं!

तुलसीदास पछताकर रह गये। हनुमानजी ने कहा—कलियुग में इतने ही को तुम अपना अहोभाग्य समझो।

तुलसीदास ने उन युगल-मूर्तियों को हृदय में रख लिया।

ग्रियर्सन साहब राम-दर्शन के एक और ही प्रसङ्ग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं।—

"तुलसीदास चित्रकूट में घूम रहे थे। एक जगह उन्होंने रामलीला होती देखी। लङ्का-विजय, विभीषण का राज्याभिषेक और दल-बल-सहित राम के अयोध्या जाने की तैयारी का प्रसंग था। लीला की समाप्ति पर तुलसीदास आगे चले, तो राह में ब्राह्मण के वेष में हनुमानजी मिले। तुलसीदास ने उनसे राम-लीला की प्रशंसा की। हनुमानजी ने हँसकर कहा—तुम पागल

होगये हो ? भला, रामलीला का समय आजकल कहाँ है ? यह कहकर वह अन्तर्द्धान होगये। तुलसीदास विस्मित होकर अपनी कुटी पर लौट आये और राम-स्मरण में निमग्न होगये।"

चित्रकूट में इस प्रकार की कोई घटना अवश्य घटी थी। विनय-पत्रिका में भी इसका आभास मिलता है।—

तुलसी तोको कृपालु, जो कियो कोसलपालु
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥
(विनय-पत्रिका)

मृग के पीछे जानेवाले दोनों राजकुमारों को न पहचान पाने के दुःख को तुलसीदास ने इस पद में भी व्यक्त किया है।—

लोचन रहे बैरी होय।

जानबूझ अकाज कीनों गये भू में सोय।
अविगत जु तेरी गति न जानी रहयो जागत सोय।
सबै छबि की अवधि में हैं निकसिगे ढिग होय।
करमहीन मैं पाय हीरा दियो पल में खोय।
दास तुलसी राम बिछुरे कहौ कैसी होय॥

चित्रकूट में रामदर्शन की एक कथा यह भी है।—

एक दिन तुलसीदास चित्रकूट में रामघाट पर बैठे हुए राम के ध्यान में निमग्न थे। इतने में एक सुन्दर पुरुष ने आकर कहा—बाबा, चंदन दो। तुलसीदास चंदन घिसने लगे। उसी समय तुलसीदास को सूचना देने के लिए हनुमानजी ने सुग्गे का रूप धरकर आकाश से उड़ते हुए यह दोहा पढ़ा।—

चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें, तिलक देत रघुबीर॥

यह सुनकर तुलसीदास रामचन्द्र की शोभा देखने लगे और देखते-देखते आनन्द-मग्न होकर मूर्च्छित होगये। रामचन्द्र स्वयं चंदन लगाकर अन्तर्द्धान होगये।

इस घटना के बाद तुलसीदास चित्रकूट से अयोध्या चले गये और कुछ दिनों तक अयोध्या में रहकर फिर काशी लौट आये।

राम का पहरा

काशी में जब तुलसीदास प्रह्लाद-घाट पर रहते थे, उस समय एक रात उनके घर में चोर घुसे। इस कथा को रेवेरेंड एड्विन ग्रीव्स ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखा है। उन्हीं के शब्दों में सुनिये।—

"एक कथा से मैं प्रसन्न होता हूँ। इस कारण से कि कथा कैसी हो क्यों न हो, तौ भी शिक्षा से भरी हुई है। लिखा है कि एक चोर चोरी करने गोसाईं के घर गया। चोर ने देखा कि वहाँ एक मनुष्य रात भर पहरा दे रहा है। प्रातःकाल तुलसीदास के पास जाके उसने पूछा कि वह कौन श्याम-किशोर आपके यहाँ चौकी देता है? यह बात—

सुनि करि मौन रहे आँसू डारि दिये हैं॥

उनको बोध हुआ और तुलसीदास ने समझ लिया कि रघुनाथ ने रात भर मेरे लिये चौकी दी और यह जान के कि धन-संपत्ति बटोरने से मैंने अपने स्वामी को इतना दुःख दिया कि वह रात भर पहरा देवैं, उन्होंने अपना सब कुछ कंगालों को बाँट दिया। यह बात अर्थात् ईश्वर अपने लोगों की रक्षा करते हैं, सोच-विचार करने के योग्य है।"

टोडरमल के साथ मैत्री

काशी में टोडरमल नाम के एक भूमिहार ज़मींदार थे। उनके पास पाँच गाँव थे—भदैनी, नदेसर, शिवपुर, छीतूपुर और लहरतारा। भदैनी अब काशिराज के अधिकार में है और उसीमें अस्सी-घाट है।

टोडरमल के वंशज अबतक अस्सी पर रहते हैं। वे प्रत्येक वर्ष श्रावण शुक्ला तीज को तुलसीदास की पुण्य-तिथि पर सीधा (आटा) दिया करते हैं।

बल्लभ-कुल के गोसाइयों से जब तुलसीदास की अनबन हुई और उन्हें गोपाल-मन्दिर छोड़ना पड़ा, तब टोडरमल अस्सी पर एक मंदिर बनवाकर उनको आग्रह-पूर्वक उसमें ले आये थे। टोडरमल भी वैष्णव और राम के सच्चे स्नेही थे। इसी कारण से गोसाइयों ने तुलसीदास के साथ उनसे भी बैर बाँधा होगा। कहा जाता है कि उन्हें गोसाइयों ने तलवार से काट डाला था। टोडर-मल की मृत्यु पर तुलसीदास के रचे हुये चार दोहे मिलते हैं।—

चार गाँव को ठाकुरो , मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में , अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को , सिर धरि भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो , सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल , टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नैननि सींचिहौं , समुझि समुझि अनुराग॥
रामधाम टोडर गये , तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिन , यही बड़ो संकोच॥

ये एक सच्चे वियोगी मित्र के दुःख से पूर्ण हृदय के उद्गार हैं, जो एक महाकवि की कलम से दोहे का रूप पा गये हैं। दूसरे दोहे से यह अर्थ निकलता है कि टोडर को राम की उपासना

से हटाने का प्रयत्न किया गया था; पर वह सफल नहीं हुआ। संभव है, उन्हें तुलसीदास का साथ छोड़ने को भी कहा गया हो और उन्होंने अस्वीकार किया हो।

मधुसूदन सरस्वती से घनिष्ठता

तुलसीदास के समकालीन शंकर-मतानुयायी श्रीमधुसूदन सरस्वती काशी में एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन दिनों 'रामचरित-मानस' का आदर सर्व-साधारण में तो खूब था, पर भाषा में होने के कारण पंडित-समुदाय उससे विरक्त था। पंडित-गण श्रीमधुसूदन सरस्वती की सम्मति जानना चाहते थे। श्रीमधुसूदन सरस्वती के साथ तुलसीदास का जब वाद-प्रतिवाद हुआ, तब उसका बड़ा ही उत्तम परिणाम हुआ और श्रीमधुसूदन सरस्वती ने तुलसीदास की प्रशंसा में यह श्लोक लिखकर अपनी सम्मति दी।—

आनन्दकानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमस्तरुः।
कविता मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता॥

भक्ति-विलास में पंडित महादेवप्रसाद ने यह श्लोक किसी अन्य पंडित का रचा हुआ बताया है, जो काशी में दिग्विजय की इच्छा से आया था।

काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है।—

तुलसी जंगम तरु लसै, आनँद कानन खेत।
कविता जाकी मञ्जरी, राम भ्रमर रस लेत॥

नाभाजी से भेंट

'भक्तमाल' के कर्त्ता नाभाजी उन्हीं दिनों काशी आये थे। वे तुलसीदास से मिलने के लिये उनके स्थान पर गये। पर उस

समय तुलसीदास ध्यान में थे, इससे वे उनसे मिल न सके। नाभाजी बिना मिले ही उसी दिन वृन्दाबन चले गये। पीछे यह बात तुलसीदास को मालूम हुई, तब वे बहुत पछताये और नाभाजी से मिलने के लिये वृन्दाबन गये।

जिस समय तुलसीदास नाभाजी के यहाँ पहुँचे, उस समय वहाँ साधुओं का भंडारा था। एक तो तुलसीदास बिना बुलाये वहाँ गये थे, दूसरे नाभाजी उनसे पहले ही से विरक्त हो रहे थे, इससे तुलसीदास का उन्होंने स्वागत नहीं किया। तुलसीदास अन्य अभ्यागतों के साथ बैठ गये। उनको प्रसाद पाने के लिये कोई बरतन भी नहीं दिया गया था। जब उनके सामने खीर आई, तब उन्होंने एक साधु का जूता उठा लिया और कहा—इससे अच्छा पात्र और क्या होगा? उनकी इस विनम्रता ने नाभाजी का हृदय धो दिया। उन्होंने उनको गले से लगा लिया और कहा—आज मुझे भक्तमाल का सुमेर मिल गया।

कहा जाता है कि काशी से लौटकर नाभाजी ने तुलसीदास से अपने अपमान का बदला लिया था और भक्तमाल में जो छप्पय उनके नाम पर दिया हुआ मिलता है, उसका पहला चरण उन्होंने पहले यह लिखा था।—

कलि कुटिल जीव तुलसी भये बालमीकि अवतार धरि।

पर उस दिन की घटना के बाद उन्होंने उस चरण को ऐसा कर दिया।—

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि मोरोपंत भी कहते हैं।—

श्रीवाल्मीकचि जाला
श्रीतुलसीदास रामयश गाया।

तरिच प्रेमरसाची खाणी
वाणी तशीच वश गा या ॥

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी का यश गाने के लिये ही श्रीवाल्मीकि तुलसीदास हुये। तभी तो प्रेमरस की खान ऐसी वाणी उनके वश में हुई।

मीराबाई का पत्र

मीराबाई का नाम हिन्दीवालों से अपरिचित नहीं। कहा जाता है कि जब मीराबाई को तत्कालीन राणा बहुत तंग करने लगे, तब उन्होंने तुलसीदास को यह पत्र लिख भेजा और पूछा कि क्या करना चाहिये।—

स्वस्ति श्रीतुलसी गुन भूषन दूषन हरन गुसाईं!
बारहि बार प्रणाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिँ देत कलेस महाई॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्योंहूँ लगी लगन बरियाईं॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥

तुलसीदास ने इसके उत्तर में यह पद लिख भेजा।—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति बिमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डेराहीं॥
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन भे सब मङ्गलकारी॥

नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होइ सनेह राम सों एतो मतो हमारो॥

बनारसीदास से सत्संग

जैन-कवि बनारसीदास तुलसीदास के समकालीन थे। कहा जाता है कि तुलसीदास से एक बार उनकी भेंट हुई थी। तुलसीदास ने बनारसीदास को रामचरित-मानस की एक प्रति दी थी और बनारसीदास ने उनको पार्श्वनाथ की स्तुति दी थी। दूसरी बार की मुलाक़ात में बनारसीदास ने रामचरित पर यह कविता लिखकर दी थी।—

बिराजै रामायण घट माहीं।
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख मानै नाहीं॥
आतम राम ज्ञान गुन लछमण, सीता सुमति समेत।
शुभ प्रयोग बानरदल मंडित, बर बिबेक रन खेत॥
ध्यान धनुष टंकार सोर सुनि गई विषय दिति भाग।
भई भस्म मिथ्या मत लंका उठी धारना आग॥
जरे अज्ञान भाव राक्षस कुल लरै निशंकित सूर।
जूझे राग द्वेष सेनापति संसय गढ़ चकचूर॥
बिलखत कुम्भकरन भव विभ्रम, पुलकित मन दरियाव।
थकित उदार बीर महिरावन, सेतुबन्ध समभाव॥
मूर्च्छित मंदोदरी दुरासा, सजग चरन हनुमान।
घटी चतुर्गति परनति सेना, छुटै छपक गुन बान॥
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन, उदय विभीषन दीन।
फिरै कबन्ध महीरावन को प्रान भाव सिरहीन॥

इह बिधि साधु सकल घट अन्तर, होय सहज संग्राम।
यह बिवहार दृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम॥

इसके उत्तर में तुलसीदास ने पार्श्वनाथ की यह स्तुति लिखी थी।—

पदजलज भगवान जू के बसत हैं उर माहिं।
चहुँ गति बिहंडन तरनतारन, देख बिघन बिलाहिं॥
थकि धरनिपति नहिं पार पावत नर सु बपुरा कौन।
तिहिं लसत करुना जनपयोधर भजहिं भवि जन तौन॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूषन, जलधि ज्ञान गँभीर।
जिहि भाल ऊपर छत्र सोहत, दहत दोष अधीर॥
जिहि नाथ पारस जुगल पंकज चित्त चरनन जास।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित भजत तुलसीदास॥

(बनारसी-विलास से उद्धृत)

कारावास

तुलसीदास के चमत्कारों की कहानियाँ जब दिल्लीपति के कानों तक पहुँचीं, तब उसने उनको दरबार में आदर-सहित लाने के लिये अपने आदमी भेजे। तुलसीदास बादशाह की आज्ञा पाकर दिल्ली गये और दरबार में उपस्थित हुये। बादशाह ने उनका बड़ा सत्कार किया और कुछ करामात दिखाने के लिये कहा। तुलसीदास ने कहा—मैं तो एक राम-नाम जानता हूँ, और मुझमें कोई करामात नहीं। इस पर बादशाह ने अप्रसन्न होकर उनको कारागार में बन्द करवा दिया और कहा—बिना कोई करामात दिखाये छूटने न पाओगे। कारागार में तुलसीदास ने हनुमानजी की यह स्तुति की।—

कानन भूधर बारि बयारि
दवा विष ज्वाल महा अरि घेरे।
संकट कोटि परो तुलसी तहँ
मात पिता सुत बन्धु न नेरे।
राखहिं राम कृपा करिकै
हनुमान से पायक हैं जिन केरे।
नाक रसातल भूतल में
रघुनायक एक सहायक मेरे॥

तोहि न ऐसी बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से तो सों न वसीले॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्व गहीले॥
सेवक को परदा फटै तू समरथ सीले।
अधिक आपु तें आपुनो सुनि मान सही ले॥
साँसति तुलसीदास की देखि सुजस तुही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले॥

तुलसीदास की यह प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई। हनुमानजी ने बन्दरों को भेजकर बादशाही क़िले, स्वयं बादशाह और बेगमों की दुर्गति करा डाली। बादशाह दौड़कर तुलसीदास के चरणों पर गिरा, तब तुलसीदास ने शान्ति के लिये हनुमानजी की यह स्तुति की।—

अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी॥

लोक-रीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी।
अति बरसे अनबरसेहूँ देहिं दैवहिं गारी॥
ना कहि आये नाथ सों भई साँसति भारी।
कहि आये, कीबी छमा निज ओर निहारी॥
समय साँकरे सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब बिधि दाया करै अपराध बिसारी॥
बिगरी सेवक की सदा साहेबहि सुधारी।
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निरारी॥

तुलसीदास की स्तुति से बन्दरों का उपद्रव रुक तो गया, पर बादशाह को दंड-स्वरूप अपना क़िला हनुमानजी के लिये छोड़ देना पड़ा।

प्रियादासजी ने भी इस कथा पर दो कबित्त लिखे हैं। आश्चर्य की बात है कि मुग़लों के दो बड़े प्रसिद्ध बादशाह अकबर (सं० १६१३—१६६२) और जहाँगीर (सं० १६६२—१६८४) तुलसीदास के जीवन-काल में होकर गुज़रते हैं, और दोनों के अलग-अलग प्रामाणिक इतिहास भी मिलते हैं; पर किसी के इतिहास में हम तुलसीदास का नाम भी नहीं पाते, उनके दिल्ली जाने और बन्दरों से उत्पात मचवाने की तो बात ही क्या? अबुलफ़ज़ल ने अकबर का जीवन-चरित 'आईन-ए-अकबरी' में बड़ी ही तत्परता से लिखा है; पर उसमें भी तुलसीदास का नाम नहीं है। 'जहाँगीरनामा' में भी तुलसीदास के दिल्ली जाने और दरबार में उपस्थित होने का कोई ज़िक्र नहीं। फिर किस दिल्ली-पति के समय में तुलसीदास गये थे, यह ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता।

पर तुलसीदास के दिल्ली जाने की किंवदन्ती में सत्य का कुछ अंश अवश्य है। दिल्ली में कुतुब के रास्ते पर एक स्थान

है, जहाँ मुसलमान फ़क़ीर एक स्थान दिखलाकर यह कहते हैं कि बाबा तुलसीदास जब दिल्ली आये थे, तब यहाँ ठहरे थे, और पैसा माँगते हैं। मैंने भी वह स्थान देखा है। उस स्थान को सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ने भी देखा है। यह बात नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका के किसी पिछले अंक में छपी हुई उनकी एक चिट्ठी से मुझे मालूम हुई है। अतएव तुलसीदास का दिल्ली जाना असत्य नहीं जान पड़ता। बाक़ी चमत्कार की बात का प्रमाण तो तुलसीदास और हनुमानजी के अन्तरंग भक्तों के हिस्से की चीज़ है।

प्रयाग के कायस्थ-पाठशाला कालेज के एक रिटायर्ड प्रोफ़ेसर मुंशी गणेशीलाल साहब ने मुझे यह लिखकर भेजा है कि 'अकबरनामा' की हस्त-लिखित प्रति में, जो जयपुर के राज-पुस्तकालय में है, अकबर के साथ 'बाबा तुलसीदास' के शतरंज खेलने की बात लिखी हुई है। मैंने यह 'अकबरनामा' नहीं देखा; पर मुंशीजी ने उसे देखा है। तुलसीदास शतरंज खेलना जानते थे, यह तो उनकी दोहावली के दोहों से भी विदित होता है, और यह भी अनुमान किया जा सकता है कि तुलसीदास जब ज्योतिष जानते थे, तंत्र-मन्त्र भी जानते थे, कविता रचते थे, संगीत के अच्छे मर्मज्ञ थे और राजा-रईसों में उनका आना-जाना भी रहा होगा, तब उनके संसर्ग में रहकर वे शतरंज न जानते हों, यह आश्चर्य की बात होगी। यदि अकबर के साथ वे शतरंज खेला करते थे, तब तो अकबर से उनकी निकटता स्वीकार करनी पड़ेगी। पर अबुलफ़ज़ल ने उनकी उपेक्षा क्यों की? इसका उत्तर अब कोई नहीं दे सकता।

फुटकर

[१]

पंडित घनश्याम शुक्ल संस्कृत के अच्छे कवि थे। वे भाषा की कविता भी लिखते रहते थे। इसपर किसी पंडित ने आपत्ति की कि देववाणी में न लिखने से ईश्वर अप्रसन्न होता है। शुक्ल जी ने तुलसीदास से पूछा। तुलसीदास ने उत्तर दिया।—

का भाषा का संस्कृत , प्रेम चाहिये साँच ।
काम जो आवै कामरी , का लै करै कमाँच ॥

[२]

तुलसीदास जब प्रह्लाद-घाट पर रहा करते थे, तब एक बार वे रात में कहीं से लौट रहे थे। रास्ते में चोरों ने उन्हें घेर लिया। इसपर तुलसीदास ने हनुमानजी को स्मरण किया और यह दोहा पढ़ा।—

बासर ढासनि के ढका , रजनी चहुँदिसि चोर ।
दलत दयानिधि देखिये , कपि केसरी किसोर ॥

तब हनुमानजी ने अपना भयानक रूप दिखलाया, जिससे चोर डरकर भाग गये।

[३]

एक दिन तुलसीदास मणिकर्णिका घाट पर नहा रहे थे। एक पंडित ने पूछा—संस्कृत के विद्वान् होकर आपने गँवारी भाषा में ग्रन्थ क्यों बनाया ?

तुलसीदास ने उत्तर दिया।—

मनि भाजन् विष पारई , पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िय का संग्रहिय , कहहु बिबेक बिचारि ॥

[४]

एक दिन एक फ़क़ीर ने आकर 'अलख-अलख' पुकारा। तुलसीदास ने कहा।—

हम लखु हमैं हमार लखु , हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखै का लखै , राम नाम जपु नीच ॥

विश्वास नहीं होता कि 'नीच' शब्द तुलसीदास ने किसी फ़क़ीर के लिये कहा होगा। वे कटुवादी नहीं थे। संभव है; उन्होंने अपने को संबोधन करके यह दोहा कहा हो।

[५]

श्रीरामदास गौड़ लिखते हैं।—

"खलों को सुधारने के सम्बन्ध में एक कथा हमने अपनी बाल्यावस्था में सुनी थी। एक बार गोस्वामीजी जाड़े में आधीरात को कहीं से लौटे आ रहे थे। राह में चोरों का एक दल मिल गया। अँधेरे में इनकी आहट पाकर एक ने पूछा—"तू कौन है?" यह बोले—"भाई, जो तुम सो मैं।" कहा—"अकेला ही है?" बोले—"हाँ"। पूछा—"तो नये-नये निकले जान पड़ते हो। अच्छा, चाहो तो हमारे साथ हो लो।" गोस्वामीजी साथ हो लिये। इन्हें पहरे पर रख सेंध लगायी। जब चोरी करने अन्दर गये, तब इन्होंने झोली में से शङ्ख निकाला और बजाया। चोर भाग खड़े हुए, तो यह भी उनके साथ भागे। दूसरी जगह वह घर में पैठे और पहले की तरह इन्हें पहरे पर रखा। फिर शङ्ख बजा और जाग और भगदड़ हुई। इस बार किसी चोर ने गोस्वामीजी को शङ्ख बजाते देख लिया था। जब एकान्त में सब एकत्र हुए, तो उसने नये चोर पर अपना संदेह प्रकट किया। गोस्वामीजी ने स्वीकार कर लिया कि "शङ्ख

मैंने ही बजाया था, तुमने मुझे पहरे पर रखा था कि कोई जोखिम देखना तो तुरन्त बताना। मैंने बहुत जोखिम देखकर ही दोनों बार शङ्ख बजाया। मैंने देखा कि भगवान् रामचन्द्र तुमको चोरी करते देख रहे हैं। दंड अवश्य मिलेगा। सो मैंने अपनी झोली से तुमको चेतावनी देने को शङ्ख निकालकर बजा दिया।" गोस्वामीजी की बातें सुनकर चोर उन्हें पहचान गये और उनके चरणों पर गिरे। चोरी छोड़ दी और उनके शिष्य होगये।"

[६]

रामचरित-मानस को काशी के संस्कृताभिमानी पंडित प्रामाणिक ग्रन्थों की कोटि में रखने को प्रस्तुत नहीं थे। पर उसकी बढ़ती हुई लोक-प्रियता को वे रोक भी नहीं सकते थे। तब उन्होंने यह चाल चली की यदि विश्वनाथजी इसपर सही कर दें, तो यह ग्रन्थ प्रामाणिक माना जाय। इसके अनुसार रात के समय 'मानस' की एक प्रति विश्वनाथजी के मन्दिर में रख दी गई। सबेरे पट खुलने पर उसपर विश्वनाथजी की स्वीकृति पाई गई।

इतने ही से पंडितों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर प्रश्न उठाया कि 'मानस' श्रुति, स्मृति, पुराण और काव्य में किस कोटि का माना जाय? अगली रात में 'मानस' उपर्युक्त विषयक ग्रन्थों के साथ सबके नीचे रक्खा गया। सबेरे वह सबके ऊपर रक्खा हुआ मिला।

इतने पर भी पंडितगण पीछे नहीं हटे। वे रामचरित-मानस को उड़ा लेने की चिंता में प्रवृत्त हुये। उन्होंने उसके लिये कुछ चोर नियुक्त किये। चोर जब 'मानस' को चुराने के लिये तुलसीदास की कुटी पर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने दो राजकुमारों को पहरा देते हुये पाया। यह देखकर वे बहुत पछताये और सबेरे

आकर उन्होंने तुलसीदास से क्षमा-प्रार्थना की। तुलसीदास ने देखा कि उनके राम को उनके लिये कितना कष्ट उठाना पड़ता है, तब उन्होंने कुटी की सब चीज़ें लुटा दीं और 'मानस' को टोडरमल के यहाँ रखवा दिया। पर पता नहीं, विश्वनाथजी की स्वीकृतिवाला वह 'मानस' अब कहाँ है?

[७]

एक ब्राह्मण को ब्रह्म-हत्या लगी थी। वह प्रायश्चित्त के लिये तीर्थाटन करता हुआ काशी आया और तुलसीदास के पास पहुँचा। तुलसीदास ने उसके मुँह से राम-नाम कहलाकर उसे पवित्र कर लिया और उसके साथ भोजन भी किया। इस पर काशी के पंडित बहुत बिगड़े। विरोध के लिये एक ब्राह्मण-सभा की गई और उसमें तुलसीदास को बुलाकर उनसे पूछा गया कि उन्होंने ऐसा शास्त्र-विरुद्ध कार्य क्यों किया? तुलसीदास ने समस्त शास्त्रों से राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करके अपने कार्य का समर्थन किया। इस पर यह निर्णय हुआ कि शिवजी का नादिया इस हत्यारे ब्राह्मण के हाथ का भोजन ग्रहण कर लेगा, तो हम लोग इसे शुद्ध समझ लेंगे। नन्दीश्वर के सामने जब उस हत्यारे के हाथ से पकवान रक्खे गये, तब नन्दीश्वर ने सब पा लिये। इस पर तुलसीदास का जय-जयकार होने लगा।

जान पड़ता है कि ऐसी कोई घटना काशी में अवश्य घटी होगी, जिसके परिणाम-स्वरूप काशी के ब्राह्मण तुलसीदास की जाति-पाँति पर संदेह करने लगे होंगे।

[८]

काशीवालों ने तुलसीदास की हत्या के कई प्रयत्न किये, पर जब एक भी प्रयत्न सफल न हुआ, तब उन्होंने तंत्र-मंत्र की शरण

ली। काशी के प्रसिद्ध तांत्रिक बटेश्वर को तुलसीदास की हत्या के लिये नियुक्त किया गया। उसने काशी के कोतवाल भैरवजी को प्रेरित किया। पर जब भैरवजी ने तुलसीदास के पास पहुँचकर देखा कि वहाँ बजरङ्गबली पहले ही से प्रस्तुत हैं, तब वे लौट गये और उन्होंने बटेश्वर ही को मार डाला।

[९]

बिहार के सारन ज़िले में हरीराम ब्रह्म (हरसू ब्रह्म) का स्थान है। किसी कनकशाही बिसेन ठाकुर के अत्याचार से पीड़ित होकर हरीराम ने आत्म-हत्या कर ली थी। वहाँ रामनवमी के दिन बड़ा मेला होता है। कहा जाता है कि उन हरीराम के यज्ञोपवीत के अवसर पर तुलसीदास भी उपस्थित थे।

[१०]

बङ्गाल से आये हुये एक क्रोधी पंडित रविदत्त शास्त्री को काशी के पंडितों ने तुलसीदास से शास्त्रार्थ के लिये भिड़ा दिया। पर जब वह हार गया, तब लट्ठ लेकर दौड़ा। पर सामने उसे हनुमानजी खड़े दिखाई पड़े और वह भयभीत होकर भाग गया।

शास्त्र और शस्त्र दोनों से हारकर रविदत्त ने अनुनय-विनय से काम निकालना चाहा। उसने तुलसीदास की सेवा-सुश्रूषा करके उनको प्रसन्न किया और वरदान माँगा। साधु-स्वभाव तुलसीदास उसके फेर में आगये और उन्होंने उसे वरदान माँगने की स्वीकृति दे दी। इसपर उसने यह माँगा कि आप काशी छोड़कर चले जाइये। तुलसीदास अपने वचन के लिये विवश थे। वे विश्वनाथजी की प्रार्थना करके काशी से चले गये। शिवजी ने तुलसीदास को स्वप्न देकर उन्हें रास्ते में ठहरने के लिये आदेश दिया और काशीवालों को स्वप्न देकर बहुत डराया-

धमकाया। तब काशी के लोग तुलसीदास के मित्र टोडरमल को आगे करके गये और उन्हें मना लाये। तबसे वे गोपाल-मंदिर छोड़कर अस्सी पर रहने लगे।

[११]

नाभाजी से मिलने के लिये तुलसीदास जब वृन्दाबन गये, तब उन्हें वहाँ सर्वत्र कृष्ण ही का नाम सुनकर आश्चर्य हुआ। यहाँ राम का नाम उन्हें कहीं सुनने को भी न मिला, तब उन्होंने यह दोहा कहा।—

राधा कृष्ण सबै कहैं, आक ढाक अरु कैर।
तुलसी या ब्रज मों कहा, सिया राम सों बैर॥

जब वे गोपाल-मन्दिर में पहुँचे, तब श्रीकृष्ण की मूर्त्ति के सामने खड़े होकर उन्होंने यह दोहा पढ़ा।—

कहा कहौं छबि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बान लो हाथ॥

इसे सुनकर कृष्ण की मूर्त्ति ने राम का रूप धारण कर लिया और तब तुलसीदास ने उन्हें प्रणाम किया।

महाराष्ट्र कवि मोरोपंत ने भी 'केकावली' में इस घटना का उल्लेख किया है—

श्रीकृष्ण मूर्त्ति जेणें केली श्रीराममूर्त्ति सज्जन हो।
रामसुत मयूर म्हणे त्याचा सुयशोमृतांत मज्जन हो॥

[१२]

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास, जो ओड़छा के राजा इन्द्रजीतसिंह के दरबारी कवि थे, एक प्रेत-यज्ञ में जलकर प्रेत होगये थे और एक कुएँ में रहते थे। तुलसीदास जब ओड़छे

गये और उस कुएँ से पानी लेने लगे, तब प्रेत केशवदास ने उनका लोटा पकड़ लिया और कहा—मुझे प्रेत-योनि से छुड़ाइये, तब लोटा छोड़ूँगा। तुलसीदास ने कहा—अपनी रामचन्द्रिका का २१ बार पाठ करो, तब तुम्हारी मुक्ति होगी।

केशवदास ने कहा—रामचन्द्रिका के पहले छन्द का पहला अक्षर मैं भूल गया हूँ।

तुलसीदासजी ने स्मरण दिला दिया, तब २१ बार रामचन्द्रिका का पाठ करके केशवदास प्रेत-योनि से मुक्त हुये।

[१३]

एक बार एक ब्राह्मण दरिद्रता से घबराकर आत्म-हत्या करने पर उतारू हुआ। तुलसीदास ने उसकी दीन-दशा पर तरस खाकर मंदाकिनी (नदी) से प्रार्थना करके दरिद्र-मोचन नाम की शिला प्रकट करवा दी, जिसके प्रभाव से ब्राह्मण की दरिद्रता दूर हुई। चित्रकूट में रामघाट पर, जहाँ उक्त शिला प्रकट हुई थी, अबतक दरिद्र-मोचन नाम का स्थान है।

[१४]

एक बार एक तान्त्रिक की स्त्री को एक बैरागी निकाल ले गया। तांत्रिक ने तंत्र-बल से बादशाह को पकड़ मँगाया और यह हुक्म जारी करा दिया कि जितने माला और तिलकवाले मिलें, सबकी मालायें उतार ली जायँ और तिलक मिटा दिये जायँ। इससे काशी के बैरागियों में बड़ा हाहाकार मचा। बहुतों के माले छीने गये और तिलक मिटाये गये। जब बादशाही दूत तुलसीदास के पास पहुँचे, तब उन्हें जहाँ-तहाँ भयंकर देव दिखाई दिये, जिनसे डरकर वे भाग गये और सबके माला और तिलक फिर ज्यों के त्यों होगये।

[१५]

काशी में भुलई साहु नाम का एक कलवार था। वह साधु-सन्तों की निन्दा किया करता था। पर उसकी स्त्री साधु-सन्तों में श्रद्धा रखती थी। एक दिन भुलई मर गया। उसे लोग श्मशान की तरफ लिये जाते थे कि रास्ते में उसकी स्त्री को, जो रोती-पीटती पीछे-पीछे जा रही थी, तुलसीदास मिले। उसने तुलसीदास को प्रणाम किया। तुलसीदास ने अभ्यास के अनुसार कह दिया—सौभाग्यवती हो। स्त्री ने कहा—महाराज, आपका वचन तो मिथ्या होना चाहता है, मेरा पति तो मर गया। तुलसीदास ने उसके पति की लाश को वापस मँगाया और उसे चरणामृत पिलाकर जीवित कर दिया।

[१६]

मुर्दों को जिला देने के चमत्कार से लोग बहुत आकर्षित हुए और तुलसीदास के दर्शनों के लिये उनकी कुटी पर भीड़ जमा रहने लगी। इससे उनके भजन में बाधा पड़ने लगी। तब उन्होंने कुटी से बाहर निकलना ही छोड़ दिया। हृषीकेश, शांतिपद और दातादीन ये तीन उनके भक्त थे। तुलसीदास का दर्शन किये बिना वे अन्न-जल न ग्रहण करते थे। इससे तुलसीदास दिन में एक बार उनको दर्शन देने के लिये कुटी से बाहर आया करते थे। लोग इस बात को तुलसीदास का पक्षपात समझते थे। एक दिन तुलसीदास उनके लिये भी बाहर न निकले। परिणाम यह हुआ कि वे तीनों कुटी के द्वार पर तड़प-तड़पकर मर गये। तब लोगों को उनके सच्चे प्रेम पर विश्वास हुआ। तुलसीदास ने तीनों को चरणामृत पिलाकर जीवित कर दिया।

[१७]

एक दिन तुलसीदास कहीं जा रहे थे। राह में उन्हें ब्राह्मण

की एक स्त्री मिली, जो अपने मृत पति के साथ सती होने जा रही थी। तुलसीदास को देखकर उसने उनका चरण छूकर प्रणाम किया। तुलसीदास ने आशीर्वाद दिया—"सौभाग्यवती हो।" स्त्री ने कहा—मैं तो विधवा होगई हूँ, और अब सती होने जा रही हूँ। तुलसीदास बड़े विचार में पड़े। अंत में उन्होंने राम-नाम के प्रभाव से उसके मृत पति को जीवित कर दिया। प्रियादास ने भी भक्तमाल की टीका में इस घटना का उल्लेख किया है।

भारत के पुण्य-श्लोक कवि रवीन्द्रनाथ ने एक नवीन प्राण डालकर इस कथा को इस बीसवीं सदी में सती होने से बचा लिया है। कवि रवीन्द्रनाथ ने उपर्युक्त घटना को लेकर एक कविता रची है, जो उनकी 'कथा' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई है। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं।—

स्वामी-लाभ

एकदा तुलसीदास जाह्नवीर तीरे
निर्ज्जन श्मशाने
सन्ध्याय आपन मने एका एका फिरे
माति निज गाने
हेरिलेन, मृत पति चरणेर तले
वसियाछे सती
तारि सने एक साथे एक चितानले
मरिबारे मति।

अर्थ—

एक बार तुलसीदास संध्या समय, गङ्गा-तट पर, निर्जन श्मशान-भूमि में, अकेले अपने गान में निमग्न घूम रहे थे।

उन्होंने देखा, एक सती अपने मृत पति के साथ एकही चिताग्नि में अपने प्राण विसर्जन करने के लिये उसीके चरणों के पास बैठी है।

संगिगन माझे माझे आनंद चीत्कारे
करे जयनाद
पुरोहित ब्राह्मणेरा घेरि चारि धारे
गाहे साधुवाद
सहसा साधु रे नारी हेरिया संमुखे
करिया प्रणति
कहिल विनये "प्रभो, आपन श्रीमुखे
देह अनुमति।"
तुलसी कहिल "मातः, जाबे कोन् खाने
एत आयोजन?"
सती कहे "पती सह जाब स्वर्गपाने
करियाछि मन।"
"धरा छाड़ि केन नारी, स्वर्ग चाह तुमि"
साधु हासि कहे,
"हे जननी! स्वर्ग जॉर ए धरणी भूमि
ताँहार कि नहे?"

उसके साथ के लोग बीच-बीच में आनन्द-घोष के साथ जय-नाद करते थे और पुरोहित और ब्राह्मण चारोंओर से घेरकर आशीर्वाद देते थे।

यकायक स्त्री ने साधु (तुलसीदास) को सामने देखा और प्रणाम करके कहा—प्रभो! अपने श्रीमुख से अनुमति दीजिये।

तुलसीदास ने कहा—माता! कहाँ जाने के लिये तुम्हारी ऐसी तैयारी हो रही है? सती ने कहा—पति के साथ स्वर्ग जाने की इच्छा है।

साधु (तुलसीदास) ने हँसकर कहा—तुम पृथ्वी छोड़कर क्यों स्वर्ग जाना चाहती हो? हे माता! स्वर्ग जिनका है, क्या यह भूमि भी उन्हींकी नहीं है?

बुझिते ना पारि कथा नारि रहे चाहि,
विस्मये अवाक्—
कहे कर जोड़ करि—"स्वामी यदि पाइ
स्वर्ग दूरे थाक्।"
तुलसी कहिल हासि "फिरे चलो घरे
कहितेछि आमि
फिरे पावे आज ह'ते मासेकेर परे
आपनार स्वामी।
रमनी आशार वशे गृहे फिरे जाय
श्मशान तेयागि';
तुलसी जाह्नवी तीरे निस्तब्ध निशाय
रहिलेन जागि'।
नारी रहे शुद्ध चिते निर्जन भवने;
तुलसी प्रत्यह
कि ताहारे मंत्र देय नारी एक मने
ध्याय अहरह

स्त्री समझ न सकी। वह विस्मित और अवाक् होकर उन्हें देखने लगी। फिर उसने हाथ जोड़कर कहा—स्वामी मिल जाँय, तो स्वर्ग की मुझे परवा नहीं।

तुलसीदास ने हँसकर कहा—तुम घर लौट चलो। मैं कहता हूँ, आज से एक मास पश्चात् तुम अपने स्वामी को पा जाओगी।

स्त्री आशा-वश श्मशान छोड़कर घर वापस गई। तुलसीदास गङ्गा-तट पर उस निस्तब्ध रात्रि भर जागते रहे।

स्त्री शुद्ध चित्त से अपने निर्जन भवन में रहती रही। तुलसीदास प्रतिदिन जो मन्त्र उस नारी को सिखाते थे, वह निरन्तर उसीका ध्यान किया करती थी।

एक मास पूर्ण हते प्रतिवेशी दले
आसि' ता'र द्वारे
शुधाइल "पेलेस्वामी?" नारि हासि'बले—
"पेयेछि ताँहारे"
शुनि व्यग्र कहे ता'रा—"कह तबे कह
आछे कोन् घरे ?"
नारी कहे "रयेछेन प्रभु अहरह
आमारि अन्तरे ॥

उपर्युक्त कविता-जैसा भाव तुलसीदास ने भी एक दोहे में भरा है ।—

सीस उघारन किन कहेउ , बरजि रहे प्रिय लोग ।
घरही सती कहावती , जरती नाह बियोग ॥
(दोहावली)

[१८]

एक ठाकुर के एक बड़ी रूपवती कन्या थी । कन्या की माता ने उसके जन्म के समय यह घोषणा करा दी थी कि पुत्र हुआ है । पुत्र ही की तरह उसका लालन-पालन भी हुआ था । संयोग से उसका विवाह एक कन्या से होगया । विवाह हो जाने पर उसका रहस्य खुला । इससे ठाकुर साहब के घर में शोक छाया हुआ था । संयोग से उसी समय तुलसीदास, जो बादशाह के

एक मास पूर्ण होते ही पड़ोसियों ने द्वार पर आकर पूछा—स्वामी मिला ? स्त्री ने हँसकर कहा—हाँ, मैंने उन्हें पा लिया है ।

यह सुनकर उन लोगों ने व्यग्रता से पूछा—बताओ, बताओ, वह किस घर में है ? स्त्री ने कहा—मेरे वह नाथ निरन्तर मेरे ही अन्तर में विराजमान हैं ।

बुलाने पर दिल्ली जा रहे थे, ठाकुर साहब के यहाँ जा ठहरे। ठाकुर की मनोव्यथा देखकर तुलसीदास को दया आई। उन्होंने नौ दिन वहीं रहकर रामचरित-मानस का पाठ किया, जिसके प्रभाव से ठाकुर की कन्या पुरुष होगई। तभी से 'मानस' के नवाह्निक पाठ की प्रथा चल निकली है।

इस घटना के प्रमाण में दोहावली के ये दोहे दिये जाते हैं।—

कबहुँक दरसन सन्त के, पारसमनी अतीत।
नारि पलटि सो नर भयो, लेत प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुबर सेवतहिं, मिटिगो कालो काल।
नारि पलटि सो नर भयो, ऐसे दीनदयाल॥

[१९]

'मानस' के बाल-कांड में इस सोरठे

संकर चाप जहाज, सागर रघुबर बाहुबल।
बूड़े सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहि मोह बस॥

के तीन चरण लिखकर तुलसीदास चिंता में पड़ गये कि सकल समाज में तो राम-लक्ष्मण भी थे, क्या वे भी डूब गये? यहीं उन्होंने लेखनी रख दी। रात में हनुमानजी ने चौथा चरण लिख-कर सोरठा पूरा कर दिया।

[२०]

कहा जाता है, तुलसीदास पर आमेर के महाराजा मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह भी बड़ी श्रद्धा रखते थे। वे प्रायः उनके पास आया करते थे। एक बार किसी ने पूछा—पहले तो आपके पास कोई नहीं आता था, अब बड़े-बड़े राजा-महाराजा आने लगे। तुलसीदास ने कहा।—

घर घर माँगे टूक पुनि , भूपन पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिनु , ते अब राम सहाय॥

[२१]

दिअरा (सुलतानपुर-अवध) के राजभवन में एक चौकठ लगा है, जिसके सम्बन्ध में मुझे बताया गया था कि तुलसीदास ने उसे लाँघा था। वहाँ उस चौकट के साथ तुलसीदास की यह स्मृति सजीव हो रही है।

तुलसीदास ने भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रायें की थीं। चित्र-कूट, काशी और अयोध्या तो उनके मुख्य निवास-स्थान थे ही, वे अन्य तीर्थ-स्थानों में भी भ्रमण करते रहते थे। प्रयाग, जनकपुर, नैमिषारण्य, लखनऊ, संडीला, मलीहाबाद, मड़ियाहू (जौनपुर) और बिठूर भी वे गये थे। इन स्थानों में उनके जाने और रहने की कथायें जनता में परम्परा से चली आ रही हैं। मलीहाबाद में उनके हाथ का लिखा हुआ 'मानस' रक्खा है। मैंने उसे देखा है; पर उसमें संवत् नहीं दिया होने से मैं निश्चय नहीं कर सका कि वास्तव में वह उन्हीं के हाथ का या समय का है, या नहीं।

दिल्ली और वृन्दावन जाने की कथायें ऊपर दी जा चुकी हैं। वे कुछ दिनों तक राजापुर में भी रहे थे, ऐसी जन-श्रुति है। यद्यपि राजापुर तो उनका जन्म-स्थान ही प्रसिद्ध किया गया है, और गवर्नमेंट ने भी उसे स्वीकार करके वहाँ अपनी तख्ती लगा दी है, पर वह वास्तविक जन्म-स्थान न होने पर भी कुछ समय तक वहाँ उनका निवास-स्थान ज़रूर रहा होगा।

तुलसीदास और चमत्कार

तुलसीदास के चमत्कार की और भी छोटी-मोटी बहुत-सी दन्त-कथायें हैं। कुछ को तो उनके चरित-लेखकों ने अपने-अपने ग्रन्थों में गूँथ लिया है, कुछ सर्व-साधारण की जिह्वा पर हैं। मैंने दोनों में से चुनकर कुछ कथायें ऊपर दे दी हैं। इनमें कुछ तो सच्ची ही होंगी। जैसे तुलसीदास के परिवार और गृह-त्याग की कथा, नाभाजी के भण्डारे में तुलसीदास की उपस्थिति, टोडरमल के साथ उनकी मित्रता तथा भिन्न-भिन्न स्थानों की यात्रायें आदि। पर जिन कथाओं में चमत्कार शामिल हैं, उनको तो अलौकिक ही समझना चाहिये। उन कथाओं के आधार पर तुलसीदास का कोई क्रम-बद्ध जीवन-चरित नहीं तैयार किया जा सकता।

सभी देशों में महात्माओं के जीवन-चरित प्रायः अधूरे ही मिलते हैं। वे अपने को समाज में ऐसा निर्लिप्त रखते हैं और मान-प्रतिष्ठा से इतना बचकर रहना चाहते हैं कि जनता उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में उनसे बहुत कम जान पाती है। इसी से उनमें तरह-तरह की कल्पनायें उत्पन्न होकर घर कर लेती हैं और समय पाकर वे सत्य का रूप धारण कर लेती हैं। फिर उन्हें उनके मस्तिष्क से निकाल बाहर करना कठिन हो जाता है। जिस महात्मा के प्रति लोगों की जैसी श्रद्धा होती है, उसी के परिमाण से उसके चमत्कार की बातें भी गढ़ी जाती हैं। ईसा, मूसा, मुहम्मद, यहाँ तक कि चमत्कारों के प्रबल विरोधी कबीर और दयानन्द के जीवन-चरित्र भी करश्मों से ख़ाली नहीं हैं।

आजकल महात्मा गाँधी जीवित हैं। हममें से करोड़ों ने उनके दर्शन किये हैं, लाखों ने उनको सुना है, हज़ारों ने उनको समझा

है और सैकड़ों ने उनके जीवन के साँचे को निकट से देखा है। पर हरएक से अलग-अलग बात कीजिये, तो उनमें से शायद ही कोई महात्मा गाँधी के किसी न किसी चमत्कार से खाली मिले, और हरएक का निर्मित चमत्कार उसके निजी स्वभाव के साँचे में अलग-अलग ढला हुआ भी होगा। हिन्दू-जाति की यह चमत्कार-प्रियता उसे बहुत धोखा दे रही है।

चमत्कार तो हिन्दू-जाति की पैतृक संपत्ति-सी है। कोई व्यक्ति अपनी विशेषताओं से ऊपर उठा हुआ या उठता हुआ दिखाई पड़ता है, तो लोग उसके साथ किसी न किसी चमत्कार की भावना करने लगते हैं और अधिक समय न देकर, स्वयं चमत्कार की कोई अद्भुत कथा रचकर, उसकी महिमा को चमत्कृत करते रहते हैं। उनको सत्य और मिथ्या की परवा नहीं होती।

इसी प्रकार तुलसीदास भी चमत्कारों के शिकार हुये हैं। यद्यपि वे स्वयं प्रतिष्ठा से भागते थे।—

माँगि मधुकरी खात जे, सोवत पाँव पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि॥

पर लोगों को यह रुचता है कि किसी मुर्दे को जिला देने, किसी कन्या को पुत्र बना देने, राम से अपनी कुटी की रखवाली कराने और बंदरों से बादशाह के महल को उजड़वा डालने का चमत्कार उनकी जीवनी के साथ ज़रूर रहे। तुलसीदास अपनी निर्बलता और विवशता के लिये कितना ही चिल्लाते रहें, पर उनको चमत्कारों से भरा हुआ देखने ही में लोगों को आनन्द मिलता है।

तुलसीदास तो स्वयं अपने मानवीय गुणों से देदीप्यमान हैं; झूठे, आश्चर्य-जनक और अलौकिक चमत्कारों से उनकी महिमा

बढ़ाना उनके व्यक्तित्व का उपहास करना है। श्रद्धालुओं ने भावुकता-वश उनकी जीवनी में चमत्कारों का जितना अधिक सौन्दर्य भरा है, यदि वह सत्य नहीं है, तो वह जीवनी को सुन्दर बनाने की अपेक्षा उसे निर्जीव बनाने ही में अधिक सहायक होगा।

तुलसीदास की रचनायें

इस समय तुलसीदास के रचे हुये जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं, उनकी एक सूची इस पुस्तक के प्रारम्भ में दी जा चुकी है। यह कहना कि उक्त सूची के सभी ग्रंथ तुलसीदास के रचे हैं, बड़ी जिम्मेदारी की बात है। उनमें से कौन-कौन-से ग्रन्थ उनके रचे हुये नहीं हैं, यह बतलाना तो कठिन ही नहीं असम्भव है।

तुलसीदास ने कबसे कविता लिखनी प्रारम्भ की, इसका भी ठीक पता नहीं है। केवल 'मानस' का रचना-काल हमें मालूम है कि वह सं० १६३१ में प्रारंभ हुआ था। सं० १६३१ के बहुत पहले से तुलसीदास ग्रन्थ-रचना में प्रवृत्त हुये थे, यह तो स्वीकार ही कर लेना पड़ेगा; क्योंकि 'मानस'-जैसे महाकाव्य का कवि एक दिन में नहीं बना करता। तुलसीदास छात्रावस्था ही से पद्य-रचना करने लगे थे, यह हमें उनकी कवितावली के अनेक छन्दों से विदित होता है। कवितावली में उनकी समस्या-पूर्तियां के कई छन्द मिलते हैं, जो इस बात के साक्षी हैं।

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम पर हम आगे स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे। यहाँ हम उनकी उन रचनाओं पर अलग-अलग विचार कर लेना चाहते हैं, जो विशेषज्ञों की सम्मति से उन्हींकी स्वीकार कर ली गई हैं। वे रचनायें ये हैं।—

१—वैराग्य-संदीपिनी

२—रामाज्ञा-प्रश्न और राम-शलाका

३—गीतावली

४—दोहावली

५—तुलसी-सतसई

*

६—कवितावली

७—रामचरितमानस

८—पार्वती-मङ्गल

९—रामलला-नहछू

१०—जानकी-मङ्गल

११—श्रीकृष्ण-गीतावली

१२—बरवै रामायण

१३—विनय-पत्रिका

इनमें जो संग्रह-ग्रन्थ हैं, जैसे दोहावली और कवितावली आदि, उनके विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनका संकलन तुलसीदास ने स्वयं किया था, या उनके समय में या उनके पश्चात् उनके किसी शिष्य या मित्र ने किया था। प्रत्येक रचना पर अलग-अलग विचार करते समय हम इस प्रश्न को भी हल करेंगे कि अपनी किन-किन रचनाओं को तुलसीदास ने स्वयं ग्रंथ का रूप दे दिया था और किन-किन रचनाओं में अन्यों के हाथ लगने की भी सम्भावना हो सकती है।

यहाँ हम उपर्युक्त रचनाओं पर अलग-अलग विचार करते हैं। रामचरितमानस यद्यपि तुलसीदास की कई रचनाओं के पहले का है; पर हम उसको सबके अंत में लेंगे, क्योंकि उसकी विवेचना कुछ विस्तार से करनी है।

वैराग्य-संदीपिनी

वैराग्य-संदीपिनी दोहे, चौपाइयाँ और सोरठे मिलाकर कुल ६२ छंदों की एक पुस्तिका है। इसमें संत-मत का समर्थन किया गया है। स्पष्टतः यह उस समय की रचना है, जब तुलसीदास

का झुकाव संत-मत की ओर रहा होगा। इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।—

रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञानु॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग॥

राग द्वेष की अगिनि बुझानी।
काम क्रोध बासना नसानी॥
तुलसी जबहिं सांति गृह आई।
तब उर ही उर फिरी दोहाई॥

अन्त में यह दोहा है।—

यह बिराग संदीपिनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।
अनुचित बचन बिचारिकै, जस सुधारि तस देहु॥

रामाज्ञा-प्रश्न और राम-शलाका

रामाज्ञा-प्रश्न में सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में सात-सात दोहों के सात-सात सप्तक हैं। ग्रन्थारम्भ के दो दोहे मिलाकर सातों सर्गों में कुल दोहों की संख्या ३४५ होती है। इस पुस्तक में घट-बढ़ होने की संभावना बिलकुल नहीं है। क्योंकि सारी पुस्तक निश्चित संख्या के सर्गों, सप्तकों और दोहों में निबद्ध है।

इस पुस्तक की रचना का कारण बतानेवाली एक दन्त-कथा भी है। कहते हैं कि काशी में प्रह्लाद-घाट पर पंडित गंगाराम जोशी नाम के एक सज्जन थे, जिनके यहाँ तुलसीदास ठहरा करते थे। उन दिनों काशी के राजघाट के राजा एक गहरवार क्षत्रिय थे। एक दिन उनका कुमार शिकार खेलने गया और लौटकर नहीं आया। राजा ने पंडित गंगाराम जोशी को बुलाकर प्रश्न

किया। जोशीजी गणित करके उत्तर देने का वादा कर घर आये और चिन्तित होकर बैठ गये। वे प्रतिदिन संध्या समय तुलसीदास के साथ नाव पर गङ्गापार शौच आदि के लिये जाया करते थे। उस दिन नहीं गये। तुलसीदास ने कारण जानकर उनको सान्त्वना दी और छः घन्टे के लगातार परिश्रम से रामाज्ञा-प्रश्न तैयार कर दिया। जोशीजी ने उससे अपने प्रश्न का फल निकाला, तो उन्हें विदित हुआ कि अगले दिन संध्या होते-होते राजकुमार लौट आयेगा। उन्होंने राजा को सूचना दी। दूसरे दिन सचमुच उनका कथन सत्य निकला और राजा ने जोशीजी को पूर्व प्रतिज्ञानुसार एक लाख रुपया दिया। जोशीजी ने सब रुपये लाकर तुलसीदास के चरणों पर रख दिये। तुलसीदास ने उन्हें छूने से भी इन्कार किया। बहुत आग्रह करने पर तुलसीदास ने उसमें से बारह हज़ार रुपये अलग करा दिये और उनसे हनुमानजी के बारह मन्दिर बनवा दिये।

यह कहानी कहाँ तक सच है, ईश्वर जानें। रामाज्ञा-प्रश्न के प्रथम सर्ग के उनचासवें दोहे में जो एक गंगाराम शब्द आया है, उसके चाहे जो अर्थ लगा लीजिये। या तो वह किसी व्यक्ति-विशेष का नाम है, या गङ्गा और राम दो अलग-अलग सार्थक शब्द हैं।

कुछ महानुभाव रामाज्ञा-प्रश्न और राम-शलाका को एक समझते हैं। पर रामाज्ञा-प्रश्न और राम-शलाका दो भिन्न चीज़ें हैं। मेरा अनुमान है कि राम-शलाका ही को तुलसीदास ने छः घण्टे के लगातार परिश्रम से तैयार किया होगा। रामाज्ञा-प्रश्न के ३४५ दोहे छः घण्टे के लिये अत्यन्त अधिक हैं। एक घंटे में ५७ दोहे का औसत पड़ता है। एक मिनट से अधिक तो एक दोहे के लिखने में लग जायँगे। अतएव निश्चय ही

रामाज्ञा-प्रश्न उजलत में बैठकर लिखा हुआ नहीं हो सकता। हाँ, राम-शलाका के लिये छः घण्टे काफी हैं। यद्यपि उसमें भी बुद्धि का बड़ा खर्च है, पर तुलसीदास के लिये वह साधारण-सी बात मानी जा सकती है। यहाँ 'राम-शलाका' की प्रतिलिपि दी जाती है।—

सु	प्र	उ	बि	हो	मु	ग	ब	सु	नु	बि	ध	धि	इ	द
र	रु	फ	सि	सि	रें	बस	हि	सं	ल	न	ल	य	न	अं
सज	से:	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	इ	ल	धा	बे	नो
त्य	र	न	कु	जो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	सु	थ	सी	जै	इ	ग	म	सं	क	रे	हो	स	स	नि
ति	र	त	र	स	इ	ह	ब	ब	प	चि	स	य	स	तु
म	का	।	र	र	मा	मि	मी	म्हा	।	जा	हू	हीं	।	जू
ता	रा	रे	री	हृ	का	फ	खा	जि	ई	र	रा	पू	द	ल
नि	को	मि	गो	न	म	ज	य	ने	मनि	क	ज	प	स	ल
हि	रा	मि	स	रि	ग	द	न	ष	म	खि	जि	मनि	त	जं
सिं	मु	न	न	कौ	मि	ज	र	ग	धु	ख	सु	का	स	र
गु	क	म	अ	ध	नि	म	ल	।	न	ब	ती	न	रि	भ
ना	पु	व	अ	ढ़ा	र	ल	का	ए	तु	र	न	नु	व	थ
सि	हु	सु	म्ह	रा	र	स	हृ	र	त	न	ख	।	जा	।
र	सा	।	ला	धी	।	री	ज	हू	हीं	खा	जू	ई	रा	रे

प्रश्न निकालने की रीति यह है।—

प्रश्न-कर्त्ता किसी कोठे में उँगली रक्खे। उसमें जो अक्षर हो, उसे अलग काग़ज़ पर लिख ले। फिर उसे छोड़कर नवाँ-नवाँ अक्षर ले-लेकर लिखता जाय। जब एक चौपाई बन जाय, तब उसके अर्थ के अनुसार अपने प्रश्न का फल समझ ले। यदि प्रश्नकर्त्ता ने किसी नीचे के कोठे में उँगली रक्खी और चौपाई पूरी बनने के पहले ही सब कोठे समाप्त हो गये, तब शेष

के लिये ऊपर के पहले कोठे से गिनती करके चौपाई पूरी कर लेनी चाहिये।—

राम-शलाका-चक्र में कुल नौ चौपाइयाँ हैं। वे ये हैं।—

सुनु सिय सत्य असीस हमारी।
पूजहि मन कामना तुम्हारी॥१॥

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदय राखि कोसलपुर राजा॥२॥

उघरे अन्त न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥३॥

बिधि बस सुजन कुसंगति परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥४॥

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तरक बढ़ावइ साखा॥५॥

मुद मङ्गलमय संत समाजू।
जिमि जग जंगम तीरथराजू॥६॥

गरल सुधा रिपु करै मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥७॥

बरुन कुबेर सुरेस समीरा।
रन सनमुख धरि काहु न धीरा॥८॥

सुफल मनोरथ होइ तुम्हारे।
राम लषन सुनि भए सुखारे॥९॥

पता नहीं, इनमें से किस चौपाई के आधार पर तुलसीदास ने राजकुमार के सकुशल लौटने का समय बताया था। इससे इतना अर्थ तो हम भी निकाल सकते हैं कि तुलसीदास केवल

कवि ही नहीं थे, अच्छे गणितज्ञ भी थे। यह राम-शलाका तो उनकी प्रतिभा का एक अद्भुत चमत्कार है।

रामाज्ञा-प्रश्न का अन्तिम सप्तक इस प्रकार है।—

सुदिन साँझ पोथी नेवति,
पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारु मति,
सादर सत्य सनेम ॥१॥

मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि,
दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, बचन,
सगुन समय अनुहारि ॥२॥

सगुन सत्य ससि नयन गुन,
अवधि अधिक नयवान।
होइ सुफल सुभ जासु जसु,
प्रीति प्रतीति प्रमान ॥३॥

गुरु गनेस हरु गौरि सिय,
रामु लषनु हनुमानु।
तुलसी सादर सुमिरि सब,
सगुन बिचार बिधानु ॥४॥

हनूमान सानुज भरत,
राम सीय उर आनि।
लषन सुमिरि तुलसी कहत,
सगुन बिचारु बखानि ॥५॥

जो जेहि काजहि अनुहरइ,
सो दोहा जब होइ।
सगुन समय सब सत्य सब,
कहब रामगति गोइ ॥६॥

गुन, बिस्वास, विचित्र मनि,
सगुन मनोहर हारु।
तुलसी रघुबर भगत उर,
बिलसत बिमल बिचारु ॥७॥

रामाज्ञा-प्रश्न की छपी हुई प्रति में प्रश्न निकालने का नियम दोहे में दिया गया है, वह स्पष्ट नहीं है। उसे हम यहाँ निम्न-लिखित अङ्क-चक्र द्वारा स्पष्ट कर देते हैं। जिसे फल निकालना हो, वह रामाज्ञा-प्रश्न की पुस्तक देखकर इस चक्र से फल निकाल सकता है।—

पहला चक्र

७	१	३
	२	
६	५	४

७	२	३
	१	
६	५	४

७	१	२
	३	
६	५	४

दूसरा चक्र

१	२	३	४	५	६	७
२४	२५	२६	२७	२८	२९	८
२३	४०	४१	४२	४३	३०	९
२२	३९	४८	४९	४४	३१	१०
२१	३८	४७	४६	४५	३२	११
२०	३७	३६	३५	३४	३३	१२
१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३

प्रश्न निकालने की रीति यह है कि पहले ऊपर के किसीएक अङ्क-चक्र में किसी अङ्क पर उँगली रखिये, वह अङ्क सर्ग का बोधक होगा। उसे अलग लिख लीजिये। फिर दूसरे अंक-चक्र में किसी अंक पर उँगली रखिये; जो अङ्क हो, यदि वह सात से कम हो तो अलग लिखे हुये सर्ग के पहले सप्तक में उसी संख्या का दोहा देखकर अपना फल समझ लीजिये। सात से अधिक हो तो सात से भाग दीजिये, भागफल जो आये, उतने सप्तक छोड़कर अगले सप्तक में शेष बची हुई संख्या का दोहा देखकर फल निकाल लीजिये। यदि शून्य बचे, तो भागफल को सप्तक मानकर उसके अंतिम दोहे को फल-सूचक जानिये। ऊपर के तीनों चक्रों में तीन बार अलग-अलग प्रश्न करके फल निकालना चाहिये।

गीतावली

गीतावली तुलसीदास के स्फुट गीतों का संग्रह है। इसका एक नाम 'पदावली' भी है। यह भी 'मानस' की तरह सात कांडों में विभाजित है। कांड के अनुसार इसके सम्पूर्ण पदों की संख्या इस प्रकार है।—

बाल	कांड	१०८
अयोध्या	,,	८६
अरण्य	,,	१७
किष्किधा	,,	२
सुन्दर	,,	५१
लङ्का	,,	२३
उत्तर	,,	३८
		३२८

कथा की दृष्टि से इसकी रचना वाल्मीकि-रामायण के

आधार पर हुई है। इससे कहीं-कहीं 'मानस' और इसकी कथा में अन्तर आगया है। इसमें राम के बन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का बड़ा ही करुण वर्णन है, जो मानस में नहीं है। सीता के वनवास की कथा भी इसमें दी गई है, जो मानस में नहीं है।

गीतावली की कविता बड़ी ही ललित है। इसकी भाषा मँजी हुई और भाव-प्रवण है। तुलसीदास ने इसमें बड़ा ही अद्भुत कवि-कौशल दिखलाया है।

गीतावली के गीत गाने के लिये रचे गये हैं। इससे स्वर और लय को अधिक मधुर बनानेवाले शब्दों के सहयोग से तुलसीदास ने इसके प्रत्येक पद में रस भरकर वर्षा की है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।—

राम के रूप-वर्णन में उत्प्रेक्षा का आनन्द लीजिये।—

प्रातकाल रघुबीर बदन छबि
चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिबेक बिलोचन निर्मल
सुफल सुसीतल तेरे॥

रुचिर पलक लोचन जुग तारक
स्याम अरुन सित कोये।
जनु अलि नलिन कोस महँ बंधुक
सुमन सेज सजि सोये॥

बिलुलित ललित कपोलनि पर
कच मेचक कुटिल सुहाये।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि
अलि बिपुल सकौतुक आये॥

अधर अरुन तर दसन पांति
बर मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि
तड़ित सहित कृत बासा॥

चारु चिबुक सुक तुंड बिनिंदक
सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबिधाम राममुख
सुखद समन भवत्रासा॥

शब्दालंकार मे जगमगाते हुये इस मधुर गीत को पढ़िये।---

देखु सखि आजु रघुनाथ सोभा बनी॥
नील नीरद बरन बपुष, भुवनाभरन
पीत अम्बर धरन हरन दुति दामिनी॥
सरजु मज्जन किये, सङ्ग सज्जन लिये
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी॥
सजनि आवत भवन, मत्त गजवर गवन
लंक मृगपति ठवनि, कुँवर कोसलधनी॥
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,
करनि बिवरत चतुर सरस सुषमा जनी॥
ललित अहि सिसु निकर मनहुँ ससि सन समर,
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी॥

राम के बन जाने के समय कौशल्या का विलाप सुनकर कौन-सा हृदय है, जो न रो देगा?—

राम! हौं कौन जतन घर रहिहौं?
बार बार भरि अंक गोद लै
ललन कौन सों कहिहौं?

इहि आँगन बिहरत मेरे बारे !
तुम जो संग सिसु लीन्हें।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत
बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें ॥

जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे
सुनि सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनति हौं,
मो तें कौन अभागी ? ॥

जुग सम निमिष जाहिं रघुनन्दन
बदन कमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि,
कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥

तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि
देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि
आवन कह्यो मुरारी ॥

राम के बन जाने पर कौशल्या की जो दशा हुई, उसके वर्णन के बहाने मातृहीन तुलसीदास ने इस पद में प्रत्येक माता का हृदय काढ़कर रख दिया है।—

जननी निरखति बान धनुहियाँ।
बार बार उर नैननि लावति
प्रभुजू की ललित पनहियाँ ॥

कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति
कहि प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात ! बलि मातु बदन पर,
अनुज सखा सब द्वारे ॥

कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ
जाहु भूप पहँ भैया।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै
गई निछावरि मैया ॥"

कबहुँ समुझि बनगवन राम को
रहि चकि चित्र लिखी सी।
तुलसिदास वह समय कहे तें
लागति प्रीति सिखी सी ॥

*   *

जब जब भवन बिलोकति सूनो।

तब तब बिकल होति कौसल्या
दिन दिन प्रति दुख दूनो ॥

को अब प्रात कलेऊ माँगत
रूठि चलैगो, माई!
स्याम तामरस नैन स्रवत जल
काहि लेउँ उर लाई!

जीवों तौ बिपति सहौं निसि बासर
मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम को
बदन न देखन पायो ॥

तुलसिदास यह दुसह दसा
अति दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु
सोकजनित रुज मेरो?

दोहावली

दोहावली ५७३ दोहों का एक संग्रह है। इन दोहों में ८५ दोहे मानस के, ३५ दोहे रामाज्ञा-प्रश्न के, १३२ दोहे सतसई के और ७ दोहे वैराग्य-संदीपिनी के मिले हुये हैं। इससे यह स्वतन्त्र-ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। तुलसीदास की अन्य अवलियों की तरह यह सात कांडों में विभाजित भी नहीं है। पर सतसई से इसका प्रचार अधिक है। इसके कुछ चुने हुये दोहे यहाँ दिये जाते हैं।—

रामहिं सुमिरत, रन भिरत,
देत परत गुरु पाय।
तुलसी जिन्हहिं न पुलक तनु,
ते जग जीवत जाय॥ १॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि,
पाँवर पूजहिं भूत।
अन्त फजीहत होहिंगे,
गनिका के से पूत॥ २॥

कहा बिभीषन लै मिल्यो,
कहा बिगारयो बालि ?।
तुलसी प्रभु सरनागतहि,
सब दिन आए पालि॥ ३॥

बलकल भूषन, फल असन,
तृन सज्या, द्रुम प्रीति।
तिन्ह समयन लङ्का दई,
यह रघुबर की रीति॥ ४॥

सभा सभासद निरखि पट,
पकरि उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहों,
बसन बेष जदुनाथ ॥ ५ ॥

कहिबे कहँ रसना रची,
सुनिबे कहँ किय कान ।
करिबे कहँ चित हित सहित,
परमारथहि सुजान ॥ ६ ॥

केहि मग प्रबिसति जाति केहि,
कहु दर्पन में छाँह ।
तुलसी त्यों जग जीव गति,
करी जीव के नाँह ॥ ७ ॥

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै,
कहत करत सब कोइ ।
तुलसी मीन पुनीत ते,
त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥ ८ ॥

सदा न जे सुमिरत रहहिं,
मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
तेपै तिन्हके जाहिं घर,
जिनके हिये न नैन ॥ ९ ॥

उत्तम मध्यम नीच गति,
पाहन सिकता पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की,
बैर बितिक्रम जानि ॥१०॥

जासु भरोसे सोइये,
राखि गोद में सीस ।
तुलसी तासु कुचाल तें,
रखवारो जगदीस ॥ ११ ॥

कौरव पांडव जानिये,
क्रोध छमा के सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके,
सयो सँहारे भीम ॥ १२ ॥

रोष न रसना खोलिये,
बरु खोलिय तरवारि ।
सुनत मधुर परिनाम हित,
बोलिय बचन बिचारि ॥ १३ ॥

पेट न फूलत बिनु कहे,
कहत न लागै देर ।
सुमति बिचारे बोलिये,
समुझि कुफेर सुफेर ॥ १४ ॥

राम लषन बिजयी भये,
बनहु गरीबनिवाज ।
मुखर बालि रावन गये,
घर ही सहित समाज ॥ १५ ॥

अतुलित महिमा बेद की,
तुलसी किये बिचार ।
जो निंदत निंदित भयो,
बिदित बुद्ध अवतार ॥ १६ ॥

तूठहिं निज रुचि काज करि,
रूठहिं काज बिगारि ।
तीय, तनय, सेवक, सखा,
मन के कंटक चारि ॥ १७ ॥

बिनु आँखिन की पानही,
पहिचानत लखि पाय ।
चारि नयन के नारि नर,
सूझत मीचु न माय ॥ १८ ॥

लही आँखि कब आँधरे,
बाँझ पूत कब ल्याइ ।
कब कोढ़ी काया लही,
जग बहराइच जाइ ॥ १९ ॥

तुलसी निज करतूति बिनु,
मुकत जात जब कोइ ।
गयो अजामिल लोक हरि,
नाम सक्यो नहिं धोइ ॥ २० ॥

तुलसी-सतसई

तुलसी-सतसई में तुलसीदास के सात सौ सैंतालीस दोहे हैं । इसका रचना-काल इसी सतसई में इस प्रकार दिया हुआ है ।—

अहि[२] रसना[४] थन-धेनु[६] रस, गनपति-द्विज[१] गुरुबार ।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार ॥

इसके अनुसार सतसई सं० १६४२, वैशाख शुक्ल ९ (सीता-जन्म की तिथि) गुरुवार को समाप्त हुई थी। पर इसे महा-

महोपाध्याय स्व० पं० सुधाकर द्विवेदी ठीक नहीं मानते।—

सतसैया अवतार बार तिथि संबत माहीं।
गनक कहहिं गनि सकल करन पर आवत नाहीं॥

(**तुलसी-सुधाकर, पृ० ७**)

पं० सुधाकर द्विवेदी इस सतसई को गाजीपुर-निवासी किसी कायस्थ तुलसीदास की रचना मानते हैं।

पंडित बन्दन पाठक ने 'रामलला-नहछू' की टिप्पणी में तुलसीदास के बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।—

और बड़े षट् ग्रन्थ के, टीका रचे सुजान।
अल्प ग्रंथ षट अल्पमति, विरचत बन्दन ज्ञान॥

पंडित रामगुलाम द्विवेदी (सं० १८८८) ने तुलसीदास के एक दोहा-बन्ध ग्रन्थ की सूचना दी है। पर दोहा-बन्ध से उनका अभिप्राय 'दोहावली' से है? या 'तुलसी-सतसई' से? यह विवादास्पद है।

सतसई में सात सर्ग हैं। इसकी भाषा प्रौढ़ नहीं है। जिस प्रकार तुलसीदास के पूर्ववर्त्ती कवि कबीर और समसामयिक सूरदास ने दृष्टिकूट लिखे हैं, उसी प्रकार के दुरूह दृष्टिकूट इस सतसई में भी हैं। संभवतः इसके दोहे 'मानस' की रचना के पहले के हैं, जब तुलसीदास अपने पहले के या समकालीन अन्य कवियों की भाँति लोकमनोरंजन के लिये अनेक विषयों पर कविता किया करते थे। जैसे सूरदास ने लिखा है।—

मंदिर अरध आवन हरि बदि गये हरि अहार टरि जात।

'घर का आधा पाख अर्थात् एक पखवाड़े में लौट आने के लिये हरि कह गये थे,' पर हरि अर्थात् सिंह का आहार मांस या हरि अर्थात् सूर्य का आहार वर्ष बीत रहा है।'

इसी प्रकार सतसईकार ने भी शब्दों और उनके अर्थों पर युक्तियाँ भिड़ाई हैं ।—

हंस कमल बिच बरन जुग , तुलसी अति प्रिय जाहि ।
तीन लोक महँ जो भजै , लहै तासु फल ताहि ॥

'हंस अर्थात् मराल के बीच का अक्षर रा और कमल के बीच का अक्षर म अर्थात् 'राम' को जो भजेगा, इत्यादि ।'

यहाँ तुलसी-सतसई के कुछ दोहे दिये जा रहे हैं ।—

चतुराई चूल्हे परै,
जम गहि ज्ञानहिं खाय ।
तुलसी प्रेम न राम पद,
सब जर मूल नसाय ॥ १ ॥

रावन रावन को हन्यो,
दोष राम कहँ नाहिं ।
निजहित अनहित देखु किन,
तुलसी आपहि माहिं ॥ २ ॥

रहै जहाँ बिचरै तहाँ,
कमी कहूँ कुछ नाहिं ।
तुलसी तहँ आनन्द सँग,
जात जथा सँग छाँहिं ॥ ३ ॥

कवितावली

तुलसीदास के ग्रन्थों में रामचरितमानस के बाद कवितावली ही को एक प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिये । केवल इसीलिये नहीं कि उसमें नवों रसों में उच्च-कोटि की कविता है, बल्कि इसलिये

भी कि उससे तुलसीदास की जीवनी और तत्कालीन अन्य घटनाओं पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। कवितावली में हम तुलसीदास की दीन-दशा का जितना ही गहरा अध्ययन करते हैं, उतना ही उनका गौरव बढ़ता जाता है। राम के लिये रामचरित-मानस जितना आवश्यक है, उतना ही तुलसीदास के लिये कवितावली है।

कवितावली सात कांडों में विभक्त है। उसके प्रत्येक कांड की छंद-संख्या इस प्रकार है।—

बाल-कांड	२२
अयोध्या-कांड	२८
अरण्य-कांड	१
किष्किंधा-कांड	१
सुन्दर-कांड	३२
लंका-कांड	५८
उत्तर-कांड (हनुमान-बाहुक-सहित)	२२७
	३६९

इसके अरण्य और किष्किंधा-कांड में एक ही एक छंद हैं। संभवतः इन कांडों में और भी छंद रहे होंगे; क्योंकि बहुत-सी घटनाओं के छूट जाने से कथा की शृङ्खला नहीं बँधती। पर जान पड़ता है, इनके जिन छन्दों के भाव तुलसीदास ने मानस में ले लिये, उन्हें उन्होंने कवितावली में से निकाल दिया।

कवितावली में तुलसीदास की छात्रावस्था से लेकर उनके जीवन के अंत समय तक की रचनायें, जो समय-समय पर होती रहीं, सम्मिलित हैं। इससे इसे उनकी कवित्व-शक्ति के विकास का एक मनोरंजक इतिहास भी कहना चाहिये। जो रचनायें तुलसीदास के

प्रारम्भिक दिनों की हैं, उनमें शब्दाडम्बर ख़ूब है। पर जैसे-जैसे कवि का अनुभव बढ़ता गया, और उसकी कवित्व-शक्ति विकसित होती गई, वैसे-वैसे अर्थ-गांभीर्य बढ़ता गया है। पहले के छन्द समस्या-पूर्त्ति की तरह लिखे गये जान पड़ते हैं। उनमें तोड़े-मरोड़े शब्दों में भावों को फँसाने का प्रयास किया गया-सा दिखाई पड़ता है। पर आगे के छन्दों में कवि की शब्द-संकीर्णता जाती रही थी और वह धारा-प्रवाह की भाँति मन के भावों को इच्छित शब्दों में प्रकट करने में समर्थ हो चुका था। उत्तर-कांड का अधिकांश कवि की जीवनी से सम्बन्ध रखता है।

यह नहीं कहा जा सकता कि कवितावली का सम्पादन तुलसीदास ने स्वयं किया था या उनके बाद किसी अन्य ने किया; पर यह निश्चय जान पड़ता है कि कवितावली में जितने छन्द इस समय उपलब्ध हैं, उनमें दो तीन को छोड़कर शेष सब तुलसीदास ही के रचे हुये होंगे। एक सवैया जो कवितावली में मिलता है, 'शिवसिंह सरोज' में किसी भृङ्ग कवि के नाम से छपा है।—

जब नैनन प्रीति ठई ठग स्याम
सों स्यानी सखी हठि हैं। बरजी ॥
नहिं जान्यों वियोग सो रोग है आगे
झुकी तब हैं।, तेहि सों तरजी ॥
अब देह भई पट नेह के घाले
सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी ॥
ब्रजराज कुमार बिना सुनु, भृंग !
अनंग भयो जिय को गरजी ॥

यहाँ कवितावली के कुछ छन्द उदाहरण के तौर पर दिये जाते हैं।—

देखिये, राम के धनुष तोड़ने का वर्णन तुलसीदास ने कैसे ज़ोरदार शब्दों में किया है !—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयन्द लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुर विमान हिमभानु, भानु संघटित परस्पर॥
चौंके बिरञ्चि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्मण्ड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिवधनु दल्यो।

राम के साथ सीता विवाह-मंडप में बैठी हैं। राम का प्रतिबिम्ब सीता के कंकण में जड़े हुये नग में पड़ रहा है। सीता उसे ध्यान से देख रही हैं। उस दृश्य का वर्णन तुलसीदास ने बड़ी ही सरसता से किया है।—

दूलह श्री रघुनाथ बने,
दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि,
बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकि,
कङ्कन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई,
कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

राम बन को जा रहे हैं। सीता और लक्ष्मण साथ हैं। कोमलांगिनी सीता दो ही क़दम चलने पर थक जाती हैं और पूछने लगती हैं—अभी और कितना चलना है ? पर्ण-कुटी कहाँ बनाओगे ? सीता की आतुरता देखकर राम की आँखों से आँसू

चू पड़ते हैं। कवि ने यहाँ बड़ा ही कौशल दिखलाया है। वह राम के मुख से कुछ उत्तर दिलवाता, तो उसमें वह रस नहीं आता, जो राम के आँसुओं में से उसने निकाला है।—

पुर तें निकसी रघुबीर बधू
धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की
पटु सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक
पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै"?
तिय की लखि आतुरता पिय की
अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

हनुमान ने लंका में आग लगा दी। उसके वर्णन में तुलसीदास ने लंका-निवासियों की जो व्याकुलता प्रकट की है, वह उनकी बहुज्ञता का एक सुन्दर प्रमाण है।—

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे।
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे;"?
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"बारबार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे"॥

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिये।
अध ऊर्द्ध बानर, बिदिसि दिसि बानर है
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिये।

मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोऊ को किये ?
'लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानों
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिये ॥

हनुमान के युद्ध का वर्णन तुलसीदास ने बड़े वीरता-व्यञ्जक शब्दों में किया है।—

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ वाजि सों बाजि मर्दि गजराज करक्खत।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत।
लंगूर लपेटत पटकि भट
'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवन नंदन अटल
जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने वीभत्स-रस को कैसा सचित्र कर दिया है।—

लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ
मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर, कुञ्जर करारे भारे
कूल तें समूल बाजि बिटप परत हैं।
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात
काक कंक बालक कोलाहल करत हैं॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतिन की सेल्ही बाँधे
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुङ्ग झुण्ड झुण्ड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठीं सो समरसरि खोरि कै।
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥

राम के कर की विशेषता बतलाने के लिये तुलसीदास ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में यह रूपक बाँधा है।—

कनक-कुधर केदार बीज सुन्दर सुरमनिवर।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर।
तीरथपति अंकुर सरूप यच्छेस रच्छ तेहि।
मरकतमय साखा सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि।
कैवल्य सकल फल कलपतरु
सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि
तौ कि होहि तुव कर सरिस॥

तुलसीदास के नीति के ये वचन अनुभव के प्रमाण से प्रमाणित हैं।—

जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय वासना न छंडै।
जाय धनिक बिनु दान जाय निर्धन बिनु धर्महिं।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं।

सुत जाय मातु पितु भक्ति बिनु
तिय सो जाइ जेहि पति न हित।
सब जाय दास तुलसी कहैं
जौ न राम पद नेह नित॥

को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहिं कीन्हों?
को न लोभ दृढ़ फन्द बाँधि त्रासन करि दीन्हों?
कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि नयन-सर?
लोचन जुत नहिं अन्ध भयो श्री पाय कौन नर?
सुर नाग लोक महि मण्डलहु
को जु मोह कीन्हों जय न?
कह तुलसिदास सो ऊबरै
जेहि राख राम राजिवनयन॥

अपने समय के मिथ्याडम्बरवाले भक्तों का सच्चा चित्र तुलसीदास ने इन शब्दों में खींचा है। आजकल भी ऐसे भक्तों की कमी नहीं है।—

भेष सुबनाइ सुचि बचन कहैं चुवाइ
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह
मुख कहियत गति राम ही के नाम की।
प्रगटै उपासना दुरावैं दुरबासनाहिं
मानस निवासभूमि लोभ मोह काम की।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की!

प्रह्लाद के प्रेम का वर्णन तुलसीदास ने बड़ी ही भावुकता से किया है।—

आरतपालु कृपालु जो राम
जेही सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नाम प्रताप महा महिमा
अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।
सेवक एक तें एक अनेक
भये तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रहलादहि को
जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े॥

अन्तर्जामिहु तें बड़ बाहरजामि
हैं राम, जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों,
बालक बोलनि कान किये तें।
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे
की न बावरि बात बिये तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे
प्रभु पाहन तें, न हिये तें॥

शब्दालङ्कार की शोभा इस छन्द में देखिये।—

भूतनाथ भय हरन, भीम भय भवन भूमिधर।
भानुमन्त भगवन्त, भूति भूषन भुजङ्गवर।
भव्य भाव वल्लभ, भवेस भवभार विभंजन।
भूरि भोग भैरव कुजोग गञ्जन जन रञ्जन॥
भारती वदन, विषअदन सिव
ससि पतङ्ग पावक नयन।
कह तुलसिदास किन भजसि मन
भद्रसदन मर्दनमयन॥

पार्वती-मङ्गल

पार्वती-मङ्गल की रचना 'जय' नामक संवत् में हुई, जैसा कि पार्वती-मङ्गल के पाँचवें छन्द में तुलसीदास ने स्वयं लिखा है।

जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन।
अस्विनी बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥

संवत् १६४३ में फागुन सुदी पंचमी को बृहस्पतिवार पड़ा था और उस संवत् का नाम 'जय' था।

पार्वती-मङ्गल केवल १६४ छन्दों की एक पुस्तिका है; पर उसका एक भी छन्द शिथिल नहीं; उसकी एक भी पंक्ति भरती की नहीं; उसका एक भी शब्द स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता। ऐसे छोटे काव्य में कवि की यह बहुत बड़ी सफलता है।

पार्वती-मङ्गल और मानस के कथानक में अन्तर है। मानस में काम-दहन का एक लम्बा वर्णन है; पर पार्वती-मङ्गल में एक ही छन्द में उसका काम तमाम कर दिया गया है।—

वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ।
जय जग मद निदरेसि हर पायसि फर तेउ॥

मानस में शिव का विवाह उनके असली रूप ही में कराया गया है; पर पार्वती-मङ्गल में शिव ने अपना वेप बहुत सुन्दर बना लिया था।

पार्वती-मङ्गल में विवाह की अनेक रस्मों की भी चर्चा है, जो मानस में नहीं है। जैसे।—

मदनमत्त गजगवनि चलीं बर परिछन ॥

साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं ॥

दूलह दुलहिन गे तब हास अवासहिं ॥

जुवा खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहिं ॥

सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि ॥

पार्वती-मङ्गल की रचना तुलसीदास ने केवल स्त्री-समाज के कल्याण के लिये की है। सती-शिरोमणि पार्वती के आदर्श को वे प्रत्येक हिन्दू-गृहस्थ के घर में पहुँचा देने को अत्यन्त आतुर जान पड़ते थे। इसीसे उन्होंने पार्वती-मङ्गल की रचना भी ऐसे छन्द में की है, जो विवाह के अवसर पर गाया जाता है।

पार्वती-मंगल में तुलसीदास ने स्थान-स्थान पर उपमायें भी बड़ी अनोखी दी हैं। जैसे।—

साँच सनेह साँच रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ ॥

कहहु काह पटतरिअ गौरि गुन रूपहिँ।
सिंधु कहिअ केहि भाँति सरित सर कूपहिँ ॥

प्रेमपाट पट डोरि गौरि हर गुन मनि।
मंगलहार रचेउ कविमति मृगलोचनि ॥

भाषा, भाव, छन्द और प्रभाव सब प्रकार से यह छोटा-सा काव्य सर्वाङ्गसुन्दर और तुलसीदास-जैसे महाकवि की कीर्त्ति के अनुरूप ही है।

रामलला-नहछू

यह बीस छन्दों की तुलसीदास की सबसे छोटी रचना है। इसमें एक उप-संस्कार का वर्णन है, जो यज्ञोपवीत और विवाह

दोनों संस्कारों के साथ होता है। तुलसीदास ने इसके अन्त में लिखा भी है।—

उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मङ्गल गावहीं।
तुलसी सकल कल्यान ते नरनारि अनुदिन पावहीं॥

पर यह रामलला-नहछू मुख्यतः विवाह-संस्कार के साथ होनेवाले उप-संस्कार के लिये रचा गया है। क्योंकि इसमें कई ऐसे वर्णन मिलते हैं, जो यज्ञोपवीत-संस्कार के समय नहीं होते। जैसे।—

सोचति वदन सकोचति हीरा माँगन हो।
पनहि लिये कर सोभित सुन्दर आँगन हो॥

'यज्ञोपवीत' में जूता (पनही) नहीं पहना जाता; खड़ाऊँ पहना जाता है। और।—

नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो।
पदुम पराग मनि मानहुँ कोमल गातहिं हो॥

नख काटने की क्रिया भी प्रायः विवाह ही के अवसर पर होती है। 'नख काटना' यज्ञोपवीत-संस्कार का कोई विशेष अङ्ग नहीं है। तथा।—

गोद लिहे कौसिल्या बैठी रामहिं बर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥

इससे तो स्पष्ट ही है कि तुलसीदास ने यह नहछू दुलह के लिये लिखा है।

यज्ञोपवीत में स्त्रियों का वह जमघट नहीं होता, जो विवाह के 'नहछू' में होता है। 'रामलला-नहछू' में युवती और चटकीली-

मटकीली स्त्रियों के बन-ठनकर आने का बड़ा शृङ्गारिक वर्णन है।—

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो॥

अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो॥

रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो॥

दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बोरा हो॥

बतिया कै सुघर मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥

कटिकै छीनि बरिनिया छाता पानिहि हो।
चंद्रबदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो॥

नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥

'रामलला' का यह 'नहछू' तब का है, जब विवाहोपरांत सीता को लेकर राम अयोध्या आये हैं। उनका यह उप-संस्कार विवाह के बाद अयोध्या में हुआ था।

'नहछू' के वर्णनों में कहीं-कहीं शृङ्गार का खुला वर्णन है, जिससे कुछ विद्वज्जन अनुमान करते हैं कि यह तुलसीदास का रचा हुआ न होगा। पर वे यह भूल जाते हैं कि तुलसीदास कवि थे और उन्होंने इसे स्त्रियों के लिये लिखा है, न कि सन्तों के

लिये। जिस प्रसंग का जैसा वर्णन होना चाहिये, कवि ने उसे वैसा ही किया है। यही तो कवि की सफलता है। रामचरितमानस की रचना का उद्देश्य ही और है। उसमें विशुद्ध शृङ्गार ही की आवश्यकता है, क्योंकि वह मनोरंजन के लिये नहीं, मनुष्य-जीवन में कल्याण-मार्ग की भावना उद्दीप्त करने के लिये लिखा गया है। और विनय-पत्रिका में तो शृङ्गार की आवश्यकता ही नहीं है।

इसका छन्द 'सोहर' है। यह छंद पुत्रोत्पत्ति, यज्ञोपवीत और विवाह के प्रसंगों के लिये नारी-समाज में प्रचलित है। प्रसङ्ग के अनुसार इसके छन्द और गाने के स्वर में भी विभिन्नता होती है।

इसकी कविता में शिथिलता नहीं है और इसके वर्णनों को देखते हुये यह तुलसीदास के विस्तृत व्यावहारिक ज्ञान का एक सुन्दर प्रमाण है।

जानकी-मंगल

इसकी रचना वाल्मीक-रामायण के आधार पर हुई है। इससे मानस और इसकी कथा में कहीं-कहीं अन्तर आगया है। जैसे—'मानस' में परशुराम का आगमन धनुर्भंग के अवसर पर दिखाया गया है, पर जानकी-मंगल में विवाहोपरांत, विदाई के बाद, परशुराम आये हैं, जैसा वाल्मीक-रामायण में है। जानकी-मंगल में फुलवाड़ी में राम-सीता का प्रथम दर्शन भी नहीं है। 'मानस' में इसका बहुत ही सरस वर्णन है।

जानकी-मंगल में १९२ मंगल छन्द और २४ अन्य छन्द हैं। इसमें राम-जानकी के विवाह का वर्णन है। इसमें रचना का

समय नहीं दिया हुआ है, पर यह रामचरित-मानस के पहले ही रचा जा चुका होगा; क्योंकि इसकी और मानस की कथाओं में मौलिक अंतर है। मानस के बाद कथा-भेद करना तुलसीदास जैसे मर्यादा-बद्ध कवि के लिये संभव नहीं जान पड़ता।

'जानकी-मङ्गल' की कविता में कहीं शैथिल्य नहीं दिखाई पड़ता। भाषा और भाव दोनों में तुलसीदास ने अपना मस्तिष्क और हृदय ढाल दिया है। कुछ उदाहरण लीजिये।--

लागि झरोखन झाँकहि भूपति भामिनि।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि॥

नृप रानी पुरलोग राम तन चितवहिं।
मंजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं॥

राम सीय बय समौ सुभाय सुहावन।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन॥

सीय सनेह सकुच बस पिय तन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ॥

लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फंद जनु चंदहि बनज फँदावत॥

बर बिराज मण्डप महँ बिस्व बिमोहइ।
ऋतु बसन्त बन मध्य मदन जनु सोहइ॥

श्रीकृष्ण-गीतावली

श्रीकृष्ण-गीतावली में भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों में श्रीकृष्ण के चरित-सम्बन्धी ६१ पद हैं। पदों की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। वर्णन-शैली मँजी-मँजाई और एक सत्कवि की कीर्ति के अनुकूल ही है।

रूपक बाँधने में तुलसीदास अद्वितीय हैं। 'मानस' में उन्होंने रूपकों की पंक्ति की पंक्ति खड़ी कर दी है। श्रीकृष्ण-गीतावली में भी वे अपना वह सहज रंग दिखाकर ही रहे।—

जब तें ब्रज तजि गये कन्हाई।
तब तें बिरह रवि उदित एक रस
सखि बिछुरनि वृष पाई॥
घटत न तेज चलत नाहिंन रथ
रह्यो उर नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूपरासि सोचहिं सुठि
सुधि सब की बिसराई॥
भयो सोक भय कोक कोकनद
भ्रम भ्रमरनि सुखदाई।
चित चकोर, मन मोर कुमुद मुद
सकल विकल अधिकाई॥
तनु तड़ाग बल बारि सूखन लाग्यो
परी कुरूपता काई।
प्रान मीन दिन दीन दूबरे
दसा दुसह अब आई॥
तुलसीदास मनोरथ मन मृग
मरत जहाँ तहँ धाई।
राम-स्याम सावन भादों बिनु
जिय की जरनि न जाई॥

बरवै-रामायण

अकबर के प्रधान मन्त्री अब्दुर्रहीम खानखाना ने बरवै-छन्द में नायिका-भेद पर एक पुस्तक लिखी थी। कहा जाता है

कि तुलसीदास ने उसके छन्द को पसन्द करके उसी में बरवै-रामायण लिखा। पता नहीं, इस कथन में कितना तथ्य है। मेरी आत्मा तो इसे कभी स्वीकार नहीं करती कि तुलसीदास कभी रहीम से प्रभावित हुये होंगे

बरवै छन्द के नाम के साथ भी एक कथा लगी हुई है। कहा जाता है कि एक बार रहीम का कोई नौकर छुट्टी पर गया। उसकी नवविवाहिता स्त्री के साथ उसकी छुट्टी के दिन चुपचाप निकल गये। इच्छा न रहने पर भी, नौकरी के भय से, उसे घर त्यागना ही पड़ा। जाते समय उसकी स्त्री ने यह छन्द लिखकर उसे रहीम को देने के लिए दिया।—

प्रेम प्रीति कौ बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजौ मुरझि न जाय॥

पति ने पत्नी की चिट्ठी अपने स्वामी को दी। रस से लह लहाता हुआ एक नवीन छन्द पाकर रहीम का कवि-हृदय फड़क ही तो उठा। उन्होंने नौकर को एक लम्बी छुट्टी दी, उसकी स्त्री के लिये बहुमूल्य उपहार भेजे और उसी छन्द में उन्होंने एक नायिका-भेद भी लिख डाला। उसके पहले चरण में आया हुआ 'बिरवा' शब्द उन्हें इतना प्रिय लगा कि छन्द का नाम ही उन्होंने 'बिरवा' रख दिया जो बाद को 'बरवै' हो गया।

पर यह छन्द रहीम के लिए नया हो सकता था, तुलसीदास के लिये नया नहीं रहा होगा। यह छन्द बिहार के ग्रामगीतों में खूब चलता है। बिहार का एक ग्रामगीत लगभग इन्हीं शब्दों में यहाँ दिया जाता है।—

प्रेम पिरित रस बिरवा रे,
तुम पिय चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजौ,
देखेउ मुरझि न जाय।
जेठा छुवावहुँ आपन बँगला रे,
देवरा छुवावहुँ चौपारि।
मोरा मँदिलवा केन छुवइहइँ,
जेकर पियवा बिदेस॥

इसका तो एक राग ही जुदा है। संगीत के धुरन्धर ज्ञाता तुलसीदास इस राग को न जानते रहे हों, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। तुलसीदास बिहार की तरफ आते-जाते भी बहुत थे, वहीं से उन्होंने यह छन्द लिया होगा।

बरवै-रामायण की जो प्रति इस समय उपलब्ध है, उसमें सात कांड और दो-दो पंक्तियों का एक-एक छन्द मानकर कुल ६९ छन्द हैं। जन-श्रुति के अनुसार यह रामायण बहुत बड़ा था, पर अब सम्पूर्ण नहीं मिलता। इसकी एक हस्त-लिखित प्रति जौनपुर के राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे के पुस्तकालय में है। मैंने उसे देखा है। उसमें मुझे कुछ अधिक छन्द मिले।

बरवै-रामायण के छन्दों में तुलसीदास ने बहुत मधुर रस भरा है। राग-सहित गाने में उसकी सरसता और भी बढ़ जाती। यहाँ उसके कुछ छन्द दिये जाते हैं।—

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अङ्ग सखि कोमल कनक कठोर॥

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह बिगसाइ॥

चंपक हरवा अँग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ॥

सिय तुव अंग रङ्ग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चम्पक होत॥

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन॥

वेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ये अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुताइ॥

विनय-पत्रिका

रामचरितमानस के बाद विनय-पत्रिका ही तुलसीदास की सब से बड़ी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें कुल २७६ पद हैं। सभी पदों का सम्बन्ध संगीत से है और वे अनेक राग-रागिनियों में विभाजित हैं।

यह तुलसीदास का अन्तिम ग्रन्थ है। इससे यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते उनके भाव, अनुभव और कवित्त्व का जितना विकास हो चुका था, सबका लाभ इस ग्रन्थ को मिला है। इस ग्रन्थ में तुलसीदास ने मनोभावों को सुललित, सुबोध और सरल शब्दों में

व्यक्त करने की अद्भुत कला दिखलाई है। तुलसीदास को इस ग्रन्थ के पद लिखने में जैसी सफलता मिली है, उस अनुपात से वह उनके और किसी ग्रन्थ में नहीं है। मानस में, खासकर अयोध्याकांड में, उनकी कवित्त्व-शक्ति सावन-भादों की नदी की भाँति उमड़ी हुई दिखाई पड़ती है। पर आरण्य, किष्किंधा, सुन्दर और लंका कांडों में वह घटते-घटते जेठ-बैसाख की नदी की तरह छिछली होगई है। कहीं-कहीं उसमें गड्ढे हैं, जिनमें कुछ अधिक जल जमा हुआ मिलता ज़रूर है। पर विनय-पत्रिका में आदि से अन्त तक कवि की रस-धारा एक-सी प्रवाहित है; उसमें उसके प्रचुर ज्ञान, गम्भीर अनुभव, भाषा और भाव पर उसके अबाध अधिकार का रोचक इतिहास कमल की तरह सर्वत्र विकसित मिलता है।

विनय-पत्रिका में तुलसीदास ने प्रत्येक पद में मानव-जीवन को कल्याण की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है। लोक-हित की ऐसी प्रबल प्रेरणा हिन्दी के अन्य किसी कवि के अन्तःकरण में अबतक कभी जाग्रत नहीं हुई।

तुलसी-साहित्य के परम मर्मज्ञ काशी-निवासी श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के एक लेख से विदित होता है कि रामनगर (काशी) में चौधुरी छुन्नीसिंहजी के पास रामगीतावली की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है, जो संवत् १६६६ की है। उसमें केवल १७५ पद हैं। उसके अन्तिम पत्रे के अन्त में यह पाठ है।—

'इति श्रीतुलसीदास विरचित············ (पढ़ा नहीं जाता) वली समाप्त'

यदि रघुपतिभक्तिर्मुक्तिदा प्रेप्सते सा
सकलकलुषहर्त्री सेवनीया प्रयासात्।

रामचरितमानस

तुलसीदास की सम्पूर्ण रचनाओं में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और बृहत्काय रचना रामचरितमानस है। यह एक ऐसा महाकाव्य है, जिसने तुलसीदास को अमर कर दिया है। इसकी रचना कवि ने 'अवध' में बैठकर की थी।—

राम धामदा पुरी सुहावनि।
लोक समस्त विदित जग पावनि॥

*　　*　　*

सब बिधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि-प्रद मंगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा।
सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

तुलसीदास ने अपने काव्य का नाम 'रामचरितमानस' रक्खा।—

'रामचरितमानस' यहि नामा।
सुनत स्रवन पाइय बिस्रामा॥

काव्य भर में यह नाम कई बार आया है, और कई स्थानों में मानस के बदले 'सर' शब्द भी आया है।—

रामचरितमानस मुनि भावन।
बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥

तातें रामचरित मानस बर।
धरेउ नाम हिअ हेरि हरषि हर॥

संभु प्रसाद सुमति हिअ हुलसी।
रामचरितमानस कबि तुलसी॥

सुनु सुभ कथा भवानि,
रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुण्डि बखानि,
सुना बिहगनायक गरुड़॥

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी।
रामचरित-सर कहेसि बखानी॥

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं
भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसार-पतङ्ग-घोर-किरणै
र्दह्यन्ति नो मानवाः॥

पर वाल्मीकि और अध्यात्म रामायणों के कारण लोग इसे भी रामायण कहने लगे।

तुलसीदास ने मानस का रचना-काल यह दिया है।—

संबत सोरह सै इकतीसा।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥

नौमी भौमवार मधु मासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि संवत् १६३१ में, चैत्र की नवमी को, जो मङ्गलवार को पड़ी थी, अयोध्या में रामचरित-मानस का प्रकाश हुआ। पर यहाँ यह सन्देह उठ खड़ा होता है कि उपर्युक्त सूचना तुलसीदास ने बालकांड में ७ श्लोक, १० सोरठे, ३२८ चौपाइयाँ, ४४ दोहे और १ छन्द लिख लेने के

बाद दी है। इससे यह तो मान ही लेना चाहिये कि तुलसीदास ने उस दिन कम से कम उतने छन्द अवश्य बना डाले थे। यद्यपि तुलसीदास-जैसे प्रतिभाशाली कवि के लिये यह असम्भव नहीं; पर मुझे सन्देह है कि नवमी ही को उन्होंने उतना लिख लिया होगा। रामनवमी का उत्सव भी तो बाधक हुआ होगा।—

जेहि दिन रामजनम स्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

जनम महोत्सव रचहिँ सुजाना।
करहिँ राम कल कीरति गाना॥

रामचरितमानस का बहिरङ्ग

तुलसीदास ने अपने काव्य की तुलना मानस (सरोवर) से की है। उन्होंने दोनों के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग की समता दिखलाकर बड़ा सुन्दर रूपक बाँधा है। जिस प्रकार मानस (सरोवर) में चार घाट हैं, वैसे ही रामचरितमानस में चार संवाद हैं।—

सुठि सुन्दर संबाद बर,
बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभगसर,
घाट मनोहर चारि॥

वे सुन्दर संवाद कौन-कौन-से हैं? पहला शिव-पार्वती का; दूसरा याज्ञवल्क्य-भरद्वाज का; तीसरा काकभुशुण्डि-गरुड़ का और चौथा गोसाईं (तुलसीदास) और भक्तों का। यहाँ एक ही बात विचारणीय है कि प्रथम तीन संवादों में तो श्रोता-वक्ता दोनों हैं, पर चौथे संवाद में केवल वक्ता ही का नाम प्रकट है; श्रोता या श्रोताओं की हमें अलग से कल्पना करनी पड़ेगी, या तो हम

तुलसीदास के मन को श्रोता मान लें, या समस्त कल्याणेच्छुक भक्त जनों को। तुलसीदास ने सुजनों को कथा सुनने के लिये आह्वान भी किया है।—

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई।
सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

उन्होंने रामचरितमानस की रचना का जो उद्देश्य बताया है, उससे तो वे ही श्रोता और वक्ता दोनों सिद्ध होते हैं।—

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।
भाषानिबन्धमति मञ्जुलमातनोति॥

भाषाबन्ध करबि मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

उन्होंने अपनी आत्म-संतुष्टि के लिये रामचरितमानस की रचना 'भाषा' में की थी।

मानस (सरोवर) की सात सीढ़ियों के स्थान पर 'मानस' में सात कांड हैं।—

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।
ग्यान नयन निरखत मन माना॥

सम्पूर्ण काव्य में कथाओं की एक क्रम-बद्ध सूची तुलसीदास ने उत्तरकांड में काकभुशुंडि के मुख से दिला दी है। उसमें 'मानस' में वर्णित मुख्य-मुख्य कथाओं के नाम आ गये हैं। इससे बीच-बीच में क्षेपक मिलाने के शौकीनों के सामने एक रुकावट खड़ी होगई है।

तुलसीदास ने संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रन्थों से रत्न चुन-चुनकर अपने मानस को सजाया है। यह बात उन्होंने स्वयं मानस के प्रारम्भ में स्वीकार की है।—

नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यत्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ॥

इस स्पष्ट-वादिता से उनकी सहज सत्य-निष्ठा प्रकट होती है। विरले ही ग्रन्थकार इतने विनीत होते हैं।

वाल्मीकि और उनके रामायण के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखते हुये भी तुलसीदास ने अपने मानस के लिये कथा की मूल धारा अध्यात्म रामायण से ली है। पर उसका भी उन्होंने अन्धानुसरण नहीं किया है। अपने समय की लोक-रुचि का ध्यान रखते हुये उन्होंने कथाओं में बहुत हेर-फेर भी कर लिये हैं, और समालोचकों से बचने के लिये अनेक मार्ग भी खुले रक्खे हैं।—

राम कथा कै मिति जग नाहीं।

* * *

नाना भाँति राम अवतारा।
रामायन सत कोटि अपारा॥

* * *

कलप भेद हरि चरित सुहाये।
भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये॥

* * *

राम अनन्त अनन्त गुन,
अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिँ
जिनके बिमल बिचार॥

अनेक कल्पों में राम के अनेक अवतार हुये हैं। तुलसीदास ने जो कथायें दी हैं, उनमें से जो कथायें वाल्मीकि रामायण

में न मिलती हों, वे अन्य किसी कल्प की होंगी। 'विमल विचार' वाले लोगों को ऐसा ही मानना चाहिये।

कविता की दृष्टि से बालकांड का उत्तरार्द्ध, जहाँ से राम-जन्म का वर्णन प्रारम्भ हुआ है, बहुत ही उच्चकोटि का है।

अयोध्या-कांड का तो कहना ही क्या; वह एक अकेला ही तुलसीदास के महाकवित्व का प्रामाणिक साक्षी है। अरण्य और किष्किंधा-काड, जो बालकांड की समाप्ति के बाद लिखे गये हैं, कवित्व की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखते। उनमें वन, वन-वासी, ऋषि मुनि, ऋतु और सीताहरण के बाद राम की मनोव्यथा के सरस वर्णन अवश्य हैं; पर अयोध्याकांड वाले तुलसीदास से हम उतना ही पाकर संतुष्ट नहीं हो सकते।

सुन्दर और लंका-कांड भी जमकर नहीं लिखे गये। कवि की प्रतिभा उनमें थकी हुई-सी जान पड़ती है। उनमें बहुत ही थोड़े स्थानों पर कवि का चमत्कार दिखाई पड़ता है और वर्णन का एक बोझ-सा उतारा गया है।

उत्तरकांड सबके अन्त का है, और वह अन्त ही में लिखा भी गया है। उत्तरकांड में भक्त कवि फिर अपनी अन्तरात्मा के पास आ जाता है और अपनी पूरी प्रतिभा का उपयोग करता हुआ-सा दिखाई पड़ता है। यद्यपि यह कांड कविता की दृष्टि से साधारण है, पर भक्ति-सम्बन्धी विचारों के संकलन की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय है।

रामचरित या अयोध्या-कांड

मेरा अनुमान है कि तुलसीदास ने अयोध्या में पहले-पहल अयोध्या-कांड रचा था और उसका पहला नाम 'रामचरित' था। 'अवधपुरी यह चरित प्रकासा' से यही ध्वनि निकलती भी

है। 'प्रकासा' भूतकालिक क्रिया है, इसके अर्थ की रक्षा तभी हो सकती है, जब हम या तो कुल 'मानस' को या कम से कम उसके किसी अंश को, जो अयोध्याकांड ही हो सकता है, उक्त चौपाई के लिखे जाने के पूर्व का रचा हुआ प्रमाणित कर सकें। बाल-कांड का प्रारम्भिक अंश तो सम्पूर्ण 'मानस' की भूमिका-जैसा है, जो कम से कम अयोध्या-कांड या सम्पूर्ण मानस के बाद ही का रचा हुआ होना चाहिये।

अयोध्या-कांड को तुलसीदास ने पहले रचा था, इसके प्रमाण में मैं ये युक्तियाँ उपस्थित करता हूँ।—

१—अयोध्या-कांड में तुलसीदास ग्रन्थारम्भ की यह सूचना देते हैं।—

श्रीगुरु चरन सरोज रज , निज मन मुकुर सुधारि।
बरनौं रघुबर बिमल जसु , जो दायकु फल चारि॥

जब बाल-काण्ड में वे "करौं कथा हरिपद धरि सीसा" कह ही चुके थे, तब अयोध्या-काण्ड में फिर उसके दुहराने की क्या आवश्यकता थी? ऐसी प्रतिज्ञा उन्होंने आगे के और किसी कांड में नहीं की है।

२—अयोध्या-काण्ड का एक निश्चित स्वरूप है। उसमें साधारणतः आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पचीस दोहों पर एक छन्द तथा एक सोरठे का क्रम आदि से अन्त तक निभाया गया है। यद्यपि दो-तीन स्थानों पर सात-सात चौपाइयों पर भी दोहा आगया है, पर इससे यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि अयोध्या-काण्ड की सारी रचना अपने-आप, आठ-आठ चौपाइयों के बाद एक-एक दोहे की होगई है और उसमें कवि का बुद्धि-प्रयोग कारण नहीं हुआ है। निश्चय ही तुलसीदास ने अयोध्या-

काण्ड में दोहे, चौपाई, छन्द और सोरठे का क्रम जान-बूझकर निश्चित नियम के अनुसार रक्खा है । जहाँ-कहीं इस क्रम का विपर्यय हुआ है, वहाँ कवि की असावधानी भी कही जा सकती है, और यह भी हो सकता है कि वहाँ की चौपाई नकल करने-वालों से छूट गई होगी; जैसा राजापुर के अयोध्या-कांड में हुआ है, जिसे मैं आगे प्रमाणित करूँगा। अथवा तुलसीदास ने स्वयं ही उसे किसी कारण से अनावश्यक समझकर निकाल दिया हो और फिर उसकी स्थान-पूर्ति न की हो। जिस क्रम से अयोध्या-कांड की रचना हुई है, वह क्रम और किसी कांड में दिखाई नहीं पड़ता। इससे स्पष्ट है कि अयोध्या-कांड का प्रारम्भ और अन्त किसी ख़ास विचार-धारा में हुआ है, और वह विचार-धारा अयोध्या-कांड के बाद रचे जानेवाले कांडों में नहीं रही। और यदि यह कहा जाय कि अयोध्या-कांड तक पहुँचने पर उन्होंने नियम निर्धारित किये, तो अयोध्याकांड के आगे के कांडों में उनका पालन होना चाहिये था, जो नहीं किया गया है।

३—अयोध्या-कांड में उमा-महेश्वर-संवाद, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद, गरुड़-काकभुशुण्डि-संवाद और गोसाईं-संवाद की कहीं गन्ध भी नहीं है। उसकी रचना के समय कवि के हृदय में न 'मानस' और उसके 'घाट मनोहर चारि' की कल्पना थी, न राम की ईश्वरता प्रमाणित करने की धुन। उस समय वह केवल कवि था।

४—अयोध्या-कांड की रचना आदि से अन्त तक प्रौढ़ है। उसमें कवि की सजगता सर्वत्र पाई जाती है। उसमें कहीं शिथिलता नहीं आने पाई है। वह सर्वाङ्ग-सुन्दर और 'मानस' के शेष सब कांडों से श्रेष्ठ है। उसमें उत्तम कविता के सभी लक्षण वर्तमान हैं। रसों का परिपाक उसमें बड़ी सफलता के साथ हुआ

है, और विविध अलंकारों से उसकी सारी कविता जगमगा रही है। अयोध्या-काण्ड तुलसीदास की कविता का बसन्त है। उसमें कवि ने अपना पूर्ण विकास दिखलाने का प्रयत्न किया है। उसका ऐसा प्रयास और किसी कांड में नहीं मिलता। इससे वह सबसे पहले का रचा हुआ जान पड़ता है।

५—अयोध्या-कांड के प्रारम्भ में केवल शिव और राम की वन्दना है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि उस समय तक तुलसीदास केवल शिव और राम के उपासक थे, अन्य देवों पर आकर्पित नहीं हुये थे। 'रामचरितमानस' नाम से एक बड़ा काव्य रचकर उसे धर्म-ग्रन्थ का रूप देने का विचार उनके मन में उस समय तक जागा ही नहीं था। अयोध्या-कांड लिखे जाने के पश्चात् काशी आने पर साम्प्रदायिक विद्वेष को हटाने के लिये उनके मन में यह विचार उठा कि राम-चरित्र को इस प्रकार लिखें कि सब सम्प्रदायों और सब श्रेणियों के लोग उससे लाभ उठायें। यह विचार उठते ही उन्होंने अन्य देवों को सम्मिलित किया; प्राचीन संवादों से शृङ्खला जोड़ी; 'मानस' की कल्पना की; और इस प्रकार जब उन्होंने अपने लिये एक नया राजमार्ग खोल लिया, तब उसपर संवत् १६३१, चैत्र शुक्ला नवमी, मंगल-वार को उन्होंने चलना प्रारम्भ किया।

अयोध्या-कांड स्वतन्त्र रूप से उसके पहले रचा जा चुका था, और बाल-कांड की समाप्ति पर उसके आगे जोड़ लिया गया है। इतना ही नहीं, मैं तो यह भी अनुमान करता हूँ कि अयोध्या-कांड समाप्त करके तुलसीदास ने बाल-कांड का अन्तिम भाग पहले लिखा और फिर बाल-कांड की प्रारम्भिक भूमिका लिखकर उसे पूरा किया। अयोध्या-कांड में कवि की प्रतिभा का जैसा प्रकाश हमें दिखाई पड़ता है, वैसा ही नहीं, तो उससे थोड़ा ही

चीण, हम बाल-कांड में राम और सीता के प्रथम दर्शन से लेकर कांड के अन्त तक पाते हैं। अयोध्या-कांड में कवि ने आदि से अन्त तक केवल करुण-रस का अविराम प्रवाह बहाया है। काव्य के अन्य रसों की धारायें कवि के हृदय में प्रबल वेग से उमड़ रही थीं और निकलने का मार्ग चाहती थीं। कवि के लिये यह स्वाभाविक था कि वह शृङ्गार और हास्य-रस के लिये भी मार्ग देता। उसने राम के विवाह का प्रसंग लेकर उसके द्वारा अपनी स्वाभाविक सुरुचि और कवित्व-शक्ति का परिचय दिया भी है। इसके बाद तो वह कवि न रहकर भक्त और लोक-कल्याण की कामना के लिये आतुर बन गया है।

तुलसीदास की विचार-धारा में इतना बड़ा परिवर्तन कोई साधारण घटना नहीं है। वे कवि के रूप में हमारे सामने आते-आते भक्त और समाज-सुधारक का रूप धर लेते हैं। उस समय की उनकी मनोदशा की कल्पना भी हमें बड़ी ही मनोहर जान पड़ती है, जब वे जगत् के कल्याण का बीज बोने के लिये एक चतुर किसान की तरह खेत तैयार कर रहे थे। अयोध्या-कांड में कवि कहलाने की उनकी प्रबल इच्छा पद-पद पर झलक रही है; पर उसके उपरान्त ही उनकी वह यशोलिप्सा बुझ-सी जाती है और वे लोक-हित की मूर्त्ति के निर्माण में लग जाते हैं।

उन दिनों काशी में चार प्रमुख मतों का प्राबल्य था—शैव, संत, वेदान्ती और वैष्णव। इन्हीं चारों को क्रमशः शिव-पार्वती, काकभुशुंडि-गरुड़, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और गोसाईंजी के रूप में रखकर सब को एक केन्द्र में लाने के प्रयत्न में वह दत्तचित्त हो गये। पर अयोध्या-कांड में कवि की इस प्रकार की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती।

६—अयोध्या-कांड के बाद बाल-कांड की रचना हुई है।

इसके पक्ष में एक प्रबल प्रमाण और भी है। बाल-कांड के प्रारंभ में तुलसीदास बार-बार जो 'भाषा' के सम्बन्ध में अपनी सफ़ाई देते हैं और कहते हैं।—

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

उनके इस कथन में उस समय के बहुत से प्रश्न-कर्त्ताओं के इस प्रश्न का उत्तर भी है, जो पूछा करते थे कि संस्कृत में न लिखकर भाषा में क्यों लिखते हो? इस पर तुलसीदास इससे अधिक सहज उत्तर क्या दे सकते थे कि मैं अपने लिये लिख रहा हूँ, दूसरों के लिये नहीं? और इसमें भाषा-सम्बन्धी एतराज़ करने की जगह ही नहीं रह जाती। भाषा के बारे में आगे भी वे बार-बार कहते हैं।—

भाषाबंध करबि मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

भाषा भनिति मोरि मति भोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिँ खोरी॥

गिरा ग्राम्य सियराम जस,
गावहिँ सुनहिं सुजान।

जे प्राकृत कबि परम सयाने।
भाषा जिन हरि चरित बखाने॥

क्या ये तुलसीदास से बार-बार किये गये भाषा-सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं? और बाल-कांड के प्रारम्भ में जो उन्होंने निंदकों, कुतर्कियों और मज़ाक उड़ानेवाले खलों का लम्बा वर्णन किया है, क्या वह अकारण है? उनको ध्यान से पढ़िये, तो मालूम होगा कि तुलसीदास मानस के प्रारम्भ ही में केवल प्रसंग-

वश खलों की निंदा में प्रवृत्त नहीं हुये थे; बल्कि वे अपनी कविता पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देने के लिये विवश थे।

बाल-कांड की भूमिका पढ़ते-पढ़ते यह धारणा दृढ़ होने लगती है कि बाल-कांड के पहले वे कोई काव्य-ग्रन्थ ज़रूर लिख चुके थे, जिस पर उनके विपक्षियों ने तरह-तरह के आक्षेप किये थे। तुलसीदास ने उन सबको चुन-चुनकर उत्तर दिये हैं। वह काव्य अयोध्या-कांड के सिवा और क्या हो सकता है?

शृंखला इस तरह मिलाइये—अयोध्या में बैठकर उन्होंने अयोध्या-कांड की रचना की। फिर उसे लेकर वे काशी आये। काशी में उसका पठन-पाठन जारी हुआ। उसकी सरस कविता पर लोग मुग्ध हुये, उसकी चर्चा हुई और उसे आशातीत प्रसिद्धि मिली। भाषा-कविता का सम्मान बढ़ता देखकर संस्कृताभिमानी पंडित घबराये, उन्होंने उसपर आक्रमण किये और तब बदले में तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में उन्हें अमर कर दिया। विरोधियों के उपहास से उत्तेजित होकर ही उनको यह आत्म-श्लाघा करनी पड़ी थी।—

खल उपहास होइ हित मोरा।
काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥

और उसी वातावरण में उन्होंने अपने काव्य को धर्म-ग्रन्थ का रूप देने की ठानी और तब 'मानस' की सृष्टि हुई। 'कलकंठ' की कोई वाणी सुनने ही पर 'काकों' को उसे कठोर कहने का अवसर मिल सकता है, और वह वाणी अयोध्या-कांड की कविता थी।

७—अन्तिम दलील मेरी यह है कि अयोध्या में बैठकर सबसे पहले अयोध्या-कांड का प्रारम्भ करना एक राम-भक्त कवि

के लिये बिल्कुल स्वाभाविक था, और वैसा ही तुलसीदास ने किया भी ।

अयोध्या में बाल-कांड और अरण्य-कांड की रचना करके वे फिर काशी आये और काशी में रहकर उन्होंने किष्किंधा-कांड की रचना की। उसका पहला सोरठा इस बात का प्रमाण है।—

मुकुति जनम महि जानि,
ग्यान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस सम्भु भवानि,
सो कासी सेइय कस न॥

रामचरित या अयोध्याकांड का प्रारम्भ कब हुआ, यह अभी तक अज्ञात है; पर चैत्र में उन्होंने अयोध्या में 'मानस' का बाल-कांड प्रारम्भ किया था, ऐसा वे स्वयं लिख गये हैं। सम्भवतः वर्षा-ऋतु के आते-आते उन्होंने उसे समाप्त कर लिया होगा और फिर वे काशी आगये। बाल-कांड को शीघ्र रचने की उनको आवश्यकता भी थी; क्योंकि उनको अपनी अयोध्या-कांडवाली कविता पर किये गये आक्षेपों का उत्तर भी देना था, जो बाल-कांड के प्रारम्भ में दिया गया है।

और अयोध्या-कांड वहाँ पर समाप्त हुआ भी नहीं जान पड़ता, जहाँ इस समय समाप्त हुआ मिलता है; बल्कि वह अरण्य-कांड के इन छन्दों पर समाप्त हुआ होगा।—

कलिमल समन दमन दुख,
राम सुजसु सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिनहिं पर,
राम रहहिं अनुकूल॥

कठिन काल मल कोस,
धरम न ज्ञान न जोग जप ।
परिहरि सकल भरोस,
रामहिँ भजहिँ ते चतुर नर ॥

अयोध्या-कांड के अन्त का जो सोरठा है।—

भरत चरित करि नेमु,
तुलसी जो सादर सुनहिँ ।
सीय राम पद पेमु,
अवसि होइ भवरस बिरति ॥

इससे उक्त कांड की समाप्ति का बोध नहीं होता। इससे तो केवल भरत-चरित की समाप्ति जानी जाती है। अयोध्याकांड की समाप्ति तो सचमुच अरण्य-कांड के उक्त सोरठे पर मालूम होती है। और अरण्य-कांड के प्रारम्भ का जो यह सोरठा है।—

उमा राम गुन गूढ़,
पंडित मुनि पावहिं बिरति ।
पावहिं मोह बिमूढ़,
जे हरि बिमुख न धरम रति ॥

यह अरण्य-कांड को अयोध्या-कांड से अलग करते समय उसके प्रारम्भ के दो श्लोकों के साथ रचकर मिलाया गया होगा। क्योंकि इसमें शिव और पार्वती का संवाद आगया है, जो अयोध्या-कांड भर में कहीं नहीं है। इसके आगे।—

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई ।
मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥

से लेकर 'रामहिं भजहि ते चतुर नर' तक अयोध्या-कांड था।

'मानस' का शुद्ध पाठ

रामचरितमानस का जो स्वरूप इस समय प्राप्त है, वह तुलसीदास के समय में भी ऐसा ही था, यह कहना कठिन है। 'मानस' उनकी मृत्यु से ४६ वर्ष पहले रचा गया था। इतने लम्बे समय में कवि ने उसमें काफ़ी उलट-फेर किये होंगे। उसकी जितनी प्रतिलिपियाँ उनके जीवन-काल में और उनकी जानकारी में हुई होंगी, सब में कुछ न कुछ शब्दों और पाठों का परिवर्तन हुआ ही होगा। इससे जबतक उनके हाथ की अन्तिम संशोधित प्रति नहीं मिलती, तबतक किसी प्रति के लिये यह नहीं कहा जा सकता कि वही शुद्ध है।

तुलसीदास ने उत्तर-कांड के अन्त में 'मानस' की चौपाइयों की संख्या ५१०० बताई है।—

सत पञ्च चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरें।
दारुन अबिद्या पञ्च जनित बिकार श्रीरघुबर हरें॥

पंडित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयङ्क' में इसकी व्याख्या इस दोहे में इस प्रकार की है।—

एकावन सत सिद्ध है, चौपाई तहँ चारु।
छन्द सोरठा दोहरा, दस ऋतु दस हज्जारु॥

अर्थात् रामचरितमानस में ५१०० चौपाइयाँ हैं, और छन्द, सोरठे और दोहे मिलाकर कुल ६६६० छन्द हैं।

किन्तु इस समय रामचरितमानस की किसी शुद्ध कही जाने-वाली छपी प्रति में ५१०० चौपाइयाँ नहीं मिलतीं। या तो हमारी गिनती में दोष है, या तुलसीदास ने अपने बार-बार के संशोधनों

में जिन चौपाइयों को निकाल दिया था, उनकी पूर्ति उन्होंने नहीं की, और न 'सतपंच' का पाठ ही बदला। इससे वह कमी ज्यों की त्यों बनी रही। पर तुलसीदास के उक्त कथन से यह पता तो हमें चल ही गया कि 'मानस' की जिस प्रति में ५,१०० चौपाइयाँ हों, वही शुद्ध है। इस ५,१०० में क्षेपकों की चौपाइयाँ नहीं शामिल हैं; क्योंकि क्षेपकों की रचना तुलसीदास ने नहीं की थी।

यहाँ 'मानस' की कुछ छपी हुई प्रतियों की छन्द-संख्या दी जा रही है।—

मैंने नागरी-प्रचारिणी-सभा-द्वारा प्रकाशित 'मानस' को अधिकांश शुद्ध मानकर उस पर टीका लिखी है। उसकी छन्द-संख्या यह है।—

	कांडों के नाम	श्लोक	चौपाइयाँ	दोहे	सोरठे	अन्य छन्द
१	बाल-कांड	७	१४८४½	३६१	३४	६०
२	अयोध्या-कांड	३	१३०३	३१४	१३	१३
३	अरण्य-कांड	२	२६७	७१	६	२६
४	किष्किन्धा-कांड	२	१५२½	३१	३	३
५	सुन्दर-कांड	३	२६३	६२	२	६
६	लङ्का-कांड	३	५६०	१४८	६	६१
७	उत्तर-कांड	७	५८७½	२०६	१७	४२
	कुल	२७	४६४७½	११६३	८७	२१४ = ६१६८½

एक विस्तृत सूची स्व० पंडित महावीरप्रसादजी मालवीय ने स्वसम्पादित रामचरितमानस में दी है। उसके अनुसार छन्दों की संख्या इस प्रकार है।—

चौपाई	दोहे	सोरठे	छन्द
४६५८	११७३	८५	२६१ = ६१७७

श्रीरामदास गौड़ ने ५१०० चौपाइयों का एक नया ब्यौरा तैयार किया है। वह उन्हींके शब्दों में इस प्रकार है।—

"चौपाई का अर्थ ही है चार चरणोंवाली। पिङ्गल के अनुसार तो सभी लौकिक पद्य चार-चार चरण के होते हैं। चौपाई ही में यह विशेषता नहीं है। अब देखना यह है कि मानसकार ने क्या माना है और रूढ़ि क्या है? अन्त्यानुप्रास की दृष्टि से देखिये तो दो-दो चरणों के ही तुक मिलते हैं, चार के नहीं। आदि से अन्त तक यही देखने में आता है। अयोध्या-कांड में आदि से अन्त तक आठ-आठ ऐसी द्विपदियाँ एक-एक समूह में रक्खी गई हैं। इसका व्यतिक्रम कहीं नहीं हुआ है। परन्तु और कांडों में ऐसे किसी नियम का पालन नहीं है। लङ्का-काण्ड में स्तुति के दो डिल्लों के बीच में एक द्विपदी, अरण्य-काण्ड में गीध-द्वारा स्तुति के पहले दो द्विपदियाँ, इसी तरह पाँच, सात, ग्यारह, तेरह, उन्नीस, उन्तीस और सैंतीस तक द्विपदियाँ एक-एक समूह में हैं। चार-चार चरणों की गिनती करने से एक-एक द्विपदी प्रत्येक समूह में छूट जायगी। अतः जहाँ समूह के भीतर द्विपदियों की सम संख्या है, वहाँ तो चार-चार चरणों का एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिये; परन्तु जहाँ विषम संख्या है, वहाँ दो-दो चरणों की, अर्थात् प्रत्येक द्विपदी, एक-एक चौपाई गिनी जानी चाहिये। इस मत का रूढ़ि से भी पोषण होता है। जायसी के पदमावत में एक-एक समूह में नियम से सात-सात द्विपदियाँ हैं। पदमावतकार ने द्विपदी को ही चौपाई माना है। यह पोथी मानस के कुछ पहले लिखी गई थी। मानस में यह रूढ़ि और पिङ्गल का नियम दोनों ही बर्ते गये हैं। अतः हमने चौपाइयों की इस नियम के अनुसार गणना की तो भागवतदासादिवाली पोथी की गणना इस प्रकार आयी।—

बालकाण्ड में	**१५६८**	**चौपाइयाँ**
अवधकाण्ड में	**१३०४**	**चौपाइयाँ**
वनकाण्ड में	**३२६**	**चौपाइयाँ**
किष्किन्धाकाण्ड में	**१६५**	**चौपाइयाँ**
सुन्दरकाण्ड में	**३३७**	**चौपाइयाँ**
लङ्काकाण्ड में	**६८४**	**चौपाइयाँ**
उत्तरकाण्ड में	**६८३**	**चौपाइयाँ**
पूर्ण संख्या	**५१००**	**चौपाइयाँ**

जिन क्षेपक-रहित प्रतियों में चौपाइयों की यह संख्या आती हो, उन्हें अवश्य अधिक शुद्ध समझना चाहिये।"

'मानस' की जो प्रतियाँ शुद्ध कही जाती हैं, उनमें भी कहीं-कहीं अन्तर है। जैसे अरण्य-कांड में विराध-वध की किसी-किसी प्रति में एक ही चौपाई है।—

मिला असुर बिराध मग जाता।
आवत ही रघुबीर निपाता॥

पर 'सभा' वाली प्रति में कई चौपाइयाँ हैं। इसका कारण यह जान पड़ता है कि या तो स्वयं तुलसीदास ने या उनके बाद के किसी भक्त ने विराध-वध की उन चौपाइयों को निकाल दिया, जिनमें विराध-द्वारा सीता को उठा ले जाने का वर्णन था। सीता के अग्नि-प्रवेश के पहले एक राक्षस-द्वारा उनका अङ्ग-स्पर्श भक्तों को अभीष्ट नहीं जान पड़ा होगा। और यह भी संभव है कि तुलसीदास ने स्वयं उन चौपाइयों को निकाल दिया हो; पर जिन प्रतियों में वे चौपाइयाँ पहले लिखी जा चुकी थीं, उनमें से उन्हें वे कैसे निकाल सकते थे? इसमे दो प्रकार के पाठ पहले ही से चले आ रहे हैं—एक मूल-प्रति के अनुसार, दूसरा संशोधित प्रति

के अनुसार। यही कारण है कि प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में भी पाठान्तर मिलता है।

विराध-वध की जो चौपाई ऊपर दी गई है, उसके पहले चरण से यही ध्वनित होता है कि राम को रास्ते में जाता हुआ विराध असुर मिला। राम पर हमला करने का कोई भाव उसमें नहीं है। फिर 'आवत' की पूर्त्ति कैसे होगी? 'आवत' के पहले विराध के धावे की कोई न कोई चौपाई अवश्य होनी चाहिये। अतएव यह निर्विवाद जान पड़ता है कि तुलसीदास ने 'आवत' वाली पंक्ति के पहले कुछ चौपाइयाँ अवश्य लिखी थीं।

विराध-वध का वर्णन वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म-रामायण में भी विस्तारपूर्वक है। तुलसीदास ने उसे एक ही चौपाई में संक्षिप्त नहीं किया होगा।

वाल्मीकि रामायण में विराध सीता को उठा ले गया है, और राम ने उस अवसर पर अपनी मनोव्यथा भी प्रकट की है।—

सकृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम्।
(अरण्यकाण्ड, सर्ग २, श्लोक ६)

'वह घोर शब्द कर पृथ्वी को कंपायमान करता हुआ।'

अंकेनादाय वैदेहीमपक्रम्य तदाऽब्रवीत्।

'सीता को खींचकर गोद में लेकर तब वह बोला।'

तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम्।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता॥

'रामचन्द्र विराध की गोद में पड़ी हुई कल्याणी सीता को

देखकर उदास मुख से लक्ष्मण से बोले।'

यदभिप्रेतमस्मासु प्रियं वर वृतं च यत्।
कैकेय्यास्तु सुसंवृत्तं क्षिप्रमद्यैव लक्ष्मण!
या न तुष्यति राज्येन पुत्रार्थे दीर्घदर्शिनी।

'हे लक्ष्मण! कैकेयी का हमारे विषय में वर के कपट से माँगा हुआ जो अभिप्राय था, वह आज सफल होगया। दूर की सोचनेवाली जो कैकेयी पुत्र के लिये राज्य से परितृप्त नहीं हुई।'

अध्यात्म रामायण में सीता पर विराध के झपटने ही का वर्णन है।--

इत्युक्त्वा राक्षसः सीतामादातुमभिदुद्रुवे।
रामश्चिच्छेद तद्बाहू शरेण प्रहसन्निव॥

'ऐसा कहकर वह राक्षस सीता को पकड़ने के लिये दौड़ा। तब रामचन्द्र ने हँसते हुये अपने बाण से उसकी भुजायें काट डालीं।'

इन उद्धरणों से मेरा विश्वास है कि तुलसीदास ने विराध-वध का पूरा वर्णन लिखा था। क्योंकि ऐसे ही भावों से सम्पन्न चौपाइयाँ तुलसीदास के विराध-वध में मिलती हैं। पर पीछे जब उन्हें यह खयाल आया या कराया गया कि जब विराध ने सीता का स्पर्श कर ही लिया, तब रावण के स्पर्श के लोकापवाद से बचने के लिये अग्नि में से नक़ली सीता उत्पन्न करने की आवश्यकता ही क्या रही? उन्होंने स्वयं या उनके बाद के किसी भक्त ने विराध-वध की सारी चौपाइयाँ निकाल दीं, और केवल विराध का नाम लाने और राम की शूरता के प्रदर्शन के लिये एक चौपाई रहने दी।

इसी प्रकार की एक कथा लंका-कांड में भी है। आश्चर्य की बात तो यह है कि वह भी तुलसीदास की लिखी हुई मानी जाती है और प्रामाणिक प्रतियों में उसे स्थान भी मिला है। वह कथा है, भरत और हनुमान के मिलने की। जब लक्ष्मण को शक्ति लगी थी, तब सुषेण वैद्य की सम्मति से हनुमान कोई जड़ी लाने के लिये किसी पहाड़ पर गये थे। वाल्मीकि उसे दक्षिण-शिखर कहते हैं।

दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय।

'दक्षिण शिखर में उत्पन्न महौषधि ले आओ।'

अध्यात्म रामायण-कार ने उस पर्वत का नाम द्रोणाचल और उसे उत्तर दिशा में हिमालय के पास बताया है। कालनेमि ने हिमालय की तराई में अपना आश्रम बनाया था।

स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत्।

हनुमान जब द्रोणाचल को लेकर आकाश मार्ग से अयोध्या पर होकर लौटने लगे, तब भरत ने उन्हें बाण से मार गिराया। फिर जब हनुमान ने अपना परिचय दिया, तब भरत बहुत पछताये और उन्होंने चाहा कि हनुमान को अपने बाण पर बैठाकर लंका भेज दें। पर हनुमान ने स्वीकार नहीं किया और वे अपने ही बल से चले गये। वाल्मीकि ने तो इसका कोई ज़िक्र ही नहीं किया। उनके हनुमान तो दक्षिण शिखर से औषधि ले आये थे। अतएव अध्यात्म रामायण के आधार पर तुलसीदास हनुमान को औषधि के लिये उत्तर पर्वत पर ले आये होंगे। अध्यात्म रामायण-कार ने भरत से हनुमान की भेंट नहीं कराई। तुलसीदास ने इतनी कथा न जाने कहाँ से बढ़ा ली है। और

उन्होंने यह भी नहीं लिखा कि हनुमान ने लंका जाकर भरत से भेंट होने की बात राम से कही थी। हनुमान तो अच्छी तरह जानते थे कि राम ने बारबार भरत की सराहना की थी। फिर उन्होंने राम को प्रिय लगनेवाली यह बात राम से क्यों नहीं कही? संभव है, युद्ध की उत्तेजना में वे भूल गये हों; या कहने का अवसर ही उन्होंने न पाया हो; पर लड़ाई की समाप्ति पर, पुष्पकारूढ़ होते समय, या पुष्पक पर राम के साथ यात्रा करते समय तो उनको मौक़ा मिला ही होगा।

और सबसे अधिक सुन्दर अवसर तो वह था, जब राम ने हनुमान को भरत के पास अपने लौटने के संदेशे के साथ भेजा। हनुमान उस समय भी चूक गये। फिर वे भेस बदलकर भरत के पास गये। पर भेस बदलने का कोई लाभ उन्होंने नहीं लिया और पहुँचते ही वे कहने लगे।—

जासु बिरह सोचहु दिन राती।
जपहु निरन्तर गुनगन पाँती॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।
सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥

जब साफ़ ही साफ़ कहना था, तब हनुमान को भेस बदलने की ज़रूरत क्या थी? अस्तु;

हनुमान के मुख से उक्त प्रिय वचन सुनकर भरत ने पूछा।—

को तुम तात कहाँ ते आये।
मोहिं परम प्रिय बचन सुनाये॥

इस पर हनुमान ने कहा।—

मारुत सुत मैं कपि हनुमाना।
नाम मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबन्धु रघुपति कर किंकर।
सुनत भरत भेंटे उठि सादर॥

यदि भरत से हनुमान की भेंट पहले हो चुकी होती, तो पहले तो भरत के पास हनुमान को भेस बदलकर जाने की ज़रूरत ही न थी; दूसरे हनुमान ने जब अपना नाम बतला दिया, तब भरत को सबसे पहले लक्ष्मण का समाचार पूछना चाहिये था। लक्ष्मण को पंचमी को शक्ति लगी थी और हनुमान भरत के पास पूर्णिमा को गये थे। दस ही दिनों में भरत पहले तो हनुमान को भूल गये, फिर सीता-हरण और लक्ष्मण को शक्ति लगने की बात भी भूल गये, यह आश्चर्य की बात है। स्वाभाविक तो यह था कि लक्ष्मण को शक्ति लगने की बात सुनकर भरत को तब तक नींद भी न आती। पर वे तो राम से भी कभी यह चर्चा नहीं करते कि हनुमान से उन्होंने लक्ष्मण की शक्ति और सीता-हरण की बात सुनी थी।

मुझे तो यह कथा क्षेपक जान पड़ती है। जिस किसीने यह कथा गढ़ी है, उसका उद्देश्य या तो हनुमान के वायु-वेग की महिमा या भरत के बाण-संचालन की कुशलता ही प्रदर्शित करना जान पड़ता है। इसीलिए वह हनुमान को भारत के दूसरे सिरे पर उड़ा लाया है। भरत के बाण में वह शक्ति रही हो, या न रही हो, पर कवि की क़लम में तो वह शक्ति थी ही। पर एक बेसिर-पैर की कीर्ति का लाभ हनुमान ऐसे सच्चे वीर को क्यों दी जानी चाहिये? और भरत के बाण-संचालन की कुशलता दिखलाना तो भरत को न समझना है। भरत का चरित्र

धनुष-बाण से कोसों दूर है। वे पदार्थ ही भिन्न हैं।

इसी तरह लंका-कांड में एक चौपाई में मंदोदरी रावण से कहती है।—

रामानुज लघु रेख खँचाई।
सोउ नहिं नाँघेउ असि मनुसाई॥

पर 'मानस' के बहुत-से प्रामाणिक संस्करणों में इस घटना को निर्दिष्ट करनेवाली कोई चौपाई नहीं है। हाँ, कुछ संस्करणों में नीचे की एक चौपाई अरण्य-कांड में है।—

चहुँ दिसि रेख खँचाइ अहीसा।
बारहिँ बार नाइ पद सीसा॥

अब यही निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि रहें, तो दोनों चौपाइयाँ रहें, नहीं तो दोनों ही निकाल दी जायँ। क्योंकि एक के बिना दूसरी का समर्थन नहीं होता।

अबतक रामचरितमानस के जितने संस्करण निकले हैं, सब में कथाओं ही में अनैक्य नहीं है, पाठ-भेद भी है। जैसे।—

प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि,
राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग
जनु बिधु मंडल डोल॥

अबतक के छपे हुये सभी संस्करणों में यही पाठ मिलता है; पर मानस की सं० १६६१ की अयोध्यावाली प्रति में 'प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि' पाठ है, जो अधिक भावगर्भित है।

इसी प्रकार बालकांड के इस सोरठे का भी पाठान्तर मिलता है।—

सङ्कर चाप जहाज , सागर रघुबर बाहुबल ।
बूड़ सो सकल समाज , चढ़े जे प्रथमहिं मोहबस ॥

प्रायः सभी संस्करणों में यही पाठ है; पर अयोध्यावाली प्रति में 'चढ़ा जो' पाठ है, जो ठीक मालूम होता है; क्योंकि 'चढ़ा' 'सो' के लिये आया है, जो एक वचन है। ऐसे ही।—

जासु कृपा कटाच्छ सुर , चाहत चितवन सोइ ।
रामपदारबिन्द रति , करति स्वभावहिँ खोइ ॥

सभी प्रकाशित संस्करणों में यही पाठ मिलता है; पर 'चितवन' का 'चितव न' पाठ होने ही से अर्थ की संगति ठीक बैठेगी।

इन उदाहरणों के देने का मेरा अभिप्राय यही है कि अभी तक रामचरितमानस का कोई ऐसा संस्करण नहीं प्रकाशित हुआ है, जो सर्वथा निर्दोष या पाठ-भेद या पाठ-वाद से रहित कहा जा सके।

'मानस' के मूल-पाठ को अशुद्ध करने में उसके नक़ल करने वालों सम्पादकों और टीकाकारों का भी हाथ है। तुलसीदास ने अवधी भाषा में 'मानस' लिखा है। उन्होंने अवधी की बोलचाल, व्याकरण और महावरों का पूरा अनुसरण किया है। उन्होंने सर्वत्र 'ख' के स्थान में 'ष', 'य' के स्थान में 'ज', 'ज्ञ' के स्थान में 'ग्य', 'श' के स्थान में 'स', 'ण' के स्थान में 'न' और 'ऋ' के स्थान में 'रि' लिखा है। जैसे, राषा, लेषा, जोग, जग्य, जस, जोनि, ग्यान, बिग्यान, ग्याति, स्रुति, स्रवन, सिव, सीस, सिसु, दसरथ, कौसल्या, सुरेस, महेस, बान, प्रान, कारन, प्रन और तरनि आदि। मानस की प्राचीन प्रतियों में ऐसा ही पाठ

पाया जाता है। बाद के लिपिकारों, सम्पादकों और टीकाकारों ने तद्भव शब्दों को तत्सम कर दिया है। केवल पंडित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयंक' में प्राचीनता की रक्षा की है। श्रीराम-चरणदास, शुकदेवलाल और बैजनाथदास ने भी शब्दों का शुद्ध संस्कृत रूप दिया है। उन्होंने दसरथ को दशरथ, चरन को चरण, जग्य को यज्ञ, लषन को लषण और सीतल को शीतल लिखा है।

'मानस' का शुद्ध संस्करण छापने का पहला प्रयास खड्ग-विलास प्रेस, बाँकीपुर के मालिक स्व० बाबू रामदीनसिंह ने किया था। उसके बाद काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा ने अधिक से अधिक शुद्ध संस्करण निकाला। सभा ने उसमें समास-चिन्ह तथा विराम आदि अपनी ओर से लगाकर 'मानस' का अर्थ समझने में सुविधा कर दी है, और ष और ख को उनके वर्तमान उच्चारण के अनुसार अलग-अलग लिखा है।

पीछे से क्षेपक मिलानेवालों ने भी 'मानस' को विकृत करने में कम उद्योग नहीं किया है। तुलसीदास ने क्षेपकों की रचना नहीं की थी। पर अब मानस का कोई कांड 'क्षेपक' से रहित नहीं है। इतना ही नहीं, तुलसीदास के नाम से मानस में एक लवकुश-कांड भी बढ़ा लिया गया है।

केवल अयोध्याकाण्ड में एक प्रसंग ऐसा है, जो अपने स्थान पर ठीक नहीं बैठता है और पीछे से मिलाया हुआ जान पड़ता है। पर उसकी रचना तुलसीदास ही की की हुई है, यह निर्विवाद मालूम होता है। वह प्रसंग यह है।—

राम, लक्ष्मण और सीता मार्ग में चले जा रहे हैं। रास्ते के गाँववाले उन्हें देखकर चकित होते हैं।—

"जे तिन महँ बय बिरिध सयाने।
तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥

सकल कथा तिन्ह सबहिँ सुनाई।
बनहिँ चले पितु आयसु पाई॥

सुनि सविषाद सकल पछिताहीं।
रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥

इसके आगे ही एक नया प्रसंग छेड़ दिया गया है।—

तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेजपुञ्ज लघु बयस सुहावा॥

कबि अलषित गति बेषु बिरागी।
मन क्रम बचन राम अनुरागी॥

सजल नयन तन पुलकि निज,
इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल,
दसा न जाइ बखानि॥

राम सप्रेम पुलकि उर लावा।
परम रंकु जनु पारस पावा॥

मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ।
मिलत धरे तनु कह सब कोऊ॥

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा।
लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा।
जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा॥

कीन्ह निषाद दंडवत तेही।
मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥

पिअत नयन पुट रूप पियूखा।
मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

यह प्रसंग यहीं पर समाप्त हो जाता है और फिर आगे गाँव-वालों की बातें शुरू हो जाती हैं।—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।
जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥

इत्यादि; उक्त तापस के आजाने से कथा-प्रवाह ही में नहीं विघ्न पड़ता, बल्कि अयोध्या-कांड की रचना का क्रम भी बिगड़ जाता है। पहले लिखा जा चुका है कि अयोध्या-कांड में आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पचीस दोहे पर एक छन्द देने का नियम आदि से अन्त तक निबाहा गया है। पर बीच में तापस की कथा आजाने से इस स्थान पर २६ वें दोहे पर छन्द पड़ गया है।

तापस कौन था? बीच में उसे लाकर क्यों खड़ा कर दिया गया? और 'पियत नयन पुट रूप पियूखा' की दशा में उसे वहीं छोड़ क्यों दिया गया? इन प्रश्नों का उत्तर अब कौन दे सकता है? तापस का प्रसङ्ग 'सभा' वाली प्रति में भी है और राजापुर की प्रति में भी। पर श्रीरामचरणदासजी के संस्करण में नहीं है। श्रीरामदास गौड़ ने भी स्वसम्पादित 'मानस' में इस प्रसङ्ग को नहीं रक्खा है। पता नहीं, तुलसीदास ने इसे रक्खा है, या पीछे से किसीने मिलाया है। पर वहीं वह क्यों मिलाया गया? आगे-पीछे उसके लिये और भी तो उपयुक्त स्थान थे।

रामचरितमानस की प्राचीन प्रतियाँ

रामचरितमानस की जितनी प्राचीन प्रतियों का अभीतक पता लगा है, उनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १६६१ की है, जो अयोध्या में है। यह प्रति वासुदेव-घाट पर स्थित, 'श्रावण-कुञ्ज' नाम के एक मन्दिर में, उसके महन्त श्रीजनककिशोरीशरणजी के अधिकार में है। उक्त मन्दिर 'मधुरअलीजी के स्थान' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

मैंने ता० १८ अक्टोबर, १९३५ को अयोध्या जाकर उक्त प्रति का निरीक्षण किया। उस समय उक्त महन्तजी मौजूद नहीं थे। पर मन्दिर के पुजारी गोविन्दप्रसादजी ने कृपा-पूर्वक मुझे 'मानस' की उपर्युक्त प्रति देखने को दे दी। मैंने कई घण्टे लगातार बैठकर उसके बाल-कांड को तो पूरा पढ़ डाला और शेष कांडों को उलट-पुलटकर सरसरी तौर पर देख लिया। उनमें केवल बाल-कांड ही प्राचीन है। शेष कांड पीछे से लिखकर पोथी पूरी कर ली गई है।

पोथी के ऊपर पहले पन्ने पर यह लिखा हुआ है।—

'श्रीमत जानकीरमण चरण कमल मकंदानुरागी श्रीमत श्री सीवलाल पाठकजी महाराज तस्या अनुग्रहीतदास ठाकुरदास रसोगी काशी के श्रीमत रामायण श्री तुलसी कीर्त सानन्द श्रीमत रघुवरसरन विकोरा (?) के श्री सीतारामचर्णन की अनुराग (यहाँ एक इञ्च तक के अक्षर स्पष्ट पढ़े नहीं जाते) **श्री बालकाण्ड श्री सीताराम पूर्णमस्तु** (श्री सीताराम पूर्णमस्तु लिखकर एक लकीर से काट दिया गया है) **श्री सं० १८८९ कार्तीक कृष्ण ९ रविवार श्री रघुबरसरन के पास रहै ॥'**

इसके सिवा और कोई लेख पहले पृष्ठ पर नहीं है। पर पहला पत्रा भीतर के अन्य पत्रों की अपेक्षा इतना अधिक मोटा है कि उसके मोटेपन का कारण जानने की इच्छा स्वभावतः उठ खड़ी होती है। मैंने उसे उठाकर धूप की तरफ़ करके देखा, तो एक ओर पत्रे के हाशिये पर एक पंक्ति में कुछ अक्षर और झलकते हुये दिखाई पड़े। ध्यान देकर पढ़ने पर भी यद्यपि पूरी पंक्ति नहीं पढ़ी जा सकी, पर जो स्पष्ट पढ़ा जा सका, वह यह है।—

'रघुनाथ का सुनाय का लोभाय बस किया।'

पत्रे की मोटाई को देखकर तो यह सहज ही में समझ में आगया कि दो पत्रे चिपकाकर ऊपर के पत्रे को मोटा बना दिया गया है। पर धूप में झलकनेवाले भीतर के अक्षरों को देखकर मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि प्राचीन पत्रे के ऊपर दूसरा नया पत्रा चढ़ाया गया है, और उसपर श्री 'सीवलाल पाठक' सम्बन्धी उपर्युक्त पंक्तियाँ लिख दी गई हैं। संभव है, यह प्रति किसी समय शिवलाल पाठक के पास रही हो।

चार पत्रों के उलटने पर पाँचवें पत्रे से आगे सारा बाल-कांड पहले चार पत्रों की अपेक्षा बहुत पुराने काग़ज़ पर और भिन्न क़लम से लिखा हुआ मिलता है। पाँचवें पत्रे का पहला शब्द है—रीति। चौथे पत्रे की अन्तिम पंक्ति में 'उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल' लिखकर पत्रे की पूरी लम्बाई तक जाने के पहले ही पंक्ति समाप्त कर दी गई है। पाँचवाँ पत्रा 'खल' के अगले शब्द 'रीति' से प्रारम्भ हुआ है। जान पड़ता है, प्राचीन प्रति के उपर्युक्त चार पत्रे नष्ट होगये थे, उनके स्थान पर नये पत्रे लिखकर लगा दिये गये हैं। प्राचीन पत्रों का काग़ज़

भूरा, मटमैला-सा होगया है और नवीन पत्रों का काग़ज़ हलका पीलापन लिये हुये सफ़ेद है। आकार दोनों का बराबर है। पत्रों की लम्बाई-चौड़ाई क्रमशः ६॥ इंच और ३॥ इंच के लगभग है। बीच में ९६ वाँ पत्रा भी उसी काग़ज़ पर और उसी क़लम से लिखा हुआ मिलता है, जिस काग़ज़ पर और जिस क़लम से आदि के चार पत्रे लिखे गये हैं। इस प्रकार पूरी प्रति में कुल पाँच पत्रे खण्डित हैं। मुझे पुजारीजी ने बताया कि ये पाँचों पत्रे तुलसीदास के एक बड़े प्रेमी श्रीसीताप्रसादजी के लिखे हुये हैं, जो श्रावण-कुञ्ज के पड़ोस ही में रहते थे और जिन्होंने इस प्राचीन प्रति की रक्षा के लिये उसके पत्रों के किनारों पर पतले पतङ्गी काग़ज़ चिपका दिये हैं, जिससे सचमुच पत्रों के नुचने या फटने का भय कम होगया है। उन्होंने अन्त के पत्रे की पीठ पर भी एक मोटा काग़ज़ चिपका दिया है और उसपर यह उल्लेख किया है कि उक्त प्रति भगवानदास की लिखी हुई है, जिन्होंने विनय-पत्रिका लिखी थी, जो रामनगर (काशी)-निवासी एक चौधरी साहब के पास है। भगवानदास ने उस पत्रे की पीठ पर अपना नाम भी दिया है। पर काग़ज़ फटा जा रहा था, उसकी रक्षा के लिये पत्रे पर मोटा काग़ज़ चिपका दिया गया।

हाशियों पर जो पतङ्गी काग़ज़ चिपकाया गया है, वह भी सर्वत्र एक-सा नहीं है। ६७ पृष्ठों तक सफ़ेद रंग का पतङ्गी काग़ज़ चिपकाया गया है, और उसके बाद बैंगनी काग़ज़ लगाया गया है। ९७ वें पृष्ठ पर यह काग़ज़ भी चुक गया जान पड़ता है और ९८ वें पृष्ठ से लाल रंग का काग़ज़ चढ़ाया गया है। लाल रंग का काग़ज़ भी आगे जाकर समाप्त हो जाता है और फिर सफ़ेद पतंगी काग़ज़ लगाया गया है।

बाल-कांड के अन्तिम सोरठे का नं० २६२ दिया हुआ है। नम्बर के बाद यह पाठ है।—

"इति श्रीमद्रामचरितमानसे कल|कलि कलुष विध्वंशने प्रथमो सोपान समाप्त।"

'ने प्रथमो सोपान समाप्त' इतना पंक्ति के बाहर दाहिनी ओर के हाशिये पर सीधा ऊपर की ओर जाकर समाप्त हुआ है। फिर पत्रे की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है।—

"सुभमस्तु" संवत् १६६१ वैशाष सुदि ६ बुधे ॥

अन्तिम पृष्ठ-संख्या १७७ है।

यह तो उक्त प्रति की बाहरी रूप-रेखा है। अब मूल-पाठ में प्रवेश कीजिये, तो प्रायः प्रत्येक पत्रे पर कुछ न कुछ संशोधन किया हुआ मिलेगा। कहीं हरताल लगाकर पाठ शुद्ध किया गया है, कहीं स्याही से काटकर। जो पाठ लेखक की असावधानी से लिखने से छूट गया है, वह हाशिये पर लिख दिया गया है। हाशिये पर की क़लम उसी लेखक की नहीं है, जिसने पूरी प्रति लिखी थी।

पृष्ठ ८० पर १५७ वें दोहे के बाद का पाठ ऐसा लिखा है।—

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा।
तहँ बस भानु कर जानी।
आपन अति असमय अनुमानी।
गयउ न गृह मन बहुत गलानी।
मिला न राजहि नृप अभिमानी॥ रिस

इसके नीचे हाशिये पर यह लिखा है।—

"नृपति कपट मुनि वेषा॥

जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समरसेन तजि गयउ पराई॥

समय प्रताप २।"

इसके पास ही किसी और क़लम से लिखा है।—

"यह दसखत श्रीतुलसीदास का है। राजापुर की पोथी माँ मिलत है।"

यह श्रीसीताप्रसादजी का लिखा हुआ कहा जाता है, जिन्होंने हाशिये पर काग़ज़ चढ़ाया था।

ऐसी ही एक छूट ४० वें पत्रे में भी हुई है। प्रचलित पाठ यह है।—

केहि अवराधहु का तुम चहहू।
हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥

सुनत ऋषिन्ह के बचन भवानी।
बोली गूढ़ मनोहर बानी॥

कहत बचन मन अति सकुचाई।
हसिहहु सुनि हमार जड़ताई॥

इसमें 'किन कहहू' से लेकर 'कहत' तक का अंश छूट गया था। संशोधक ने पत्रे के बायें हाशिये पर 'किन कहहू' और 'कहत' लिखकर ऊपर-नीचे की दो चौपाइयाँ ठीक कर दीं, पर बीच की चौपाई वह छोड़ ही गया। किसी ने 'किन कहहू' और 'कहत' पर हरताल लगाकर फिर वही लिख दिया है। पर हरताल-वाले ने भी बीचवाली चौपाई की कमी पर ध्यान नहीं दिया। किसी ने एक और ही क़लम से छूटी हुई चौपाई पत्रे के नीचे की

ओर हाशिये पर लिख दी है, पर इस समय उसपर पतंगी काग़ज़ चिपका हुआ है। काग़ज़ चिपकानेवाले ने भी उस चौपाई की आवश्यकता नहीं समझी। पर क्या तुलसीदास भी उस चौपाई की उपेक्षा कर सकते थे ? उस चौपाई के बिना तो कथा की लड़ी ही टूट जाती है। जान पड़ता है, या तो तुलसीदास ने उस पत्रे को देखा ही नहीं, या उन्होंने इस प्रति का संशोधन ही नहीं किया।

यद्यपि उक्त प्रति का कई बार संशोधन हुआ जान पड़ता है, पर अभी संशोधन की बहुत गुञ्जाइश है।

बीसवें पृष्ठ पर यह चौपाई है।—

जेहिँ यह कथा सुनी नहिं होई।
जनि आचज करै सुनि सोई॥

इसमें 'आचरज' का 'र' ही ग़ायब है।

इसी प्रकार १२६ वें पृष्ठ पर यह लिखा है।—

पुनि नभ धनुमण्डल सम भयऊ।

इसमें स्पष्ट ही 'नभ' के स्थान पर 'धनु' होना चाहिये।

१५८ वें पृष्ठ के आगेवाले पत्रे पर ऊपर ही ऊपर हाशिये पर भिन्न क़लम से यह लिखा है।—

जाइ न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥

राम सीय सुन्दर प्रति छाहीं।
जगमगात मनि खम्भन माहीं॥

इसके पास ही एक और ही क़लम से हाशिये पर लिखा है।—

'यह दसखत गोस्वामी के है।'

१६७ वें पृष्ठ पर 'देखहु रामहि नैन भरि, तजि इरिषा मद कोहु' पाठ दिया हुआ है। पर प्रचलित मानसों में 'कोहु' के स्थान पर 'मोहु' पाठ है, जो अधिक युक्ति-संगत जान पड़ता है।

पुस्तक में बहुत-से स्थानों पर दोहे और सोरठे के नम्बर ठीक नहीं दिये गये हैं। १२३ वें दोहे के बाद जो दोहा पड़ता है, उस पर नम्बर ही नहीं है। उसके आगे एक सोरठा है। उसका नम्बर १२४ दिया हुआ है। ४७ वें दोहे के बाद वाले दोहे पर भी नम्बर नहीं है। पर उसके आगे एक सोरठा है, उसका नम्बर ४८ दिया हुआ है।

१८६ वें के आगेवाले पृष्ठ के हाशिये पर भिन्न क़लम से यह लिखा है।—

सहित बसिष्ठ सोइ नृप कैसे।
सुरगुर संग पुरन्दर जैसे॥

इसके ऊपर दूसरी क़लम से पतले अक्षरों में लिखा है।—
'ये दसखत तुलसीदास के अहीं। राजापुर के पोथी माँ मिलत है।'

'सके उठाइ सरासुर मेरू' के 'सरासुर' के 'स' को किसी ने 'सु' बना दिया है। 'उ' की मात्रा गहरी काली स्याही से लगाई गई है, जो स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। साथ ही उक्त प्रति के लेखक का 'उ' की मात्रा लगाने का जो ढङ्ग है, उससे यह मात्रा मिलती भी नहीं। इससे मालूम होता है, कि इस प्रति के संशोधन में कइयों का हाथ लग चुका है।

पृष्ठ ६७ पर 'निज आयुध भुज चारी' पाठ है। जान पड़ता है, 'चारी' के स्थान पर 'धारी' पाठ था। किसी ने 'ध' की

गरदन छीलकर उसे 'च' बनाया है। पर छीला जाना बहुत स्पष्ट नहीं है; कुछ भ्रम-सा होता है। इसमें तो शक नहीं कि 'चारी' की अपेक्षा 'धारी' पाठ अधिक सार्थक है। क्योंकि 'निज आयुध भुज चारी' से चारों भुजाओं के लिये चार आयुध होने का अर्थ निकलता है। पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म में शङ्ख और पद्म तो आयुध हैं नहीं। अतएव 'चारी' पाठ होने से अर्थ की संगति नहीं बैठती। और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि तुलसीदास द्विभुज राम ही के उपासक थे। अतएव वे स्वयं 'भुजधारी' ही पाठ के पक्ष में होते।

पर 'धारी' को छीलकर 'चारी' क्यों किया गया? और किसने किया? यह रहस्य समझ में नहीं आता। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि किसीने जान-बूझकर 'ध' को छीलकर 'च' बनाया है। जिस 'ध' को 'च' बनाया हुआ बताया जाता है, वह 'ध' उस प्रति के लेखक का हो ही नहीं सकता; क्योंकि वह तो दूसरे प्रकार का 'ध' लिखता है, जो बिल्कुल पास ही 'आयुध' में है। 'आयुध' वाला 'ध' जितने स्थान में लिखा हुआ है, 'चारी' के 'च' को 'ध' होने के लिये उतना स्थान काफ़ी नहीं है। अतएव यदि छीलना सही माना जाय, तो 'च' ही की कोई विकृति ठीक की गई होगी। किसी ने जान-बूझकर 'ध' का 'च' नहीं बनाया होगा। और कोई वैरागी तो 'धारी' का 'चारी' बनाता ही क्यों? किन्तु अगले पत्रे पर 'भयेउ प्रगट श्रीकंता' के सामने दाहिनी ओर हाशिये पर लिखा है।—

'श्रीकंता से चारि भुजा'

इसका अभिप्राय तो यही जान पड़ता है कि 'भुजचारी' को लेकर कभी विवाद उठा होगा और उसके समर्थन में "श्रीकंता"

को किसी ने प्रमाण-रूप में उपस्थित किया होगा। उसी का संकेत हाशिये पर कर दिया गया है।

१२६ वें पृष्ठ से क़लम कुछ पतली होगई है और लिखावट भी बदली हुई-सी लगती है। मुझे उसमें कुछ अक्षरों के नये रूप भी देखने को मिले। कहीं-कहीं 'भ' 'ल' से मिलता-जुलता बनाया गया है। इससे कई स्थानों पर मुझे धोखा हुआ और मैं 'नभ' को 'नल' पढ़ गया। 'र' और 'रु' की भी भिन्न-भिन्न सूरतें मिलीं। 'घ' भी दो प्रकार से लिखे हुए मिले। सारी पुस्तक में 'रघुबीर' का 'घ' वैसा ही है, जैसा देवनागरी वर्णमाला में इस समय वर्त्तमान है। पर उक्त प्रति में १२६ वें पन्ने के आगे जितने 'घ' अन्य शब्दों में आये हैं, प्रायः वे सभी अपनी खड़ी पाई से लटके हुये हैं, शिरो-रेखा से मिले हुये नहीं हैं। इससे मैं यह परिणाम निकालता हूँ कि एक से अधिक व्यक्तियों ने सारी पुस्तक लिखी है।

आठवें पृष्ठ पर 'धींग धरमध्वज धंधक धोरी' पाठ मिला। वर्त्तमान प्रचलित 'मानसों' में यह 'धिग धरमध्वज धंधक धोरी' है। मुझे 'धिग' की अपेक्षा 'धींग' अधिक सार्थक जान पड़ता है।

बारहवें पृष्ठ पर 'बंदौं नाम राम रघुबर को' है। पर प्रचलित प्रतियों में 'बंदौं राम नाम रघुबर को' पाठ मिलता है।

उक्त प्रति के प्रारम्भ में 'कृपासिंधु नररूप हरि' ही पाठ है, 'कृपासिंधु नररूप हर' नहीं; जैसा मुन्शी शुकदेवलाल आदि ने माना है और अब भी काशी के पंडित विजयानन्द त्रिपाठी आदि महानुभाव मान रहे हैं।

यही अयोध्या की प्रति का संक्षिप्त वर्णन है। इसमें तो संदेह ही नहीं, कि वह प्रति इस समय तक प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है। पर उसके तुलसीदास-द्वारा संशोधित होने में मुझे संदेह है,

जबतक यह न स्वीकार कर लिया जाय कि तुलसीदास संशोधन करने में काफ़ी लापरवाही करते थे, या वे स्वयं अशुद्ध लिखते रहे हों। पर ऐसे उद्भट विद्वान् और महाकवि के संबंध में ये दोनों शङ्कायें व्यर्थ हैं।

हाशिये पर वाले संशोधन के अक्षरों को राजापुर की प्रति के अक्षरों से मिलता हुआ पाकर यह अनुमान भिड़ाना कि अयोध्या-वाली प्रति का संशोधन तुलसीदास का किया हुआ है, युक्ति-पूर्ण नहीं है। क्योंकि राजापुरवाली प्रति तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई नहीं है, यह आगे प्रमाणित किया जायगा।

काशी के सरस्वती-भवन में वाल्मीकि-रामायण के उत्तर-कांड की एक प्रति सुरक्षित है, जो सं० १६४१ की लिखी हुई है, और जिसके अन्त में 'लि० तुलसीदासेन' लिखा हुआ भी है। उसे यदि सत्य माना जाय, तब तो अयोध्या की प्रति तुलसीदास के हाथ से संशोधित कही ही नहीं जा सकती, क्योंकि दोनों की लिखावट में अन्तर स्पष्ट है। पर राजापुरवाली प्रति के अक्षरों की अपेक्षा अयोध्यावाली प्रति के अक्षर सरस्वती-भवन के उत्तर-कांड के अक्षरों से अधिक मिलते हैं। अतएव संभव है, अयोध्या-वाली प्रति तुलसीदास के हाथ की हो। सरस्वती-भवन और अयोध्या की प्रतियों के समय में बीस वर्ष का अंतर है। इतने समय में लिखावट में अन्तर पड़ सकता है।

अयोध्यावाली प्रति का सम्मान हमें इस दृष्टि से भी करना चाहिये कि वह तुलसीदास के जीवन-काल ही में, उनके परलोक-वास से १६ वर्ष पहले की लिखी हुई है और वही इस समय सबसे प्राचीन प्रति है। खेद है, कि हमने उसका उपयोग जैसा किया जाना चाहिये था, अभीतक नहीं किया।

मलीहाबाद की प्रति

रामचरितमानस की दूसरी प्रति, जो तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई कही जाती है, लखनऊ के पास मलीहाबाद में है। वह मलीहाबाद स्टेशन से मील सवा मील की दूरी पर मुंशीगञ्ज महल्ले में एक मन्दिर के महंत बाबा जनार्दनदास के अधिकार में है। मैं ता० २१ अक्टोबर, १९३५ को प्रातःकाल उक्त महंतजी से मिला। उन्होंने तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ कहा जानेवाला वह रामायण मुझे दिखलाया। दिखलाया क्यों? दिखलवाया। क्योंकि उक्त पोथी को वे स्नान किये बिना न छूते हैं, न किसीको छूने देते हैं। उनका पुत्र स्नान करके आया, तब उसने पोथी खोली और मेरी बगल में बैठकर वह पन्ने उलटता गया और मैं देखता गया।

मलीहाबाद की प्रति अवश्य प्राचीन है। उसकी लिखावट गहरी काली स्याही और मोटे क़लम से है। काग़ज़ बहुत पुराना जान पड़ता है। पर न आदि में, न अन्त में कहीं उसके लिपि-कार या लिखे जाने के संवत् का उल्लेख है। खेद है, मेरे पास उस समय राजापुर, अयोध्या और काशी की प्रतियों की लिखावट के फोटो नहीं थे; नहीं तो मैं मिलान करके देखता कि उक्त पुस्तक की लिखावट किससे मिलती है। केवल स्मृति के आधार पर मैं कोई ठीक निर्णय नहीं कर सका। उसमें कुछ संशोधन किया हुआ मुझे कहीं नहीं मिला। वह सातों कांड है। उसमें भी 'कृपासिंधु नर रूप हरि' पाठ है।

उक्त प्रति के साथ बिना डाँड़ी का एक चश्मा भी रक्खा है, जिसे महंतजी ने तुलसीदास का चश्मा बताया। उसके बीचो-बीच, जहाँ वह नाक पर बैठता है, एक छेद है। उस छेद से

एक तागा बँधा है। वह तागा माथे पर से होता हुआ सिर पर जाकर चोटी से लपेट लिया जाता है। उसीके सहारे चश्मा दोनों आँखों के सामने लटकता रहता है। चश्मे के साथ एक माला भी है। उसे भी महंतजी ने तुलसीदास की माला बतलाई।

उक्त महंतजी के अधिकार में 'मानस' की एक प्रति और भी है, जिसमें यह समय दिया हुआ है।—

"संवत् १७७६ समये चैत्र मासे शुक्ल पक्षे प्रतिपदायां तिथौ। लिखितं द्वारकादासेन वैष्णव केदारेश्वर समिपे।"

इस प्रति को मैं हाथ में लेकर देख सका। इसका पाठ कहीं-कहीं शुद्ध करके लिखा गया है। जैसे 'सत पंच चौपाई मनोहर' के 'सत' को 'शत' लिखा है।

महन्तजी के अधिकार में वाल्मीकि रामायण, देवीभागवत, श्रीमद्भागवत, वेद, पुराण, उपनिषद्, ज्योतिष, व्याकरण और वैद्यक आदि की बहुत-सी हस्तलिखित और प्राचीन पुस्तकें हैं। खेद है, वे न उनका उपयोग करते हैं, न कर सकते हैं और न शायद किसीको करने ही देंगे। यद्यपि दीमकों ने उनकी स्वीकृति की प्रतीक्षा किये बिना ही कइयों का उपयोग कर डाला है।

'मानस' की एक प्राचीन प्रति सं० १७०४ की है, जिसका उल्लेख ना० प्र० सभा की १९०१ की खोज-रिपोर्ट में है। मैंने उसे नहीं देखा है।

राजापुर की प्रति

राजापुर में अयोध्याकांड की जो हस्तलिखित प्रति रक्खी है, वह तुलसीदास के हाथ की लिखी हुई बताई जाती है। पहले कहा जा चुका है कि राजापुरवाली प्रति की लिखावट वाल्मीकि-

रामायण की लिखावट से नहीं मिलती, जो तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ है। इसके सिवा कई स्थानों पर उसमें ऐसी अन्य त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ती हैं, जिनके आधार पर यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि वह न तो तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ है, और न तुलसीदास ने उसे कभी पढ़ा ही होगा। पढ़ा होता तो उन्होंने उसकी त्रुटियाँ अवश्य दूर कर दी होतीं। राजापुरवाली प्रति में जो त्रुटियाँ मिलती हैं, उनमें से कुछ ये हैं।—

राजापुर की प्रति में अयोध्याकांड के २५६ वें दोहे के आगे का पाठ देखिये।—

सकुचउँ तात कहत एक बाता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अन्य प्रामाणिक प्रतियों में यह पाठ मिलता है।—

सकुचौं तात कहत एक बाता।
अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥

तुम्ह कानन गँवनहु दोउ भाई।
फेरिअहि लषन सीय रघुराई॥

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥

अब विज्ञ पाठक अनुमान कर सकते हैं कि बीच की चौपाइयों के बिना अर्थ की संगति नहीं बैठती और कथा की लड़ी भी टूट जाती है। जान पड़ता है, राजापुरवाली प्रति किसी पुस्तक की नक़ल है, जिसमें नक़ल करनेवाले से 'बाता' और 'गाता' के धोखे में बीच की चौपाइयाँ छूट गई हैं।

ऐसी ही एक भूल २७६ वें दोहे के आगे भी है। उसमें यह पाठ है।—

जाइ न बरनि मनोहरताई।
राम जनक मुनि आयसु पाई॥

पर प्रचलित रामायणों में यह पाठ है।—

जाइ न बरनि मनोहरताई।
जनु महि करति जनक पहुनाई॥
तब सब लोग नहाइ नहाई।
राम जनक मुनि आयसु पाई॥

अब आप देख सकते हैं कि यहाँ भी नक़ल करनेवाला "ताई' और 'पाई' का तुक मिला हुआ देखकर धोखे में बीच की दो चौपाइयाँ छोड़ गया है।

और देखिये, २६१ वें दोहे के आगे यह पाठ है।—

करि प्रनाम तब राम सिधाये।
सील सनेह सुभाय सुहाये॥

पर प्रचलित रामायणों में यह पाठ है।—

करि प्रनाम तब राम सिधाये।
रिषि धरि धीर जनक पहिं आये॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाये।
सील सनेह सुभाय सुहाये॥

यहाँ भी "सिधाये" और "सुहाये" के धोखे में लेखक का दृष्टि-दोष स्पष्ट है।

इन्हीं प्रमाणों के आधार पर निस्सन्देह कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने राजापुरवाली प्रति अपनी आँख से देखी भी नहीं। नहीं तो चौपाइयों की कमी उन्हें अवश्य खटकती और छूटी हुई चौपाइयों को वे कहीं न कहीं हाशिये पर लिख दिये होते। पर इसमें भी संदेह नहीं कि राजापुर की प्रति बहुत पुरानी है और वह तुलसीदास के हाथ की न होने पर भी उनके समय की या उनके बाद थोड़े ही समय पीछे की अवश्य है। क्योंकि उसका काग़ज़ भी बहुत पुराना है और उसकी लिखावट भी।

मैंने कई वर्ष पहले अपने एक लेख में जनश्रुति के आधार पर यह सूचना दी थी कि राजापुर की प्रति किसी रघुबर तेवारी के हाथ की लिखी हुई है। इसपर मेरे माननीय मित्र रायबहादुर लाला सीताराम ने मेरे उक्त लेख के उत्तर में एक लेख 'माधुरी' में प्रकाशित कराया था। उससे कुछ नई बातें प्रकाश में आती हैं। यहाँ मैं उसका उद्धरण देता हूँ।—

"आजकल रघुबर तिवारी का नाम सुनकर लोग चौंक पड़ेंगे; परन्तु रघुबर तिवारी के हाथ की वि० १७०४ (गोस्वामीजी के परमपद पाने से २४ ही वर्ष पीछे) की लिखी पोथी के ३ पृष्ठों का फोटो-चित्र "मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दोस्तान" में दिया हुआ है, और उसके एक-एक पृष्ठ का अँगरेज़ी रूपान्तर भी छपा है। पहला पृष्ठ बालकांड का है, दूसरा किष्किन्धा और तीसरा लङ्का का। पहले में लेखक का नाम नहीं है। इससे वह अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया जाता है। दूसरे और तीसरे पृष्ठों की नक़ल नीचे दी जाती है।—

२. (स) सुकृत परम पद पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

दोहा—भवभेषज रघुनाथ जसु,
सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ,
सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

सोरठा—नीलोत्पल तन स्याम,
काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिय तासु गुन ग्राम,
जासु नाम अघ षग बधिक॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विसुद्ध संतोष सम्पादिनी नाम चतुर्थस्सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत् १७०४ समए पौष शूदि द्वादसि लिषीतं रघु तीवारी कास्यां।

३. (लङ्काकांड का अन्त)

... ...दास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारिचरित्र पावन रामपदरतिप्रद सदा।
कामादिहर बिज्ञानकर सुरसिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

दोहा—समर विजय रघुपतिचरित,
सुनहिं जे सदा सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित,
तिनहिं देहिं भगवान॥

यह कलिकाल मलायतन,
मन करि देखु बिचार।
श्रीरघुनायक नामु तजि,
नहिं कछु आन अधार॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल विराग संपादिनी नाम षष्ठः सोपानः समाप्तः। शुभमस्तु संवत्

१७०४ समए। माघसूदि प्रतिपद लिषीतं रघु तिवारी कास्यां लोलार्क समीपे। श्रीरामोजयति। श्रीविश्वनाथाय नमः। श्रीविंदु-माधवाय नमः।

राजापुर की पोथी पर लेखक के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस प्रति में प्रत्येक कांड के अन्त में लेखक का नाम दिया हुआ है। कहीं रघु तिवारी है, कहीं रघु तीवारी। दोनों के अक्षरों में आकाश-पाताल का अन्तर है।"

यह प्रति अब दुर्लभ है।

अन्य भाषाओं में रामचरितमानस के अनुवाद

रामचरितमानस की लोक-प्रियता हिन्दी-प्रान्तों ही तक सीमित नहीं है। उसके अनुवाद भारत की अन्य भाषाओं में भी, कहीं गद्य में और कहीं पद्य में, होगये हैं। यहाँ कुछ अनुवादों के संक्षिप्त परिचय दिये जाते हैं।—

संस्कृत-अनुवाद

इटावे के पण्डित सेवाराम के पास इस पुस्तक की हस्त-लिखित प्रति है। इसके दो कांड, सुन्दर और अरण्य, छप भी चुके हैं। इसका छपा हुआ सुन्दरकांड मैंने देखा है। इस 'संस्कृतप्राकृताभ्यां समन्वितम् सुन्दरकांड' को उन्नाम प्रदेशान्तर्गत तारग्राम वास्तव्य पं० बलभद्रप्रसाद शुक्ल, बी० एस-सी०, असिस्टेंट मास्टर, इटावा तथाच पंडित रामनारायण मुंसरिम, मुंसिफी इटावा ने नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सं० १९९८ में और अरण्य-कांड को १९९९ में प्रकाशित कराया है। सम्पादकों का दावा है कि यह वही रामचरितमानस है, जिसकी रचना शिवजी ने की थी और जिसे उन्होंने पार्वती को सुनाया था। यहाँ इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।—

मूल

जामवन्त के बचन सुहाये।
सुनि हनुमान हृदय अति भाये।

संस्कृत

ततो जाम्बवतो वाचा
शुभा हृदयहारिणी।

श्रुत्वा हनुमतश्चित्ते
बभूवानन्दकारिका ॥

मूल

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो,
कहहिँ बचन भय आस ।
राज देह अरु धर्म कर,
होहि बेगही नास ॥

संस्कृत

मंत्री वैद्यो गुरुश्चैते
चाटुकारादरादपि ।
राष्ट्रविग्रहधर्माणा-
माशुनाशस्तदा भवेत् ॥

मूल

मेरे हृदय प्रीति अस होई ।
की तुम हरिदासन महँ कोई ।

संस्कृत

अवश्यं हरिभक्तेषु
त्वं कोपि इति निश्चितम् ।
त्वयि प्रीतिर्मम हृदि
प्रतीतिरिति जायते ॥

इस 'संस्कृत रामचरितमानस' के सम्बन्ध में विज्ञवर पंडित खड्गजीत मिश्र ने दिसम्बर, १६१२ की सरस्वती में एक छोटा-सा नोट लिखा था, उसमें उनका कथन ध्यान देने योग्य है ।—

"पंडित सेवाराम की कृपा से मैंने इस हस्तलिखित 'अपूर्व-

रत्न' के दर्शन किये हैं। वह सर्गों में विभाजित है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में यह लिखा है—इति श्रीमद्रामायणे रामचरितमानसे महाकाव्ये सकल कलुष विध्वंसने उमामहेश्वरसंवादे—काण्डे—सर्गः।

प्रत्येक सर्ग के अन्त में कुछ शब्द मिटे से मालूम पड़ते हैं। ध्यान देकर देखने से विदित होता है कि उन मिटे हुये शब्दों का अन्तिम शब्द 'कृते' है। 'कृते' के पहले के चार अक्षर नहीं पढ़े जाते। इसका कारण समझ में नहीं आता कि प्रत्येक सर्ग के अन्त में ग्रन्थकर्त्ता का नाम क्यों मिट अथवा मिटा दिया गया है।—यह (मानस) आधुनिक मालूम पड़ता है।"

उड़िया-अनुवाद

मेरे मित्र पंडित लोचनप्रसाद पांडेय (बिलासपुर) के 'माधुरी' में प्रकाशित एक लेख से ज्ञात होता है कि उड़िया में रामचरितमानस के चार अनुवाद हैं। पहला अनुवाद गोविन्दसाव नामक एक तेली ने किया था। उसने अपने अनुवाद का नाम 'गोविन्द-रामायण' रक्खा है। अनुवाद के विषय में वह लिखता है।—

तुलसीदासंकर ए रामायण-सार।
अर्थ देखि लेखइ गोविन्दसाहु छार॥

यह अनुवाद उसने सं० १६२० के आसपास किया था। यहाँ उसके अनुवाद का कुछ अंश मूल के साथ दिया जाता है।—

मूल

नीति निपुन सोइ परम सयाना ।
श्रुति सिद्धान्त ठीक सोइ जाना ॥

सोइ कवि कोविद सोइ नर धीरा ।
जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा ॥

उड़िया

नीति रे निपुण सेहि परम चतुर ।
निगम सिद्धान्ते दक्ष सेहि भाग्यधर ॥

सेहिटि कवि कोबिद सेहि नर धीर ।
छल त्यागि करे जेहू भजे रघुबीर ॥

शेष तीन अनुवाद खरियार के राजा वीर विक्रमसिंह, बाबू रामप्रसाद ओहिदार के बड़े भाई और पंडित स्वप्नेश्वरदास ने किये हैं।

रायबहादुर कविवर राधानाथरायजी ने तुलसीदास के वर्षा और शरद्वर्णन का अनुवाद उड़िया में किया है। उसका एक नमूना यहाँ दिया जाता है।—

मूल

बूँद अघात सहैं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे ॥

उड़िया

सहंति धारापात शइलगण।
खल बचन यथा सहे सुजन ॥

बँगला-अनुवाद

पहला अनुवाद पुरुलिया (बंगाल) के वकील श्रीमदन-मोहन चौधरी, बी० एल० ने 'पयार' और 'त्रिपदी' छन्दों में किया था। दूसरा अनुवाद 'तुलसी-चरितामृत' नाम से प्रकाशित हुआ था। श्रीसतीशदास गुप्त ने अभी हाल ही में एक और अनुवाद किया है, जो कलकत्ते के 'खादी-प्रतिष्ठान' से प्रकाशित हुआ है। बँगला-अनुवादों में मूल के शब्दों की रक्षा बड़ी सावधानी से की गई है। यहाँ 'तुलसी-चरितामृत' से मूल के साथ अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं।—

मूल

कोटि मनोज लजावनहारे।
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

बँगला

जॉर रूप हेरि लज्जा पाय कोटि मार।
सुमुखि बलना तिनि के हन तोमार?

मूल

सहज सुभाव सुभग तनु गोरे।
नाम लखन लघु देवर मोरे॥

बँगला

सरल स्वभाव गौर तनु सुशोभन।
कनिष्ठ देवर मोर नाम श्रीलक्ष्मण॥

मूल

बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥

खंजन मंजु तिरीछे नैननि ।
निज पति कहेउ तिनहिं सिय सैननि ॥

बँगला

अंचल ढाँकिया पुनः सुधाकरानने ।
भ्रू बक्र करिया चान प्रियतम पाने ।
मंजुल खंजन आँखि करि बक्राकार ।
इंगिते कहेनि रामे पति आपनार ॥

मराठी-टीका

यह टीका सन् १९१३ में पूने से प्रकाशित हुई थी। इसके टीकाकार श्रीमंत यादवशंकर जामदार संस्कृत-साहित्य के अच्छे ज्ञाता और कवियों के मर्मस्पर्शी विद्वान् थे। इनकी मराठी-टीका का नमूना यहाँ दिया जाता है।—

मूल

यहि तन कर फल विषय न भाई ।
स्वरगउ स्वल्प अन्त दुखदाई ॥
नर तनु पाइ विषय मन देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई ।
गुंजा ग्रहइ परसु मनि खोई ॥

मराठी

बाबानों ! ह्या नरदेहाचें साध्य विषयोपभोग हें नव्हे । ह्या नरदेहाला जरी स्वर्गसुख मिळालें तरी तें क्षुद्र असून अंतीं दुःखदायक आहे । नरदेह प्राप्त होऊन विषयांत मन घालणें ह्मणजे अमृत देऊन मूर्खपणानें विष प्राशन करण्या-सारखें आहे । त्यास कधी-

सुद्धां कोणीं बरें ह्मणणार नाहीं। तो परीस गमावून गुञ्जांचाच स्वीकार करील।

गुजराती-टीका

सस्तुं साहित्य-वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद के संचालक भिक्षु अखंडानन्द ने पंडित छोटालाल चन्द्रशङ्कर शास्त्री से रामचरितमानस की टीका कराके प्रकाशित किया है। टीका के साथ तुलसीदास का जीवन-वृत्तान्त भी दिया गया है। टीका का परिचय आगे दिया जाता है।—

मूल

सब विधि सोचिय पर अपकारी।
निज तनु पोषक निर्दय भारी॥

गुजराती

जे बीजानों अपकार करतो होय तथा पोतांना शरीरनो पोषक अने अतिशय निर्दय होय, तेनो सर्व प्रकार शोक करवो जोइये।

कई वर्ष हुये, महात्मा गाँधी ने वर्धा में मुझे बताया था कि गुजराती में रामचरितमानस की एक और टीका प्रकाशित हुई है। उसकी वे प्रशंसा भी कर रहे थे; पर वह मेरे देखने में नहीं आई।

अँग्रेज़ी-टीका

यह अनुवाद श्री एफ० एस० ग्राउस, (B. C. S. M. A. Oxon., C. I. E., Fellow of the Calcutta University ने अँग्रेज़ी गद्य में किया है। इसका छठा संस्करण इलाहाबाद के बुकसेलर श्रीरामनरायनलाल ने सन् १९२२ में प्रकाशित

किया था। इसमें एक-एक शब्द का अनुवाद करके कवि के भावों को स्पष्टता से व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया गया है। इसमें मूल नहीं दिया गया है; केवल दोहे का नम्बर देकर चौपाइयों का पुञ्ज अलग करके टीका की गई है। उदाहरण।—

मूल

मुखिया मुख सों चाहिये, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

अँग्रेज़ी

ए चीफ़ शुड बी लाइक दि माउथ, विच अलोन (सेज़ तुलसी) डज़ ऑल दि ईटिंग ऐण्ड ड्रिंकिंग ऐंड यट सपोर्ट्स ऐण्ड नरिशेज़ टू ए नाइसटी ईच सेपरेट मेम्बर ऑव दि बॉडी।

रामचरितमानस की हिन्दी-टीकायें

हिन्दी में रामचरितमानस पर अबतक बीसों टीकायें हो चुकी हैं। फिर भी मानस-भक्तों को अभी तृप्ति नहीं हुई है। इस समय भी कुछ टीकायें लिखी जा रही हैं और कुछ छपने पर हैं। यहाँ कुछ मुख्य-मुख्य प्राचीन टीकाओं के संक्षिप्त परिचय उदाहरणों के साथ दिये जा रहे हैं।—

ज्ञानी संतसिंह (पंजाबीजी) की टीका

(मानस-भाव-प्रकाश)

नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करो सु मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन॥

अर्थ—इन्दीबर सम जिनका रुचिर रूप अरु रक्त कमलों सम दृग है। अरु खीर-निधि में जिनका सयन है। सो मेरे रिदै बिषे बसो। तत्व यह अपणा विश्राम करके मेरे रिदै को भी पयनिधिवत उज्ज्वल अरु गंभीर करो।

यह टीका संवत् १८८८ में लिखी गई थी।

श्रीबैजनाथजी कूर्मवंशी की टीका

ध्वज कुलिश अंकुश कंज युत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुन्द राम रमेश नित्य भजामहे॥

अर्थ—जिन पायँन में ध्वजा चिन्ह जाके ध्यानते विजय मिलती है। पुनः कुलिश बज्र-चिन्ह है, जाके ध्यान ते कमल-पत्रवत् भवजल

नहीं छुइ जात। ऐसे-ऐसे प्रभाव हैं जिनमें ते अरतालिस चिन्ह दोऊ पायन में हैं, तिन चिन्हनयुत पद-कंज बन में फिरत समय काँटा काँकरन लह्यउ उन पाँवन को स्पर्श पाइ कृतार्थ भयं।

यह टीका मुंशी नवलकिशोर, लखनऊ के छापेखाने में, जनवरी सन् १८६० ई० में छपी थी।

पंडित शिवलाल पाठक की टीका

पंडित शिवलाल पाठक का जन्म सं० १८१३ में गोरखपुर के सोनहुला गाँव में हुआ था। ये मानस के एक प्रसिद्ध व्याख्याता हो गये हैं। इन्होंने मानस-अभिप्राय-दीपक, मानस-भाव-प्रभाकर और मानस-मयंक नाम के तीन ग्रन्थ रचे थे। उदाहरण—

श्रीमन्मानस-अभिप्राय-दीपक (पद्य)—

मूल

धर्म सनेह उभय मति घेरी।
भइ गति साँप छछूँदरि केरी॥

टीका

मरन नेह क्लेदन धरम,
उर कैकयि जल जानि।
दुर्गंधहि उत्सर्प तजि,
सुत इत रानि सयानि॥

यह टीका सातो कांडों के मुख्य-मुख्य सैद्धान्तिक दोहों चौपाइयों पर है। इस टीका की टीका श्रीयुक्त इन्द्रदेवनारायण ने गद्य में की है। यह खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से प्राप्य है। मेरे सामने इसका सन् १६२० का संस्करण है।

श्री देवतीर्थ (काष्ठजिह्वा) स्वामी की टीका

(मानस-परिचर्या)

मूल

बंदौ गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।

टीका

पदुम में चारि गुन है, रुचि, बास, रस, रंग ये सब गुन पराग में हैं।

संका। चरन रज की बड़ाई कौने हेतु से बहुत कही। समाधान। चरन में अंगुष्ठ सेषनाग है, अँगुरी दिग्गज हैं, पृष्ठ कूर्म है, एड़ी बराह है, तरवा सगुन ब्रह्म हैं, रज सत्ता स्वरूप है, एही हेतु से रज की बड़ाई कही।

श्रीमन्महाराज द्विजराज काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर, (जी० सी० एस० आई०) की टीका

(मानस-परिचर्या-परिशिष्ट)

चौपाई वही, जो ऊपर मानस-परिचर्या के उदाहरण में है।

टीका—रुचि का उहाँ कौन प्रयोजन ? बाजे चीज में गन्ध है जैसे चोआ, परन्तु रुचि नाहीं, बाजे चीज में रुचि है गंध नाहीं, जैसे सोना। बाजे चीज में सुगंध रुचि सरस है पै रंग नाहीं, जैसे सिखरन, रज में चारो।

परमहंस श्रीसीतारामीय हरिहरप्रसादजी की टीका

(मानस-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश)

चौपाई वही, जो ऊपर मानस-परिचर्या के उदाहरण में है।

टीका—सुन्दर रुचि करिकै सुन्दर वासना करिकै सुन्दर सरस अनुराग करिकै गुरु पद्म पराग को बन्दत हौं।

उक्त तीनों टीकाकारों की टीकायें एक ही जिल्द में "रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश" नाम से सं० १६५५ में खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर में प्रकाशित हुई थी।

मुन्शी शुकदेवलाल (मैनपुरी-निवासी) की टीका

(मानस-हंस-भूषण)

मूल

कादर मन कहँ एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

टीका—और दैव दैव दैव यह जो आलसी पुकार है सो तो असमर्थ जीवों के मन को एक यही अधार है।

यह टीका कलि-संवत् ४६७० में लिखी गई और नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ से सं० १६१२ में प्रकाशित हुई।

मेरे देखने में जितने मानस आये, उनमें केवल उक्त मुन्शीजी ही ने बाल-कांड के प्रारम्भ में 'नर रूप हर' पाठ रक्खा है।

महन्त श्रीरामचरणदासजी (अयोध्या-निवासी) की टीका

मूल

निज भ्रम नहिं समुझहिं अज्ञानी ।
प्रभु पर मोह धरहिँ जड़ प्रानी ॥

टीका—हे भरद्वाज मुनि ! श्रीमहादेवजी बोलते भये, हे पार्वती ! सुनु यहै तेरो कहना अनुचित भयो है जो तुम कहेहु कि राम आन हैं ऐसो तौ ते कहहिं जे प्राणी अज्ञानी हैं जे अपनो भ्रम नहीं समझते हैं अस अपनो मोह प्रभु विषे रोपण करते हैं यह कहते हैं कि जो राम परमेश्वर परब्रह्म होते तौ जानकीजी को क्यों ढूँढ़ते फिरते तहाँ प्रभु की चित्र विचित्र लीला वे जड़ प्राणी कहा जानै हैं ।

यह टीका नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुई है। इसमें तुलसीदास की जीवनी भी दी हुई है, जो बैजनाथजी कुरमी की बनाई हुई पद्य में है; पर इसमें उनका नाम नहीं दिया है।

पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र की टीका

(संजीवनी)

यह टीका मुरादाबाद-निवासी स्व० पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने सन् १६०४ में लिखी थी और यह श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुई थी। यह क्षेपक-सहित है, और इसमें भी तद्भव शब्दों को शुद्ध करके छापा गया है।

मूल

रुचिर चौतनी सुभग शिर , मेचक कुञ्चित केश ।
नख शिख सुन्दर बंधु दोउ , शोभा सकल सुदेश ॥

टीका

प्रकाशमान चौतनी अर्थात् चार कोनकी टोपी सुन्दर शिर पर लगी है और मेचक अर्थात् अतिश्याम कुञ्चित टेढ़े केश हैं दोनों भाई नखशिख से सुन्दर हैं और सकल शोभा जो मूर्तिमान् हैं वह औरों के अङ्ग में मानों कालदेशमें पड़ी हुई थी, किन्तु इनके अङ्ग सुदेश में आकर मोटी हो गई है।

पंडित रामेश्वर भट्ट की टीका

(पीयूषधारा)

यह टीका आगरा-निवासी स्वर्गीय पंडित रामेश्वर भट्ट ने सं० १९५६ में समाप्त की। इसका सं० १९८१ का सातवाँ संस्करण मेरे सामने है। इसमें भी कहीं-कहीं मूल के तद्भव शब्दों को तत्सम कर दिया गया है और बीच-बीच में क्षेपक भी जोड़ दिये गये हैं।

मूल

मुनि सुसीलता आपनि करनी।
सुरपति सभा जाइ सब बरनी॥
सुनि सबके मन अचरज आवा
मुनिहिं प्रसंसि हरिहिं सिर नावा॥

टीका

और मुनि की सुशीलता और अपनी करनी इन्द्र की सभा में जाकर वर्णन करी। यह सुन सबके मनमें आश्चर्य हुआ, सबने मुनि की प्रशंसा कर प्रभु को दण्डवत करी।

श्रीरामप्रसादशरण की टीका

मूल

सीता चरन चोंच हति भागा ।
मूढ़ मन्द मति कारन कागा ॥

टीका

जानकीजी के चरण में चोंच मारकर भागा। ऐसा क्यों किया? उस पर कहते हैं कि मूढ़ अर्थात् अज्ञानी है—बुद्धिहीन है। इसीसे सब पक्षियों में अधम जो काक है वही शरीर धारण किया। पक्षी जबतक उड़ते रहते हैं तबतक उनका पग सिमटा रहता है। जब कहीं बैठ जाते हैं तब पग से कुछ कार्य कर सकते हैं। कोई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि श्रीजानकीजी को चरण और चोंच मारकर भागा।

पंडित विनायकराव की टीका

यह टीका जबलपुर के स्वर्गीय पंडित विनायकराव ने सं० १९७१ में लिखी थी। यह टीका कथा बाँचनेवाले पंडितों के बड़े काम की है; क्योंकि इसमें प्रत्येक प्रसंग पर हिन्दी के अन्य कवियों के छन्द और गाने दिये हुये हैं। इसमें भी संस्कृत शब्दों के शुद्ध रूप दिये गये हैं। इसमें प्रत्येक कांड के अन्त में एक विस्तृत 'पुरौनी' दी गई है, जिसमें कांड भर की शङ्काओं का समाधान तथा अनेक ज्ञातव्य बातों का समावेश भी कर दिया गया है।

मूल

परवश सखिन लखी जब सीता ।
भयउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥

पुनि आउब इहि बिरियाँ काली ।
अस कहि मन बिहँसी इक आली ॥

टीका

जब सखियों ने देखा कि सीताजी तो दूसरे के अधीन हो रही हैं (अर्थात् रामचन्द्रजी के प्रेम में पग गई हैं), तब तो सबकी सब डर के मारे कह उठीं कि देरी होगई है । (इतने ही में) एक सखी यह कहकर कि 'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' मन ही मन मुसकराने लगी ।

सूचना—'पुनि आउब इहि बिरियाँ काली' इन शब्दों के विषय में गोस्वामीजी आगे लिखते हैं कि 'गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी' इससे स्पष्ट है कि इसमें बहुत गूढ़ भाव भरा हुआ है सो यों कि—

(१) 'इसी समय कल फिर आवेंगी, अर्थात आज विशेष प्रेम के कारण बहुत देरी हो चुकी है सो जल्दी घर चलो कल फिर आवेंगी ।

(२) आज तुमने पूजा के हेतु यहाँ आकर इतनी देरी लगाई है सो 'कल फिर इसी समय आ सकोगी क्या' ? अर्थात् माताजी कल न आने देवेंगी ।

(३) राजकुमारों को यहाँ एकान्त में देख लेने का सुअवसर आज ही मिला है 'कल फिर क्या ऐसा समय आवेगा ? अर्थात् नहीं आवेगा, कारण धनुष-यज्ञ हो चुकेगा ।

(४) सखी यह दर्शाती है कि अब चलो घर चलें कल यही समय फिर आवेगा । अर्थात् कल इसी समय धनुष-यज्ञ होगा । वहाँ सब राजाओं के साथ ये राजपुत्र भी आवेंगे तब इन्हें फिर देख लेना ।

बाबू श्यामसुन्दरदास की टीका

यह टीका इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई है।

मूल

करत बतकही अनुज सन,
मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छवि,
करत मधुप इव पान॥

टीका

रामचन्द्रजी वार्तालाप लक्ष्मणजी से कर रहे हैं, पर मन सीताजी के रूप पर लुभाया हुआ है। जैसे भँवरा कमल के ऊपर बैठकर उसके मकरन्द (फूल के रस) को पीता है, और पीते समय चुप रहता है, फिर थोड़ी देर में उसीके आसपास गूँजता है, वैसे ही यहाँ सीताजी के मुखकमल के छवि (कान्ति) रूपी मकरन्द को रामचन्द्र का मनरूपी भँवर पान कर रहा है। भँवर फूल का रस पीते समय उस फूल को तकलीफ़ देना नहीं चाहता; इसलिये बारम्बार उड़-उड़कर गूँजने लगता है। यहाँ भी रामचन्द्र उस मुख-छवि को एकदम नहीं निहारते, बीच-बीच में लक्ष्मणजी से बातचीत करने लग जाते हैं।

पंडित महावीरप्रसाद मालवीय की टीका

यह टीका, सं० १९८२ में बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी।

मूल

सुर नर मुनि कोउ नाहिँ,
जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिँ,
भजिय महामाया-पतिहिँ॥

टीका

देवता, मनुष्य और मुनियों में कोई ऐसा नहीं है कि जिसको बलवती माया मोहित न करती हो। ऐसा मन में विचारकर विशाल मायाधीश का भजन करना चाहिये।

श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय सावंत की टीका

(मानस-पीयूष)

मानस की टीकाओं में यही टीका सबसे बड़ी है। इसमें एक-एक शब्द पर बहुत बारीकी से विचार किया गया है। इसका मूल्य भी संभवतः ३५) के लगभग है।

यह टीका सात-आठ वर्षों के लगातार परिश्रम से तुलसी-सं० ३११ (वि० सं० १९९१) में सम्पूर्ण हुई।

मूल

गिरिजा सुनहु राम कै लीला।
सुर हित दनुज बिमोहन सीला।

टीका

दनुज=दैत्य, असुर, दनु से उत्पन्न। दनु दक्ष प्रजापति की कन्या का नाम है जो कश्यप ऋषि को ब्याही गई। इसके

४० पुत्र हुये, जो सब दानव कहलाते हैं। इन सबके पुत्र पौत्रादिक भी दानव कहलाते हैं।

सीला=परिपूर्ण; 'शील' का अर्थ स्वभाव भी लोगों ने किया है।

अर्थ—हे गिरिजे! सुनो, श्रीरामचन्द्र की लीला देवताओं का हित और दैत्यों को विशेष मोहित करनेवाली है।

नोट—इस चैापाई की जोड़ की चैापाइयाँ अयोध्या, आरण्य और उत्तरकांडों में भी हैं।—

नर तन धरेउ संत सुरकाजा।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा।
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे।
जड़ मोहहिँ बुध होहिँ सुखारे।

उमा राम गुन गूढ़,
पंडित मुनि पावहिँ बिरति।
पावहिँ मोह विमूढ़,
जे हरि बिमुख न धरम रति॥

असि रघुपति लीला उरगारी।
दनुज बिमोहन जन सुखकारी।

नोट—'सुरहित दनुज विमोहन सीला।'—देवताओं को हितकारिणी और दैत्यों को अहितकारिणी है। तात्पर्य यह है कि दैवी सात्विक बुद्धि वाले सज्जनों में इससे भक्ति, वैराग्य, विवेक की वृद्धि होती है। उनका लोक परलोक दोनों बनता है। और राजस और तामस वृत्ति वालों में मोह की विशेष वृद्धि होती है। ये शास्त्रों में सुनते हुये भी मूढ़ बन जाते हैं। ईश्वर को प्राकृत नर ही कहने लगते हैं।

ये दो विरोधी बातें एक ही वस्तु से कैसे ? जैसे स्वाती जल तो वही होता है पर उसका बूँद पृथक्-पृथक् वस्तुओं में पड़ने से उनमें पृथक्-पृथक् गुण उत्पन्न करता है। देखिये सीप में पड़ने से वह मोती बन जाता है, वही केले में पड़ने से कपूर; बाँस में बंसलोचन, गोकर्ण में गोलोचन बन जाता है और सर्प में उसीसे विष की वृद्धि होती है।

पुनः देखिये भगवान् श्रीकृष्ण के जिस अद्भुत रूप को अर्जुन देखकर उनकी शरण गया उसीको दुर्योधन ने देखकर नट का खेल कहा। इत्यादि।

नोट—श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि शिवजी यह कहकर पार्वती-जी को सावधान कर रहे हैं कि देखो फिर लीला में मोहित न हो जाना। इसी प्रकार जब आरण्यकांड में पहुँचे तब भी सावधान किया है क्योंकि वहाँ तो वही लीला वर्णन होगी कि जिससे उसे सती तन में मोह हुआ था।

अलंकार—रामलीला तो वही एक और उससे दो विरुद्ध कार्य होते हैं—देवताओं का हित और दैत्यों का मोहित होना अर्थात् अनहित। अतएव प्रथम व्याघात अलंकार हुआ।

रामचरितमानस का भूगोल

इस विषय पर सं० १९८० के श्रावण मास की माधुरी में सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ स्वर्गीय श्री हीरालाल ने एक लेख लिखकर अच्छा प्रकाश डाला है। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है—

"रामायण में भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं हैं। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्याय-वाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कोशला, कोशलपुर, कोशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर, ये नाम १०० से अधिक बार आए हैं। अकेले अयोध्या-कांड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरि और उसके पर्यायवाची सुरसरिता, देवसरि, देव-धुनी, विबुध-नदी और गंग या गङ्गा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लङ्का, २६ बार हिम-गिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू, ११ बार यमुना, १० बार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दंडक और पंचवटी, ५ बार शृङ्गवेर-पुर या सिंगरौर, ४ बार मंदाकिनी, विंध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षण-गिरि, त्रिकूट-गिरि और अशोक-वन और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकल-सुता, सई, नील-गिरि, सेतुबन्ध और सुबेल के नाम नहीं आये। प्रसङ्गानुसार नंदि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकय-देश, मग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोन-नद, मानस, पंपासरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि का नाम भी कम से कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गए हैं; जैसे—सुमेरु, सरस्वती, सप्तद्वीप, भोगवती, अमरावती, मन्दर, मैनाक आदि। कई स्थलों में राजों आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से बतलाये गए हैं, जैसे

अवधेश, अवध-पति, कोशलेश, और कोशलाधीश। लङ्का-कांड में तो कोशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुति-राउ, विदेह और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों में सूचित किया गया है। रावण के लिये लंका-पति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।

राम-वनवास के संबंध में जितने भौगोलिक नाम चाहिये, उतने तो नहीं हैं, फिर भी कुछ मुख्य-मुख्य स्थानों के नाम आ ही गये हैं। अवध के निकटस्थ स्थानों के नाम कुछ विशेष हैं; परन्तु ज्यों-ज्यों वहाँ से फासला बढ़ता गया है, त्यों-त्यों स्थलों के नाम न्यून होते गये हैं। राम-प्रवास के तीन अड्डे मुख्य हैं; चित्रकूट, पंचवटी और प्रवर्षण-गिरि। पहले अड्डे तक तो सई-सरीखी सड़ी नदी पार करने का भी उल्लेख है।

चित्रकूट के आगे बहुत ही बड़े भौगोलिक स्थलों का नाम कहीं-कहीं आ गया है; नहीं तो मुनियों के आश्रमों से राम-भ्रमण के पते का इङ्गित-भर किया गया है। दूसरे अड्डे से लंका पहुँचने तक बहुत ही कम नाम लिखे गये हैं।

यद्यपि बाल-कांड में राम-विवाह तक का वर्णन है, तथापि उसमें प्रायः सभी स्थानों के नाम आ गए हैं; क्योंकि आदि में तुलसीदास ने कथा-प्रसंग से रामायण का सार ही वर्णन कर दिया है।

सबसे मुख्य स्थान अयोध्या है; जहाँ राम का जन्म हुआ। अयोध्या इसी नाम से अब भी वर्तमान है, यद्यपि उसका विस्तार बहुत छोटा हो गया है और वहाँ अब कोई ऐसे चिन्ह विद्यमान नहीं हैं, जो राम के समय के हों। जन्मस्थान पर एक चबूतरा बना है।

रामायण में अवध शब्द का बहुत उपयोग किया गया है।

अयोध्या-शब्द केवल उत्तर-कांड में एक बार ही उपयोग में लाया गया है। किष्किंधा-कांड को छोड़कर कोई कांड ऐसा नहीं, जिसमें अवध का नाम किसी रूप में न आया हो। किष्किंधा में भी कोशलेश-शब्द आया है; जो राम की जन्म-भूमि का स्मरण कराता है। राम का विवाह मिथिला में हुआ, इसलिये उसका ज़िक्र बाल-कांड में कई बार मिथिला, विदेह-नगर, विदेह-पुर, जनक-पुर और तिरहुत के रूप में किया गया है। इसकी स्थिति नैपाल की तराई में बतलाई जाती है। लोग वहाँ तीर्थ-यात्रा को जाया करते हैं।

बाल-कांड में जिन दो-चार देशों के नाम आये हैं, वे गुण-अवगुण दिखलाने के लिये लिखे गये हैं, न कि भौगोलिक संबंध से; यथा—"कासी-मग सुरसरि, कर्मनासा; मरु, मालव, महिदेव गवासा।" अयोध्या-कांड में भी "कर्मनास जल सुरसरि परई; तेहि को कहहु, सीस नहिं धरई।" जैसे गङ्गा तारनेवाली और कर्मनासा नदी कर्म का नाश करनेवाली है, वैसे ही काशी मोक्ष देती है। और, "मगहर मरै, सो गदहा होई।" यदि मगहर का अर्थ मगध है, तो वह भी कुदेश का सूचक है। कर्मनाशा-नदी कैमोर-पर्वत से निकलकर चौसा के पास गङ्गा से मिली है। राजपूताने का मरु-स्थल और उसी से लगा हुआ मालवा-देश, ये ऊसर और उपजाऊ की सीमा दिखाते हैं। ऐसी ही उपमाओं के प्रसंग में नर्मदा और सोन का नाम आ गया है। तुलसीदास लिखते हैं—राम-कथा शिव को 'मेकलशैल-सुता-सी' प्रिय है। अयोध्या-कांड में बड़ी नदियों के संबंध से 'मेकल-सुता' का नाम लिया गया है—"सुरसरि, सरस्वति, दिनकर-कन्या; मेकल-सुता, गोदावरि धन्या। सब सर, सिंधु, नदी, नद नाना; मंदाकिनि कर करहिं बखाना।" ऐसे ही सरयू की प्रशंसा में सोन का नाम आ गया है—"राम, भक्ति-सुरसरितहिं जाई; मिली सुकीरति-सरजु सुहाई। सानुज राम

समर-यश पावन; मिलेउ महानद सोन सुहावन।" नर्मदा और सोन, दोनों अमरकंटक से निकली हैं, और एक खंभात की खाड़ी में तथा दूसरी गङ्गा में जा मिली है। सोन पुरुष-वाची महानद कहलाता है। वह नर्मदा से विवाह करना चाहता था; परन्तु नर्मदा की अप्रसन्नता हो जाने से सम्बन्ध न हो सका। रामावतार का हेतु वर्णन करते समय 'तीरथबर नैमिष बिख्याता' का नाम भी आ गया है; जहाँ स्वायंभुव मनु तप करने के लिये 'पहुँचे जाइ धेनु-मति-तीरा।' नैमिषारण्य, अवध में, सीतापुर से २० मील, गोमती के बाएँ किनारे पर है। अब इसको नीमखार या नेमसार कहते हैं। रामावतार-वर्णन के सिलसिले ही में प्रतापभानु का ज़िक्र आता है। यह केकय-देश का राजा था। केकय-देश काश्मीर-राज्य में है। उसका वर्तमान नाम कक्का है।

अयोध्या के उत्तरीय अंचल-स्थ चार और स्थानों के नाम आते हैं—हिम-गिरि, कैलास, बदरीबन और मान-सरोवर। हिम-गिरि, हिमाचल, हिमवंत, गिरीश, गिरि-पति आदि हिमालय के नाम हैं। उसका ज़िक्र पार्वती के पिता के रूप में अनेक बार किया गया है। कैलाश या शिव-शैल इसी पर्वत की एक चोटी है, और बदरीवन वर्तमान बदरीनाथ है। मानसरोवर हिमालय-श्रेणी ही में प्रख्यात झील है। मालवे की प्रख्यात उज्जयिनी का नाम कागभुशुंडि के भ्रमण में, न कि राम-चरित के संबंध में, आया है। इन स्थानों का निबटारा होने से अब केवल वे ही स्थान बच रहते हैं जो राम-वनवास के समय राम के मार्ग में पड़े, या प्रवास के सम्बन्ध से उनकी चर्चा उठी।

राम अवध से चित्रकूट तक जिस मार्ग से गये, उसके विषय में मत-भेद नहीं है। अवध से चलकर 'तमसा-तीर निवास किय प्रथम दिवस रघुनाथ।' तमसा या टौंस एक छोटी-सी नदी है; जो अयोध्या के पश्चिम से निकलकर बलिया के पास गङ्गा में

मिली है। दूसरा मुक़ाम गङ्गा के किनारे श्रृङ्गवेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) में हुआ। तीसरा मुक़ाम एक वट-वृक्ष के नीचे, और चौथा मुक़ाम तीर्थराज प्रयाग में हुआ। वहाँ से चलकर पाँचवाँ मुक़ाम शायद यमुना के किनारे और छठा वाल्मीकि के आश्रम में हुआ। परन्तु वहाँ ठहरने का कुछ पता नहीं लगता। वाल्मीकि ने उन्हें चित्रकूट में वास करने का उपदेश दिया। यदि आश्रम में रात-भर ठहर गये होंगे, तो वह सातवें मुक़ाम में चित्रकूट पहुँचे होंगे।

राम ने पहले मंदाकिनी में स्नान किया, जो एक छोटी-सी नदी है, और चित्रकूट के तले पयोष्णी में मिल गई है। चित्रकूट बाँदा-ज़िले में, प्रयाग (इलाहाबाद) से ७१ मील दूर है। इस प्रकार यदि चित्रकूट में सातवाँ मुक़ाम हुआ हो, तो प्रायः २०-२५ मील नित्य चलना पड़ा होगा। चित्रकूट में भरत आकर मिले। वह ६ मुक़ाम करके वहाँपहुँचे। उनका प्रथम दिवस तमसा-तट पर, और दूसरे दिन गोमती के तीर पर निवास हुआ। तीसरे दिन सई-नदी के किनारे डेरा पड़ा। यह नदी गोमती और गङ्गा के बीच में पड़ती है, और जौनपुर के निकट गोमती में मिल गई है। चौथे दिन गङ्गा के किनारे श्रृङ्गवेरपुर में ठहरे। पाँचवें दिन प्रयाग में प्रवेश किया, और त्रिवेणी में स्नान करके भरद्वाज के अतिथि बने। वहाँ से चलकर छठा मुक़ाम किसी अज्ञात जगह में हुआ। फिर सातवाँ मुक़ाम यमुना के किनारे हुआ। इसके पीछे आठवाँ और नवाँ मुक़ाम बीच में करके दसवें में चित्रकूट पहुँचना ज्ञात होता है। जान पड़ता है, लौटने पर भरत बड़ी फ़ुर्ती से गए। चार ही मुक़ाम में अयोध्या पहुँच गये और निकट-स्थ नंदिग्राम में रहना निश्चित किया। रामायण में चित्रकूट को कामद और राम-गिरि कहा है वहीं अगस्त्य का आश्रम था। वहाँ भी राम कुछ दिन ठहरे थे। चित्रकूट और रामटेक के बीच के स्थानों के नाम रामायण में नहीं

मिलते। केवल कुछ थोड़े-से आश्रमों के नाम लिखे हैं। यथा—चित्रकूट से कूचकर वह अत्रि के आश्रम को गए, और वहाँ से शरभङ्ग ऋषि के आश्रम को। पश्चात् सुतीक्ष्ण के और फिर अगस्त्य के आश्रम में पहुँचे। इन सबका ज़िक्र आरण्य-कांड में है। चित्रकूट छोड़ने पर राम ने अरण्य में प्रवेश किया था। विंध्याचल से गोदावरी-नदी तक दंडक-वन का विस्तार था।

ऊपर लिख आये हैं कि अगस्त्याश्रम का सदर-स्थान रामटेक था। वह चित्रकूट से तीन सौ मील से अधिक दूर है। इस विस्तीर्ण स्थल में जान पड़ता है, दो ही मुनियों के मुख्य आश्रम थे—अत्रि और शरभंग के। रामटेक से पञ्चवटी भी ३०० मील दूर पड़ती है। इसके बीच में किसी बड़े मुनि का आश्रम नहीं था। यहाँ पर सघन जंगल अब तक है। निवासी विशेषकर गोंड़ हैं; जो लगभग पचास वर्ष पूर्व तक किसी जगह बिलकुल नंगे रहते थे। अगस्त्याश्रम को छोड़कर राम पञ्चवटी ही में रमे। कई लोग नासिक को पञ्चवटी बतलाते हैं। परन्तु यह भ्रम है। अब यह सिद्ध हो चुका है कि पञ्चवटी बस्तर-रजवाड़े के दक्षिणी छोर पर, गोदावरी के किनारे है। उस गाँव का नाम अभी तक पर्णशाला चला आता है। जिस स्थान से सीता-हरण हुआ था, वहाँ पर एक पत्थर है; जिसमें सीताजी के दो छोटे-छोटे पैर और रावण का एक बड़ा भारी पैर बना है।

सीता-हरण होने के पश्चात् पम्पा-सरोवर का नाम आता है। यह स्थान भी पञ्चवटी से ३०० मील से कम नहीं है। पम्पा-सरोवर निज़ाम के राज्य में, दक्षिणी छोर पर, अनगुंडी-गाँव के निकट है। वहाँ तुङ्ग-भद्रा का किनारा है। उस पार विजयनगर की उजाड़ बस्ती है। वहीं पर प्रवर्षण गिरि है; जहाँ एक चट्टान पर राम का मन्दिर बना है। पम्पा से लगा हुआ ऋष्यमूक पर्वत है। ये सब स्थान किष्किन्धा में हैं। यहाँ पर राम ने अपनी सेना

सजाई; फिर चलकर समुद्र के किनारे सेतु बाँधा और रामेश्वर की स्थापना की। यहीं चार धामों में दक्षिण का धाम 'रामेश्वरम्' है। रामेश्वरम् से १२ मील पर धनुष्कोटि है। अब वहाँ से लंका को रेल बन गई है। जान पड़ता है, राम के सेतु ही की सीध में यह बनाई गई है। इस मार्ग से समुद्र केवल ४० ही मील पड़ता है। राम की सेना सुबेल पर्वत पर ठहरी थी। इस पर्वत का पता कहीं नहीं लगता। न रावण की राजधानी का पता है। अलबत्ते अशोक-वन 'नुबराएलिया' में बतलाया जाता है। यदि यह राजधानी के निकट था, तो राम की सेना को 'जैफना' के पास उतरकर स्थल-मार्ग से, वहाँ पहुँचने को २०० मील के ऊपर चलना पड़ा होगा। इस स्थान के निकट 'पिडुरू-तला-गला' नामक लंका का सबसे ऊँचा पर्वत है। उसकी ऊँचाई मदरास के नीलगिरि के बराबर है। इसके निकट दो और बड़ी चोटियाँ हैं। शायद इसी पर्वत-श्रेणी का प्राचीन नाम त्रिकूट रहा हो। लङ्का की स्थिति त्रिकूट-गिरि पर बतलाई गई है। फ़ौजों के छिपाने के लिये तो शायद बिरला ही स्थान इससे अच्छा और सुभीते का निकलेगा। क्या आश्चर्य, जो यह दुर्गम स्थान दुर्ग के काम में लाया जाता रहा हो!

रामायण में सिंहल की राजधानी लंका बतलाई गई है। परन्तु लङ्का नाम का कोई नगर नहीं है। इस सिंहल-द्वीप में 'पोलन-नरुआ' नामक प्राचीन पुर है, जो पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश जान पड़ता है। यदि पोलन-नरुआ राजधानी रही हो, तो सुबेल-पर्वत निकट ही रहा होगा। तीन-चार मील पर एक पर्वत-श्रेणी है, जिसका सिरा जैफना और पोलन-नरुआ के बीच पड़ता है। यह मर्मसूचक गिरि तल्ला-नामक झील के पास है। बहुत करके इसी के बिकटस्थ गिरि का प्राचीन नाम सुबेल रहा होगा; जिस पर राम की सेना जाकर ठहरी थी। समुद्र-तट से यहाँ तक पहुँचने

के लिये राम-सेना को प्रायः पौने दो सौ मील चलना पड़ा होगा। यदि समुद्र-तट राजधानी से इतनी दूर न होता, तो कदाचित् रावण के पहरुये सेतु बाँधने में बहुत-सी बाधायें डालते। वे लोग अपनी राजधानी ही में सोते रह गये और इधर राम की सेना सुबेल पर आ धमकी। यथार्थ बात चाहे जो हो, वर्तमान समय में लङ्का में पोलन-नरुआ के सिवा ऐसा कोई दूसरा स्थान नहीं देख पड़ता, जो रावण की राजधानी होने का दावा कर सके।"

महर्षि वाल्मीकि का आश्रम कहाँ था? इस विषय में भी बड़ा मतभेद चला आता है। रामायण के प्रेमी श्री अवधवासी लाला सीताराम ने उक्त आश्रम के सम्बन्ध में विशेष रूप से खोज की है। उनके एक लेख का सारांश यह है—

"वाल्मीकीय रामायण के अनुसार महर्षि वाल्मीकि श्रीरघुनाथ जी से चित्रकूट में मिले थे। इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि चित्रकूट के आसपास दो चार कोस पर कहीं रहते हों और महाराज दशरथ के साथ मेल व्यवहार होने के कारण श्रीरघुनाथजी का आगमन सुनकर मिलने के लिये चले गये हों। जिस पहाड़ी पर वाल्मीकि का आश्रम बतलाया जाता है उसको भौंरी या लालापुर की पहाड़ी कहते हैं। और वह चित्रकूट के बीच में है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामायण अयोध्या-कांड में इसी स्थान पर वाल्मीकि का आश्रम माना है, जहाँ सीता और लक्ष्मण समेत—

देखत बन सर सैल सुहाये।
बालमीकि आश्रम प्रभु आये॥
राम दीख मुनि बास सुहावन।
सुन्दर गिरि कानन जल पावन॥

बिठूर में वन और सर तो हो सकते हैं, पर सैल का वहाँ क्या,

वहाँ से दस-बीस कोस इधर-उधर भी अत्यन्ताभाव है। यहीं वाल्मीकि से श्रीरघुनाथजी ने कहा था—

अब जहँ राउर आयसु होई।
मुनि उदवेगु न पावइ कोई॥
अस जिय जानि कहिअ सुइ ठाऊँ।
सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला।
बासु करउँ कछु काल कृपाला॥

इसके उत्तर में वाल्मीकिजी ने कहा।—

चित्रकूट गिरि करहु निवासू।
तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥

वाल्मीकि का दूसरा आश्रम बिठूर में माना जाता है। रघुवंश में भी शत्रुघ्नजी का मथुरा जाते हुए इसी आश्रम में ठहरना ठीक जँचता है। परन्तु हमारे मित्र पण्डित हरिहरदत्त शास्त्री ने इसकी जाँच की है। शास्त्रीजी लिखते हैं।

'लवकुशोत्पत्ति-स्थान कानपुर से पश्चिम सात कोस बी० बी० सी० आई० रेलवे के स्टेशन चौबेपुर से तीन मील उत्तर मौजे बेलारुद्र में है। यह स्थान बिठूर से ६ मील पश्चिम है, जहाँ पर वाल्मीकि मुनि का स्थान, सीताजी का निवास-स्थान और वाल्मीकीय रामायण-प्रणयन-स्थान-युक्त वाल्मीकि-कुण्ड है। यहाँ से दक्षिण एक मील तमसा और उत्तर एक मील गङ्गाजी हैं। जो वाल्मीकीय के उत्तर-कांड में रामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से सीताजी के परित्याग का स्थान बतलाया था।'

तीसरा वाल्मीकि-स्थान केवल संस्कृत पढ़नेवाले नहीं जानते। वह गङ्गा-तट पर बनारस-राज में है। उसकी भी मैंने जाँच कराई

और एक नक़शा भी बना है। इसको भी वाल्मीकि का आश्रम गोस्वामी तुलसीदासजी ने माना है। यद्यपि रामायण अयोध्याकांड में जैसा ऊपर लिखा गया वाल्मीकि का आश्रम प्रयाग से चित्रकूट की राह में है और वहाँ पहाड़ी के ऊपर आश्रम बताया जाता है और इस आश्रम के आसपास पहाड़ी का नाम नहीं है। इसका वर्णन लिखने से पहले कवितावली से इस विषय के कवित्त उद्धृत किये जाते हैं।—

जहाँ वाल्मीकि भये ब्याध ते मुनीन्द्र साधु
मरा मरा जपे सिख सुनि ऋषि सात की।
सीय को निवास लवकुस को जनम थल
तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की।
विटप महीप सुरसरित समीप सोहै
सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारीपुर डीघपुर बीच बिलसत भूमि
अंकित जो जानकी चरन जलजात की॥

इस स्थान को आजकल सीतामढ़ी कहते हैं और यह बनारस-राज्य में गङ्गाजी के उत्तर तट पर है। यहाँ से बारीपुर एक मील पूर्व और दीग (दिगपुर) तीन मील दक्खिन है। सीतामढ़ी इलाहाबाद से बनारस के बीच (B. N. W.) रेलवे के भीटी स्टेशन से छः मील पर है। सड़क कच्ची है, परन्तु सूखे दिनों में इक्का जा सकता है।

वाल्मीकि का चौथा स्थान फैज़ाबाद के ज़िले में तमसा (मड़हा) के तट पर है।

अब बताइये कौन-सा स्थान ठीक माना जाय? सम्भव है कि वाल्मीकिजी रमते योगी की भाँति अपना स्थान बदलते रहे हों; परन्तु यह असम्भव है कि लव-कुश का जन्म बिठूर में भी हुआ हो और सीतामढ़ी में भी।"

———

मानस-मधु

खोजने से संस्कृत-ग्रन्थों में रामचरितमानस के बहुत-से दोहों, सोरठों, छन्दों और चौपाइयों के मूल मिल जायँगे। तुलसीदास ने संस्कृत-ग्रन्थों का जैसा सूक्ष्म अनुशीलन किया था, उसे देखकर महान् आश्चर्य होता है। और हम जितना ही गहरे जाते हैं, उतना ही अपने मानसकार की अद्भुत प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं। अब यह प्रश्न स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृत के सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदास को कण्ठस्थ थे? संस्कृत-नन्दन-कानन में विचरणकर तुलसीदास-रूपी मधुप ने समस्त फूलों का रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जाति को दिया है, उसकी तुलना संसार के किसी दान से नहीं की जा सकती। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियों को नाश करने में औषधियों को सहायता पहुँचाता है, वैसे ही रामचरितमानस-रूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियों को नाश करने में सहायक होता है।

तुलसीदास ने 'मानस' में वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, श्रीमद्भागवत, प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक से अधिक सहायता ली है। इनके सिवा संस्कृत के अन्य सैकड़ों ग्रन्थों के श्लोकों को चुन-चुनकर, उनका रूपान्तर करके, उन्होंने मानस में भर दिया है। कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी एक पुराण से लिये गये हैं तो उसके आगे की चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं; और उसके भी आगे की चौपाई में किसी नाटक या नीति-ग्रन्थ के भाव हैं। ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है। मानों संस्कृत के सैकड़ों

ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर एक सम्राट् की तरह उनका अधिकार था; वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं नियुक्त कर देते थे।

मनुष्य-जगत् में तो कोई भाव अपना नहीं कहा जा सकता। यहाँ तक कि जो भाषा एक अपढ़ और अशिक्षित मनुष्य भी बोलता है, उसके शब्द भी दूसरों से पाये हुये होते हैं, जिन्हें वह माँ की गोद ही से ग्रहण करता रहता है। शिक्षित व्यक्ति तो और भी दूसरों के ऋणी होते हैं। वे भाषा ही नहीं, भाव भी अन्य ग्रन्थकारों, कवियों, वक्ताओं और व्यवसायियों से ले लेते हैं। ऐसी दशा में कोई भाषा या भाव किसी व्यक्ति की स्वतन्त्र सम्पत्ति नहीं कहा जा सकते।

हाँ, उनको ग्रहण करने और उनको प्रयोग में लाने की स्वतन्त्रता हरएक व्यक्ति की अलग-अलग होती है। तुलसीदास ने संस्कृत श्लोकों के भाव अपनी रचना में लिये, यह कोई अपराध नहीं गिना जायगा—जबकि वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ऐसा किया। हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये कि उन्होंने सैकड़ों उत्तमोत्तम ग्रन्थों का सार निचोड़कर उसे हमारे लिये सुलभ कर दिया।

पर उन्होंने अपनी भाषा में अन्य ग्रन्थों के श्लोकों के भावों का कायाकल्प कैसा किया है, यह देखना है। और इसी से हम अनुमान कर सकेंगे कि वे कितने कला-निपुण थे। स्थानाभाव से न हम वे सब श्लोक ही दे सकेंगे, जिनके भाव उन्होंने लिये थे और न उनकी भाव-ग्राहिता की पूरी विवेचना ही कर सकेंगे। थोड़े ही उदाहरणों से हम अपने विचारशील पाठकों को तुलसीदास की आश्चर्यजनक प्रतिभा से परिचित करना चाहते हैं।—

किसी प्राचीन कवि का एक श्लोक-खंड है ।—

आज्ञागुरूणामविचारणीया ।

तुलसीदास ने इसे अधिक स्पष्ट कर दिया है ।—

मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी ।
बिनहिं विचार करिय सुभ जानी ॥

(बालकांड)

पाठक देखेंगे कि उक्त श्लोक-खंड की अपेक्षा यह चौपाई कहीं अधिक प्रभावोत्पादिका होगई है ।

हितोपदेश का एक श्लोक लीजिये ।—

सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ।
योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद !

इसके तीसरे चरण का भाव अश्लील है । तुलसीदास ने इसको खूब निर्मल बना दिया है **और** उनके शब्दों में यह कन्या और बहन के सामने तथा किसी भी स्त्री-समाज में पढ़ा जा सकता है ।—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी !
पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।
जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥

हनुमन्नाटक का एक श्लोक लीजिये ।—

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेन शंकरात् ।
दर्शनाद्रामभद्रस्य सा विभूतिर्विभीषणे ॥

तुलसीदास ने इसका अनुवाद यह किया ।—

जो संपति सिव रावनहिं,
दीन्हि दिये दस माथ ।

सोइ संपदा विभीषनहिं,
सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

मूल श्लोक में सकुचने का भाव-प्रदर्शन करानेवाला कोई शब्द नहीं। तुलसीदास ने 'सकुचि' शब्द को अपनी ओर से मिलाकर मानो हनुमन्नाटककार का संशोधन किया है। इस एक 'सकुचि' शब्द के आ जाने से श्लोक के भाव में प्राण आगया, और राम के दान की महिमा यकायक और भी चमक उठी।

इसी प्रकार तुलसीदास ने संस्कृत के श्लोकों से जितने भाव लिये हैं, सबको अपनी सम्पत्ति में सजाकर तब उन्हें बाहर आने दिया है। और अब वे उन्हीं की संपत्ति माने जायँगे।

यहाँ कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं।—

उपनिषद्—

प्रजापतिश्चरति गर्भे जातः स उ गर्भे

रामचरितमानस—

जा दिन तें हरि गर्भहिं आये।

उपनिषद्—

रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव

रामचरितमानस—

अमित रूप प्रगटे तेहि काला।

उपनिषद्—

एकं रूपं बहुधा यः करोति

रामचरितमानस—

छन महँ सबहि मिले भगवाना।

श्रीमद्भागवत—

ब्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो

रामचरितमानस—

अधर लोभ

श्रीमद्भागवत—

दंष्ट्रायमः

रामचरितमानस—

जम दसन कराला।

श्रीमद्भागवत—

हासो जनोन्मादकरी च माया।

रामचरितमानस—

माया हास

श्रीमद्भागवत—

इन्द्रादयो बाहव आहुरस्राः

रामचरितमानस—

बाहु दिगपाला।

श्रीमद्भागवत—

आपोऽस्य तालू रस एव जिह्वा

रामचरितमानस—

अंबुपति जीहा।

श्रीमद्भागवत—

नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि
महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र !

रामचरितमानस—

सरिता नस जारा। रोमराजि अष्टादश भारा।

श्रीमद्भागवत—

गिरयोऽस्थि सङ्घाः

रामचरितमानस—

अस्थि सयल

श्रीमद्भागवत—

समुद्रो जठरम्

रामचरितमानस—

उदर उदधि

श्रीमद्भागवत—

यतः सर्वाणि भूतानि भवंत्यादि युगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥

रामचरितमानस—

उत्पति पालन प्रलय समीहा ।

श्रीमद्भागवत—

स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः

रामचरितमानस—

जगमय प्रभु की बहु कल्पना ।

श्रीमद्भागवत—

पातालमेतस्य हि पादमूलम्

रामचरितमानस—

पद पाताल

श्रीमद्भागवत—

सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः

रामचरितमानस—

सीस अजधामा ।

श्रीमद्भागवत—

तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यम्

रामचरितमानस—

भृकुटि बिलास भयंकर काला ।

श्रीमद्भागवत—

द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः

रामचरितमानस—

नयन दिवाकर

श्रीमद्भागवत—

ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान्

रामचरितमानस—

कच घनमाला।

श्रीमद्भागवत—

नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गंधे

रामचरितमानस—

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा।

श्रीमद्भागवत—

मुखमग्निरिद्धः

रामचरितमानस—

आनन अनल

श्रीमद्भागवत—

पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च

रामचरितमानस—

निसि अरु दिवस निमेष अपारा।

श्रीमद्भागवत—

कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः

रामचरितमानस—

स्रवन दिसा दस

श्रीमद्भागवत—

अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा

रामचरितमानस—

मारुत स्वास

श्रीमद्भागवत—

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वता यस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥

रामचरितमानस—

निगम निज बानी ।

श्रीमद्भागवत—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः
स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां
शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां
तत्त्वं परं योगिनां ॥

वृष्णीनां परदेवतेति विदितो
रंगंगतः साग्रजः ।

रामचरितमानस—

देखहिं भूप महा रनधीरा ।
मनहुँ वीररस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिँ निहारी ।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेखा ।
तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई ।
नर भूषन लोचन सुखदाई ॥
नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निजनिज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत सृंगार धरि, मूरति परम अनूप ॥
बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा ।
बहु मुख, कर, पद, लोचन, सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे ।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी ।
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्व मय भासा ।
संत सुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
हरि भगतन देखे दोउ भ्राता ।
इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया ।
सो सनेह सुख नहिं कथनीया ॥
उर अनुभवति न कहि सक कोऊ ।
कवन प्रकार कहइ कवि सोऊ ॥

जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ ।
तेहि तस देखेउ कोसलराऊ ॥

श्रीमद्भागवत—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥

रामचरितमानस—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख,
धरिय तुला इक अंग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि,
जो सुख लव सतसंग ॥

श्रीमद्भागवत—

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।
यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदाः कलौ युगे ॥

रामचरितमानस—

निसितम घन खद्योत बिराजा ।
जनु दंभिन कर जुरा समाजा ॥

श्रीमद्भागवत—

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णींशयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥

रामचरितमानस—

'दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई ।
वेद पढ़ैं जनु बटु समुदाई ॥

श्रीमद्भागवत—

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥

रामचरितमानस—

बुन्द अघात सहैं गिरि कैसे ।
खल के बचन संत सह जैसे ॥

श्रीमद्भागवत—

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥

रामचरितमानस—

दामिनि दमकि रही घन माहीं ।
खल की प्रीति जथा थिर नाहीं ॥

श्रीमद्भागवत—

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णाः यथाऽऽच्युतजनागमे ॥

रामचरितमानस—

लछिमन देखहु मोरगन,
नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हर्षयुत,
विष्णुभक्त कहँ देखि ॥

श्रीमद्भागवत—

जलौघैः निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥

रामचरितमानस—

हरित भूमि तृन संकुल,
समुझि परै नहिं पंथ ।
जिमि पाखंड बिबाद ते,
लुप्त भए सद्ग्रंथ ॥

श्रीमद्भागवत—

नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः ।
निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥
वासोऽन्नपानशयनव्यवसायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥

रामचरितमानस—

कलि बारहिं बार दुकाल परै ।
बिनु अन्न दुखी बहु लोग मरै ॥
नृप पापपरायन धर्म नहीं ।
करु दंड बिदंड प्रजा नितहीं ॥
तामस धर्म करहिं नर,
जप तप मख ब्रत दान ।
देव न बरषहिं धरनि पर,
बए न जामहिं धान ॥

श्रीमद्भागवत—

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि ॥

रामचरितमानस—

ब्रह्मज्ञान बिनु नारिनर,
कहहिं न दूसरि बात ।

कौड़ी कारन मोहबस,
करहिं विप्र गुरु घात ॥

श्रीमद्भागवत—

लावण्ये केश-धारणम् ।
ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।
शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥

रामचरितमानस—

अबला कच भूषन भूरि छुधा ।
धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता ।
मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥

श्रीमद्भागवत—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥

रामचरितमानस—

कलियुग सम युग आन नहिं,
जो नर कर बिस्वास ।
गाइ रामगुन गन विमल,
भव तरु बिनहिं प्रयास ॥

श्रीमद्भागवत—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

रामचरितमानस—

कृतयुग सब जोगी विज्ञानी।
करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेता त्रिविध जग्य नर करहीं।
प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा।
नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलि केवल हरिगुनगन गाहा।
गावत नर पावहिँ भव थाहा॥

श्रीमद्भागवत—

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम्।

रामचरितमानस—

सूर कठिन करनी करहिं,
कहि न जनावहिं आप।

श्रीमद्भागवत—

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु।
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः॥
स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनाहृताः।
उदितास्तमितप्राया अल्पसत्वाल्पकायुषः॥
असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः।
प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः॥
तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः।
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः॥
राजानश्च प्रजाभक्षाः।

रामचरितमानस—

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई।
ताकहँ संत कहै सब कोई॥
सोइ सयान जो परधनहारी।
जो करु दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना।
कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी।
कलिजुग सोइ ज्ञानी सो बिरागी॥
जाके नख अरु जटा बिसाला।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

श्रीमद्भागवत—

पाण्डित्ये चापलं वचः।

रामचरितमानस—

पंडित सोइ जो गाल बजावा।

श्रीमद्भागवत—

शूद्राः प्रतिगृहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम्॥

रामचरितमानस—

शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना।
बैठि बरासन कहहिं पुराना॥

श्रीमद्भागवत—

रुद्रोऽहंकाररूपस्ते

रामचरितमानस—

अहंकार सिव

श्रीमद्भागवत—

बुद्धिस्ते वाक्पतिर्भवेत् ।

रामचरितमानस—

बुद्धि अज

श्रीमद्भागवत—

मनश्च सचन्द्रमाः

रामचरितमानस—

मन ससि

श्रीमद्भागवत—

विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति
सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।

रामचरितमानस—

चित्त महान

श्रीमद्भागवत—

वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं
मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।

रामचरितमानस—

मनुज बास सचराचर
रूप राम भगवान ।

श्रीमद्भागवत—

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

प्राचीन श्लोक—

ये रामभक्तिममलां सुविहाय रम्यां
ज्ञाने रताः प्रतिदिनं परिक्लिष्टमार्गे।
आरान्महेन्द्रसुरभीं परिहृत्य मूर्खाः
अर्कं भजन्ति सुभगे सुख-दुग्ध-हेतुम्॥

रामचरितमानस—

जे असि भगति जानि परिहरहीं।
केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥

श्रीमद्भागवत—

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम्॥

रामचरितमानस—

यह न कहिय सठ ही हठसीलहिं।
जो मन लाइ न सुन हरि लीलहिं॥

श्रीमद्भागवत—

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च।
साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम्॥

रामचरितमानस—

गुर पद प्रीति नीतिरत जेई।
द्विज सेवक अधिकारी तेई॥
जिन्हके सतसंगति अति प्यारी।

श्रीमद्‌भागवत—

शिश्नोदरपराद्विजाः।

रामचरितमानस—

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।

श्रीमद्भागवत—

अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोह्यर्थलोलुपाः॥
पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन् हित्वा सौरत सौहृदाः।
ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः॥

रामचरितमानस—

बहु दाम सँवारहिं धाम जती।
बिषया हरि लीन्ह न रहि बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही।
कलि कौतुक तात न जात कही॥
कुलवंति निकारहिं नारि सती।
गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥

श्रीमद्‌भागवत—

लावण्ये केशधारणम्।

रामचरितमानस—

अबला कच भूषन भूरि छुधा ।

श्रीमद्भागवत—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥

रामचरितमानस—

कृत जुग त्रेता द्वापर
पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि
नाम ते पावहिं लोग ॥

श्रीमद्भागवत—

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः
केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः
स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥

रामचरितमानस—

रोमराजि अष्टादस भारा ।
अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना ।
जगमय प्रभु की बहु कलपना ॥

श्रीमद्भागवत—

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥

रामचरितमानस—

सरिता सर निर्मल जल सोहा ।
संत हृदय जस गत मद मोहा ॥

श्रीमद्भागवत—

गाधवारिचरास्तापमविंदन् शरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥

रामचरितमानस—

जल संकोच बिकल भये मीना ।
अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥

श्रीमद्भागवत—

शनैःशनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च बीरुधः ।
यथाहं ममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥

रामचरितमानस—

रस रस सोष सरित सर पानी ।
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥

श्रीमद्भागवत—

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योमसविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नंब्रह्मेवसगुणम्बभौ ॥

रामचरितमानस—

फूले कमल सोह सर कैसा ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥

श्रीमद्भागवत—

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धास्स्वपिण्डान् कालआगते ॥

रामचरितमानस—

चले हरषि तजि नगर नृप
तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम
तजहिं आश्रमी चारि ॥

श्रीमद्भागवत—

जीवा श्रेष्ठाह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ।
तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ।
ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ॥
ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्तथा ।
अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत ॥
मुक्तसंगस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ।
तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरंतरः ॥
मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ।
न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥

रामचरितमानस—

सब मम प्रिय सब मम उपजाये ।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाये ॥
तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुतिधारी ।
तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी ।
ज्ञानिहुँ तें अति प्रिय विज्ञानी ॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥

श्रीमद्भागवत—

ते वै विदन्त्यतितरंति च देवमायां
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा
स्तिर्यग्जना अपि किमुश्रुतधारणाये ॥

रामचरितमानस—

भगतिवंत अति नीचौ प्रानी ।
मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी ॥

हनुमन्नाटक—

रामः स्त्रीविरहेण हारितवपु
स्तच्चिन्तया लक्ष्मणः ।
सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया
निर्मूलकूलद्रुमः ।
गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपोः
कारुण्यदैन्यातिथिः ।
लङ्कातङ्कविटङ्कपावकपटुर्वंध्यो
ममैकः कपिः ॥

रामचरितमानस—

तव प्रभु नारि-बिरह बलहीना ।
अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ ।
अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥

हनुमन्नाटक—

रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान्वयं शुश्रुमः ।
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ॥
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणैरन्यं ।
वक्तुमपि अपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा ॥

रामचरितमानस—

कहु रावन रावन जग केते ।
मैं निज स्रवन सुने सुनु तेते ॥
बलिहि जितन एकु गएउ पताला ।
राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
एक बहोरि सहसभुज देखा ।
धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेखा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा ।
सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥
एक कहत मोहि सकुच अति
रहा बालि की काँख ।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन
सत्य बदहि तजि माख ॥

हनुमन्नाटक—

सर्वैर्यस्य समं समेत्य कठिनां वक्षःस्थलीं संयुगे ।
निर्भग्नं मुखमेव दन्तमुसलैरैरावतस्योन्नतैः ॥

रामचरितमानस—

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई ।
जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्हके दसन कराल न फूटे ।
उर लागत मूलक इव टूटे ॥

हनुमन्नाटक—

रे रे रावण ! हीन ! दीन ! कुमते !
रामोऽपि किं मानुषः ।
किं गङ्गापि नदी गजः सुरगजोऽ
प्युच्चैःश्रवा किं हयः ॥
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं
कामोऽपि धन्वी तु किम् ।
त्रैलोक्यप्रकटप्रतापविभवः
किं रे हनूमान्कपिः ॥

रामचरितमानस—

राम मनुज कस रे सठ बङ्गा ।
धन्वी कामु नदी पुनि गङ्गा ॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा ।
अन्न दान अरु रस पीयूखा ॥
बैनतेय खग अहि सहसानन ।
चिन्तामनि पुनि उपल दसानन ॥

हनुमन्नाटक—

भ्राता मे कुम्भकर्णः सकलरिपुकुल
भ्रातसंहारमूर्त्तिः ।
पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदनो
येन बद्धः सुरेन्द्रः ।
खड्गो मे चन्द्रहासो रणमुखचपलो
राक्षसा मे सहायाः ।
सोऽहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी
रावणोनाम राजा ॥

रामचरितमानस—

कुम्भकरन अस बन्धु मम
सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि
जितेउँ चराचर झारि ॥

हनुमन्नाटक—

आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः ।
नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ॥

रामचरितमानस—

दीप दीप के भूपति नाना ।
आये सुनि हम जो पन ठाना ॥
कुँवरि मनोहरि विजय बड़ि
कीरति अति कमनीय ।
पावनहार बिरंचि जनु
रचेउ न धनु दमनीय ॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा ।
काहु न संकर चाप चढ़ावा ॥
रहा चढ़ाउब तोरब भाई ।
तिल भरि भूमि न सकेउ छुड़ाई ॥
अब कोउ जनि माखै भट मानी ।
बीर बिहीन मही मैं जानी ॥

हनुमन्नाटक—

देव ! श्रीरघुनाथ ! किम्बहुतया
दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः ।

मेर्वादीनपि भूधरान्न गणये
जीर्णः पिनाकः कियान् ।
तन्मामादिश पश्य पश्य च
बलं भृत्यस्य यत् कौतुकम् ।
प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं
नेतुं निहन्तुं क्षमः ॥

रामचरितमानस—

सुनहु भानुकुल पङ्कज भानू ।
कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू ॥
जो राउर अनुसासन पाऊँ ।
कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ ॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी ।
सकौं मेरु मूलक इव तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना ।
का बापुरो पिनाक पुराना ॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ ।
कौतुक करौं बिलोकिय सोऊ ॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं ।
सत जोजन प्रमान लै धावौं ॥

हनुमन्नाटक—

शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते,
दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः ।
नमयतु धनुरैशं यस्तदारोपणेन,
त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा ॥

रामचरितमानस—

बोले बन्दी बिरद बर
सुनहु सकल महिपाल ।

प्रन विदेह कर कहहिं हम
भुजा उठाइ बिसाल ॥
नृप भुजबल बिधु शिव धनु राहू ।
गरुअ कठोर विदित सब काहू ॥
रावन बान महा भट भागे ।
देखि सरासन गवहिं सिधारे ॥
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा ।
राजसमाज आज जेहि तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही ।
बिनहि बिचार बरिहि हठि तेही ॥

हनुमन्नाटक—

लक्ष्मणः । रामे सज्यं धनुष्कुर्वति सति पृथ्व्या—
दीनि भुवनान्यधो यास्यन्ति इति आशङ्कया आह ।
पृथ्वि ! स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत्त्रितये दिधीर्षां
रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ॥

रामचरितमानस—

लखन लखेउ रघुवंस-मनि
ताकेउ हर कोदण्ड ।
पुलकि गात बोले बचन
चरन चापि ब्रह्मण्ड ॥
दिसि कुञ्जरहु कमठ अहि कोला ।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥

हनुमन्नाटक—

अुद्यद्भीमधनुः कठोरनिनदस्तत्राकरोद्विस्मयं
त्रस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शम्भोः शिरःकम्पनम् ।

दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलनं संसारार्णवोन्मीलनम्,
वैदेहीमदनं मदान्धदमनं त्रैलोक्यसम्मोहनम् ॥

रामचरितमानस—

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि
बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि
अहि कोल कूरम कलमले ।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें
बिकल सकल बिचारहीं ।
कोदण्ड भंजेउ राम तुलसी
जयति बचन उचारहीं ॥

हनुमन्नाटक—

यद्बभञ्ज जनकात्मजाकृते
राघवः पशुपतेर्महद्धनुः ।
तद्धनुर्गुणरवेणारोपित
स्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः ॥

रामचरितमानस—

तेहि अवसर सुनि सिव धनु भंगा ।
आये भृगुकुल कमल पतङ्गा ॥

हनुमन्नाटक—

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छितमुरो धत्ते त्वचं रौरवीः
मौञ्ज्या मेखलया नियंत्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठक
पाणौ कार्मुकसाक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पल

रामचरितमानस—

गौर सरीर भूति भलि भ्राजा।
भाल बिसाल त्रिपुण्ड बिराजा॥
वृषभ कन्ध उर बाहु बिसाला।
चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे।
धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

हनुमन्नाटक—

अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम्।
निहन्तुं हन्त गोविप्रान्न शूरा रघुवंशजाः॥

रामचरितमानस—

राम कहा रिसि तजिय मुनीसा।
कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहिं रिसि जाइ करिय सोइ स्वामी।
जानि मोहिं आपन अनुगामी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई।
हमरे कुल इन पर न सुहाई॥

हनुमन्नाटक—

भो ब्रह्मन! भवता समं न घटते संग्रामवार्तापि नः
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजाम्
अस्माकं भवतां यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम्॥

रामचरितमानस—

हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा।
कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा॥

देव एक गुन धनुष हमारे।
नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥

हनुमन्नाटक—

सद्यः पुरी परिसरेषु शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥

रामचरितमानस—

पुर तें निकसी रघुबीर बधू
धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की
पट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनोऽब कितो
प्रिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की
अँखिया अति चारु चलीं जल च्वै॥
(कवितावली)

हनुमन्नाटक—

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रम्
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता॥

रामचरितमानस—

सीय समीप ग्राम तिय जाहीं।
पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी।
सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कह्यो तिन्हहिं सिय सयननि॥

हनुमन्नाटक—

पदकमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेह-
मलभत यदहल्यां गौतमोधर्मपत्नीम्।
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः॥

कवितावली—

बिन्ध के बासी उदासी तपो
ब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी
सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी
परसे पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू
करुना करि कानन को पगु धारे॥

हनुमन्नाटक—

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापात्।
इयमपि मुनिपत्नी शापतां कापि वा स्यात्।
चरणनलिनसङ्गानुग्रहं ते भजन्ती।
भवतु चिरमियं न श्रीमती पोतपुत्री॥

रामचरितमानस—

चरन कमल रज कहुँ सबु कहई।
मानुस करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई।
बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥

हनुमन्नाटक—

तात ! त्वं निजतेजसैव गमितः
स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते।
ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथाम्
तातान्तिके मा कृथाः।
रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयै-
र्व्रीडानमत्कन्धरः।
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी
वक्ता स्वयं रावणः॥

रामचरितमानस—

जल भरि नयन कहहिं रघुराई।
तात करम निज तें गति पाई॥

तनु तजि तात जाहु मम धामा।
देउँ काह तुम पूरन कामा॥
सीता हरन तात जनि,
कहेउ पिता सन जाय।
जौं मैं राम त कुल सहित,
कहिहि दसानन जाय॥

हनुमन्नाटक—

पापेनाकृष्यमाणा रजनिचर-
वरेणाम्बरेण व्रजन्ती।
किष्किन्धाद्रौ मुमोच प्रचुर-
मणिगणैर्भूषणान्यर्पितानि।
हा राम! प्राणनाथेत्यहह
जहि रिपुं लक्ष्मणेनालपन्ती।
यानीमानीति तानि क्षिपति
रघुपुरं कामरामाञ्जनेयः॥

रामचरितमानस—

गगनपंथ देखी मैं जाता।
परबस परी बहुत बिलपाता॥
राम राम हा राम पुकारी।
हमहिं देखि दीन्हे पट डारी॥
माँगा रामु तुरत तेहिं दीन्हा।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥

हनुमन्नाटक—

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तु पराक्रमः।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो! तव॥

रामचरितमानस—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई।
साखा ते साखा पर जाई॥
नाँघि सिन्धु हाटकपुर जारा।
निसिचरगन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

हनुमन्नाटक—

नृपतिमुकुटरत्न! त्वत्प्रयाणप्रशस्तिम्,
प्लवगबलनिमज्जद् भूधराक्रान्तदेहः।
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्भिः पतद्भि
र्जरठकमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः॥

रामचरितमानस—

सहि सक न भार अपार अहिपति,
बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ
कठोर सो किमि सोहई।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति
जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो
लिखत अबिचल पावनी॥

हनुमन्नाटक—

यो युष्माकमदीदहत्पुरमिदं योऽदीदलत्काननम्
योऽहंवीरममीमरद्गिरिदरीर्योऽबीभरद्राक्षसैः।

सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो वीरेषु सम्भाव्यते
दूतत्वेन हृतस्ततः प्रतिदिनं संप्रेष्यते साम्प्रतम् ॥

रामचरितमानस —

रावन नगर अलप कपि दहई।
सुनि अस बचन सत्य को कहई॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन।
सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चलै बहुत सो बीर न होई।
पठवा खबरि लेन हम सोई॥

हनुमन्नाटक—

ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परांस्ते प्रस्तरादुस्तरे।
वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान्सन्तारयन्तेऽपि च॥
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः।
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते॥

रामचरितमानस—

बूड़हिं आनहिं बोरहिं जेई।
भये उपल बोहित सम तेई॥
महिमा यह न जलधि कै बरनी।
पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी॥
श्री रघुबीर प्रताप ते
सिन्धु तरे पाषान।

हनुमन्नाटक—

रे रे रावण ! शम्भुशैलमथनप्रख्यातवीर्यः कथम्
रामं योद्धुमिहेच्छसीदमखिलं चैतन्न युक्तं तथा।
रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा रेखाकृताऽलंघिता
तद्दारेण च लङ्घितोजलनिधिर्दग्धा हतोऽक्षः पुरी॥

रामचरितमानस—

कन्त समुझि मन तजहु कुमतिही।
सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खँचाई।
सो नहिं नाँघेहु असि मनुसाई॥
कौतुक सिन्धु नाँघि तव लंका।
आएउ कपि केसरी असंका॥
रखवारे हति बिपिन उजारा।
देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥

हनुमन्नाटक—

यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैः
स श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः।
हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो
मय्यास्ते भुवनावली-विलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः॥

रामचरितमानस—

एहि के हृदय बस जानकी
जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत
बान सब कर नास है।
सुनि बचन हरष बिषाद मन
अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि
सुन्दरि तजहि संसय महा॥

प्रसन्नराघव—

कामातुरस्यवचसामिव संविधानै—
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम् ॥

रामचरितमानस—

डगै न संभु सरासन कैसें।
कामी बचन सती मन जैसें॥

प्रसन्नराघव—

अलमिति क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया।

रामचरितमानस—

नाथ करहु बालक पर छोहू।
सूध दूधमुख करिय न कोहू॥

प्रसन्नराघव—

आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति।
विषकण्ठः खल्वसौ।

रामचरितमानस—

कालकूट मुख पय मुख नाहीं।

प्रसन्नराघव—

अयि देव्याकर्णय तावत् यत् संदिष्टं देवेन देव्या :—
हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः।

नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनम्
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥

अपि च—

कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयम्
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् ।
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगतं तत् प्रिये किं करोमि ॥

रामचरितमानस—

कहेउ राम बियोग तव सीता ।
मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू ।
कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा ।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा ।
उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥
कहेहू ते कछु दुख घटि होई ।
काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं ।
जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं ॥

प्रसन्नराघव—

रावणः—

मां जीवय नयनामृतेन ।

मंदोदरीमपि विमुंचति राज्यमेत-
दप्युन्मदं तव पदाब्जतले करोति।

रामचरितमानस—

कह रावन, सुनु सुमुखि सयानी !
मंदोदरी आदि सब रानी ॥
तव अनुचरी करौं पन मोरा।
एक बार बिलोकु मम ओरा ॥

प्रसन्नराघव—

तदिदानीमपि दशकंठभुजाश्लेषभेषजमनुजानीहि।

रामचरितमानस—

सीता, तैं मम कृत अपमाना।
काटहौं तव सिर कठिन कृपाना ॥
नाहिं त सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥

प्रसन्नराघव—

रघुपतिभुजदंडादुत्पलश्यामकांते—
र्दशमुख भवदीयान् निष्कृपाद्वा कृपाणात् ॥

रामचरितमानस—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा ॥

प्रसन्नराघव—

चंद्रहास हर मे परितापम्
रामचंद्रविरहानलजातम् ।
त्वंहि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णम्
धारया वहसि शीतलमंभः ॥

रामचरितमानस—

चन्द्रहास हरु मम परितापं
रघुपति बिरह अनल संजातं ।
सीतल निसित बहसि बर धारा
कह सीता हरु मम दुख भारा ॥

प्रसन्नराघव—

कमठपृष्ठकठोरमिदंधनु-
मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः ।
कथमधिज्यमनेन विधीयता-
महह तात ! पणस्तव दारुणः ॥

रामचरितमानस—

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा ।
कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
अहह तात दारुन हठ ठानी ।
समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥

प्रसन्नराघव—

यदि खद्योतभासापि समुन्मीलति पद्मिनी

रामचरितमानस—

—— —कहति बैदेही।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा?

प्रसन्नराघव—

आः पापे! यावत् किल तपनखद्योतयो-
स्तावदंतरं रामरावणयोः। तदियं हन्यसे।
(इति खड्गमुत्पाटयति।

रामचरितमानस—

आपुहिं सुनि खद्योत सम,
रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि,
बोला अति खिसिआन॥

अध्यात्म-रामायण—

ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः।

रामचरितमानस—

नैहर जनमु भरब बरु जाई।
जिअत न करबि सवति सेवकाई॥

अध्यात्म-रामायण—

ब्रूहि कं धनिकं कुर्यां दरिद्रं ते प्रियंकरम्।
धनिनं क्षणमात्रेण निर्धनं च तवाहितम्॥

रामचरितमानस—

कहु केहि रंकहिं करउँ नरेसू।
कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू॥

अध्यात्म-रामायण—

आगमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः।
मां को धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा॥

रामचरितमानस—

कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा।
आइ गएउ प्रभु खल रहु ठाढ़ा॥
जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा।

अध्यात्म-रामायण—

अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धर!
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः॥

रामचरितमानस—

आगे राम अनुज पुनि पाछे।
मुनिबर बेष बने अति काछे॥
उभय बीच सिय सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

अध्यात्म-रामायण—

प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः॥
बन्धुभिस्सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्।
धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च॥

रामचरितमानस—

प्रातकाल उठिकै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु माँगि करहिं पुर काजा।
देखि चरित हरषै मन राजा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
जेहिं बिधि सुखी होहिं पुर लोगा।
करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥

अध्यात्म-रामायण—

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यम्।
वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः।

रामचरितमानस—

गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

अध्यात्म-रामायण—

भरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्
शत्रुघ्नंशत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत्।
यस्मिन्नमन्ते मुनयो विद्ययाऽज्ञानविप्लवे
तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि॥

रामचरितमानस—

बिस्व भरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥
जाकें सुमिरन तें रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

लच्छन धाम राम प्रिय,
सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा,
लछिमन नाम उदार॥
जो आनंदसिंधु सुखरासी।
सीकर ते त्रैलोक सुपासी॥
सो सुखधाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिस्रामा॥

अध्यात्म-रामायण—

क्षालयामि तव पादपंकजम्
नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम्।
मानुषीकरणरेणुरस्ति ते
पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥

रामचरितमानस—

चरन कमल रज कहुँ सबु कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई॥

अध्यात्म-रामायण—

तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान्।
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन्॥

रामचरितमानस—

परी न राजहि नींद निसि,
हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय,
कहइ न मरमु महीसु॥

अध्यात्म-रामायण—

अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः।
राममेव सदान्वेति बलस्थमपि हृष्टधीः॥

रामचरितमानस—

अहह धन्य लछिमन बड़ भागी।
राम पदारविन्द अनुरागी॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

श्रुत्वा सागरबन्धनम् दशशिराः
सर्वैर्मुखैरेकदा।
तूर्णं पृच्छति वार्तिकान् स चकितो
भीत्यापरं सम्भ्रमात्।
बद्धः सत्यमपांनिधिर्जलनिधिः,
कीलालधिस्तोयधिः।
पाथोधिर्जलधिः पयोधिरुदधि-
र्वारान्निधिर्वारिधिः॥

रामचरितमानस—

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि,
जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति,
उदधि पयोधि नदीस॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

सज्जनस्य हृदयं नवनीतं
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्।

अन्यदेहविलसत्परितापा-
त्सज्जनो द्रवति नो नवनीतम् ॥

-रामचरितमानस—

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह पर कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो-
च्छलत्तरल तारकागणविकीर्णमुक्तागणः।
पुरन्दरहरिद्दरी कुहरगर्भसुप्तोत्थित-
स्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ॥

रामचरितमानस—

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी।
परम प्रताप तेज बल रासी ॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी।
ससि केसरी गगन बन चारी ॥
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा।
निसि सुंदरी केर सिंगारा ॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

तरुणतमालकोमलमलीमसमेतदयम्
कलयति चन्द्रमाः किल कलंकमिति ब्रुवते।

तदनृतमेव निर्दयविधुन्तुददन्तपद-
व्रणविवरोपदर्शितमिदं हि विभाति नभः ॥

रामचरितमानस—

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई ।
ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाई ॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई ।
उर महुँ परी स्यामता सोई ॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

रामचरितमानस—

नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं ।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥
साहस अनृत चपलता माया ।
भय अबिबेक असौच अदाया ॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् ।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम् ॥

रामचरितमानस—

कालदण्ड गहि काहि न मारा ।
हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्सुमहात्मनः ॥

रामचरितमानस—

पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

सज्जनस्य हृदयं नवनीतं
यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम्।
अन्यदेहविलसत्परितापात्-
सज्जनो द्रवति नो नवनीतम्॥

रामचरितमानस—

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह पै कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

सुभाषित-रत्न-भाण्डागार—

वज्रादपि कठोराणि,
मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि
को हि विज्ञातुमर्हति॥

रामचरितमानस—

कुलिसहु चाहि कठोर अति
कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस अस राम कर
समुझि परै कहु काहि॥

वाल्मीकि—

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

रामचरितमानस—

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं।
अइसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे।
सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

वाल्मीकि—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः।

रामचरितमानस—

जयति राम जय लछिमन
जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि
भालु महाबलसीव॥

वाल्मीकि—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

रामचरितमानस—

सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जिय जागहु ताता।
मिलै न जगत सहोदर भ्राता॥

वाल्मीकि—

औरसीं भगिनीं वापि भार्य्यां वाप्यनुजस्य यः ।
प्रचरेत नरः कामात् तस्य दंडो वधः स्मृतः ॥

रामचरितमानस—

अनुज बधू भगिनी सुत नारी ।
सुनु सठ कन्या सम ये चारी ॥
इनहिं कुदृष्ट बिलोकहि जोई ।
ताहि बधें कछु पाप न होई ॥

वाल्मीकि—

क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम् ।
वानाराणां नराणां च कथमासीत्समागमः ॥

रामचरितमानस—

नर बानरहि संग कहु कैसें ।
कही कथा भै संगति जैसें ॥

गीता—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

रामचरितमानस—

जब जब होइ धर्म कै हानी ।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब हरि धरि बिबिध सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

गीता—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

रामचरितमानस—

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी ।
परमारथी प्रपंच बियोगी ॥

गीता—

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।

रामचरितमानस—

संभावित कहँ अपजस लाहू ।
मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥

गीता—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

रामचरितमानस—

उमा दारुयोषित की नाईं ।
सबहिं नचावत राम गुसाईं ॥

गीता—

तुल्यनिंदास्तुति मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥

रामचरितमानस—

निन्दा अस्तुति उभय सम,
ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय,
गुनमन्दिर सुखपुंज ॥

गीता—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

रामचरितमानस—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी।
कोउ इक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महु कोई।
विषय बिमुख विराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई।
सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवन्त कोटिक महँ कोऊ।
जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन सहस्र महुँ सब सुखखानी।
दुर्लभ ब्रह्म लीन बिज्ञानी॥

आनन्द-रामायण—

पर्वतश्रेण्यो राजन् भुवनानि चतुर्दश॥
तेषु चोत्तमकर्माणि मेघा भूत्वा स्थले स्थले।
पूर्णानन्दपयोवृष्टिं कुर्वन्ति वसुधातले॥
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि समस्तसुखसम्पदः।
नद्यो भूत्वा त्वयोध्याब्धि मिलन्त्यवधवासिनः॥
नरा नार्यश्च सम्पूर्णाः सदा सुकृतकारिणः।
बहुमूल्यानि रत्नानि पवित्राणि पराणि च॥

रामचरितमानस—

भुवन चारिदस भूधर भारी।
सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई।
उमगि अवध अंबुधि कहु आई॥

मनिगन पुर नर नारि सुजाती।
सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती॥

आनन्द-रामायण—

सीतारामप्रेमपीयूषपूर्णं
जन्म स्यान्नो केकयीनन्दनस्य।
चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीनां
योगान् राजन् भारतेऽस्मिन्पवित्रे॥
दारिद्रयदम्भदाहानां दुःखदूषणयोस्तथा।
कीर्तिव्याजेन को नाशं कुर्यात्कलियुगे हठात्॥
शठान्नो कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्रामसम्मुखे।

रामचरितमानस—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन
होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम
दम विषम व्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन
सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठहिं
हठि राम सनमुख करत को॥

सीता-शृङ्गार-चम्पू—

चन्द्रं वीक्ष्य जगाद चन्द्रवदनां
श्रीरामचन्द्रं स्मरन्।
चन्द्र! त्वं विषसोदरो हि गरलोऽ-
तिष्ठत्त्वयि प्रेमतः॥

तच्छंके विषसंयुतैः स्वकिरणैः
कान्ता-विहीनान् जनान् ।
कष्टं संजनयत्यपि त्वयि तत-
स्सद्धर्मता स्यात्कुतः ॥

रामचरितमानस—

प्रभु कह गरल बन्धु ससि केरा ।
अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ॥
बिष संजुत कर निकर पसारी ।
जारत बिरहवंत नर नारी ॥

प्रस्ताव-रत्नाकर—

मूर्खोऽशांतस्तपस्वी क्षितिपतिरलसो
मत्सरी धर्मशीलो
दुःस्थो मानी गृहस्थः प्रभुरतिकृपणः
शास्त्रभृद्धर्महीनः ।
आज्ञाहीनो नरेन्द्रः शुचिरपि
सततं यः पराम्नोपभोजी
वृद्धो रोगी दरिद्रो बहुयुवतिपति-
र्धिग् विडंबप्रकारान् ॥

रामचरितमानस—

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा ।
अति दरिद्र अजसी अतिबूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी ।
बिस्णुबिमुख स्रुति संत बिरोधी ॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी ।
जीवंत सव सम चौदह प्रानी ॥

समयादर्श—

सोऽयं सेतुविधिं विधाय जलधौ
प्राप्तस्त्रिकूटाचलम् ।
पश्यन् विंशतिलोचनैरपिभवान
न्धः कथं वल्लभ !

रामचरितमानस—

सो नर क्यों दसकन्ध,
बालि बध्यो जेहि एक सर ।
बीसहु लोचन अंध,
धिक तव जनम कुजाति जड ॥

उत्तररामचरित—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥

रामचरितमानस—

राजन राउर नामु जसु,
सब अभिमत दातार ।
फल अनुगामी महिपमनि,
मन अभिलाषु तुम्हार ॥

कुमार-सम्भव—

शाम्येत्प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।

रामचरितमानस—

बिनय न मान खगेस सुनु,
डाँटेहि पै नवै नीच ॥

गर्ग-संहिता—

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः ।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ॥

रामचरितमानस—

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी ।
सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

चम्पू-रामायण—

एवं निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्रः
प्राणानमुष्य हरतेति भटानवादीत् ।
आजन्मशुद्धमतिरत्र विभीषणस्तम्
दूतो न बध्य इति शास्त्रगिरा रुरोध ॥

रामचरितमानस—

सुनि कपि बचन बहुत खिसियाना ।
बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाये ।
सचिवन्ह सहित बिभीषनु आये ॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता ।
नीति बिरोध न मारिय दूता ॥

चाणक्य-नीति—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

रामचरितमानस—

आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥

जाकर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥

देवी-भागवत—

उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् ।
पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः ॥

रामचरितमानस—

नाना बिधि बिनती करि,
प्रभु प्रसन्न जिय जानि ।
नारद बोले बचन तब,
जोरि सरोरुह पानि ॥

पंच-तंत्र—

उद्यमेन बिना राजन्न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः ।
कातरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥

रामचरितमानस—

कादर मन कहुँ एक अधारा ।
दैव दैव आलसी पुकारा ॥

भट्टि-काव्य—

ज्ञात्वा मासमतिक्रांतं व्यथामवलजम्बिरे ।
अकृत्वा नृपतेः कार्यं पूजां लप्स्यामहे कथम् ॥

रामचरितमानस—

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं ।
बीती अवधि काज कछु नाहीं ॥
सब मिलि कहहिं परस्पर बाता ।
बिनु सुधि लिये करब का भ्राता ॥

ब्रह्मवैवर्त-पुराण—

इन्द्रोपेन्द्रविरंच्याद्यैर्यत्कृपा लभ्यते सुरैः।

रामचरितमानस—

जासु कृपा अज सिव सनकादी।
चहत सकल परमारथबादी॥

विष्णु-पुराण—

ऊहुरुन्मार्गगामीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः।
मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव॥

रामचरितमानस—

छुद्र नदी भरि चली तोराई।
जस थोरेहु धन खल इतराई॥

भर्तृहरि-शतक—

कान्ताकटाक्षविशिषा न लुनन्ति यस्य
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः॥

रामचरितमानस—

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पास जेहि गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया॥

भोज-प्रबन्ध—

सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू।

रामचरितमानस—

सुमति कुमति सबके उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥

महाभारत—

सा ददर्श गिरिप्रस्थे पंच वानरपुंगवान्।
तत्र वासो महद्दिव्यमुत्ससर्ज मनस्विनी॥

रामचरितमानस—

गिरि पर बैठे कपिन निहारी।
कहि हरि नाम दीन्हि पट डारी॥

विष्णु-पुराण—

ध्यायन्कृते यजन् यज्ञै-
स्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति
कलौ श्रीरामकीर्तनात्॥

रामचरितमानस—

कृत युग सब जोगी बिज्ञानी।
करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेता त्रिबिध जग्य नर करहीं।
प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा।
नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा॥

सामवेद—

तत्त्वमसि ।

रामचरितमानस—

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा ।

सत्योपाख्यान—

यत्र यत्र भुशुण्डोपि
तत्र तत्र रघूद्वहः ।
सप्तभूविवरान् काकः
गतो रामभयात् द्रुतम् ॥
तत्र गत्वा शिशुं राम-
मजस्य निजसद्मनि ।
अजाद्यैश्चैव मुनिभिः
पादयोः परिशीलितम् ॥

रामचरितमानस—

जिमि जिमि दूर उड़ाउँ अकासा ।
तहँ भुज हरि देखौं निज पासा ॥
सप्तावरन भेद करि
जहाँ लगे गति मोरि ।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि
ब्याकुल भयउँ बहोरि ॥

वैराग्य-शतक—

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्
संसार-विच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटु-
र्धर्मोपि नोपार्जितः ।

मातुः केवलमेव यौवनवन-
च्छेदे कुठारा वयम् ॥

रामचरितमानस—

साधु समाज न जाकर लेखा।
राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जाय जियत जग सो महिभारू।
जननी जौबन बिटप कुठारू॥

भर्तृहरि-शतक—

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गते च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

रामचरितमानस—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटै अवगुनहि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा।
स्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

शुक्र-नीति—

शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरिचिन्तनीय—
माराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः।
क्रोडे कृतापि युवती परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्॥

रामचरितमानस—

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ ।
भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥
राखिअ नारि जदपि उर माहीं ।
जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥

भट्टगोविन्दराज—

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः
संगात्सुतो लालनात् ।
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनया-
च्छीलं खलोपासनात् ॥
ह्रीमद्यादनवेक्षणादपि कृषिः
स्नेहः प्रवासाश्रया—
न्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनया-
त्त्यागात् प्रमादाद्धनम् ॥

रामचरितमानस—

संग ते जती कुमंत्र ते राजा ।
मान ते ग्यान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी ।
नासहि बेगि नीति असि सुनी ॥

श्वेताश्वतरोपनिषत्—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥

रामचरितमानस—

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

इनके सिवा संस्कृत के और जिन ग्रन्थों के बिंब-प्रतिबिंब भाव 'मानस' में मिलते हैं, उनके उदाहरण यहाँ स्थानाभाव से न देकर केवल नाम दिये जाते हैं।—

अग्नि-पुराण, अद्‌भुत-रामायण, अभिज्ञान-शाकुन्तल, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीतिसार, किरातार्जुनीय, गीत-गोविन्द, चाणक्य-नीति, नल-चम्पू, नारद-पंचरत्न, नैषध, पराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वशिष्ठ-संहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, बाल-रामायण, विदग्ध-मुख-मण्डन, मत्स्य-पुराण, महानिर्वाणतन्त्र, महावीर-चरित्र, महिम्न-स्तोत्र, याज्ञवल्क्य-स्मृति, रुद्रयामल, वामन-पुराण, शिव-पुराण, शिशुपाल-वध, स्कन्द-पुराण, श्रुत-बोध, हरिवंश-पुराण और हारीत-स्मृति इत्यादि।

तुलसीदास की अन्य रचनायें

पहले तुलसीदास के जिन तेरह ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, उनके अतिरिक्त उनके नाम से और भी कई पुस्तकें मिलती हैं, जिनकी लम्बी सूची इस पुस्तक के प्रारम्भ में दी हुई है। पर वे सभी मानसकार तुलसीदास की लिखी हुई हैं ? या किसी अन्य तुलसीदास की ? यह कहना कठिन है। उनकी भाषा और शैली सभी कुछ निम्न-श्रेणी के कवियों की-सी है। यदि मानसकार तुलसीदास ही को उनका रचयिता मानना पड़ेगा, तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि वे रचनायें तुलसीदास के कवि-जीवन के प्रारम्भिक दिनों की हैं; कुछ विशेषज्ञों ने तुलसीदास नाम के कई रामभक्त कवियों के नामोल्लेख किये हैं।—

एक तुलसीदास गीतावली, कवितावली, रामचरितमानस और विनय-पत्रिकाकार थे। दूसरे तुलसीदास देवीपाटन के पंडित तुलाराम मिश्र (पेयासी) थे जिनकी स्त्री का नाम रत्नावली था और जिसके कटुवचन से विद्ध होकर वे घर से भाग निकले थे। विरक्त होने पर तुलाराम तुलसीदास हुये। कहा जाता है कि उन्होंने अष्टकांडी रामायण की रचना की थी; जिसका लवकुश-कांड आजकल क्षेपक-सहित रामायण के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। रामायण के और भी कई क्षेपक उन्हीं के रचे हुये बताये जाते हैं। और यह भी कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं क्षेपक मिलाकर रामायण की नवीन प्रति तैयार कराई थी, जो अबतक प्रचलित है। तीसरे तुलसीदास ने छप्पै रामायण, कुंडलिया रामायण, छन्दावली रामायण और कड़खा रामायण की रचना की थी। ये सोरों के निवासी और मानसकार तुलसीदास के अवतार माने जाते हैं। चौथे तुलसीदास हाथरस वाले संत थे।

उन्होंने 'घट रामायण' की रचना की थी। वे 'तुलसी साहब' के नाम से अधिक विख्यात हैं। पाँचवें तुलसीदास गाज़ीपुर के कोई कायस्थ थे। स्व० पंडित सुधाकर द्विवेदी "तुलसी-सतसई" को उन्हीं की कृति कहते हैं। दंत-कथाओं के आधार पर कहा जाता है कि शेष सभी तुलसीदास अपने को मानसकार तुलसीदास का अवतार कहते थे। पर जो तुलसीदास बचपन में सोरों में रहे थे, जैसा उन्होंने मानस में "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर-खेत" लिखकर स्वीकार किया है, वे ही मानसकार तुलसीदास हैं, ऐसा ही क्यों न मानना चाहिये ? अन्य कोई तुलसीदास बचपन में सोरों में राम-कथा सुनने क्यों गये होंगे ? दंत-कथाओं में अभीतक इसका उत्तर नहीं जोड़ा गया है।

यदि तुलसीदास के नाम से प्रसिद्ध उपर्युक्त तेरह ग्रन्थों के सिवा अन्य और भी कुछ ग्रंथ उन्हीं के रचे हुये मान लिये जायँ, तो कम से कम मुझे तो इसमें कोई असम्भावना नहीं जान पड़ती। क्योंकि मानसकार एक ही दिन में मानसकार नहीं हुये होंगे। उसके पहले बचपन से मानस तक पहुँचने में उन्होंने बहुत-सी रचनायें की होंगी। सभी रचनायें मानस की कोटि की कैसे हो सकती थीं ? बुद्धि के विकास के साथ ही कवित्व विकसित हुआ होगा; यहाँ तक कि मानस के बाद उनकी श्रेष्ठतम रचना विनय-पत्रिका की सृष्टि हुई। आजकल भी मेरे आदरणीय मित्र पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने प्रियप्रवास और बोलचाल नाम की दो पुस्तकें ऐसी लिख दी हैं, जो सौ-दो-सौ वर्षों बाद, यदि कोई अकाट्य प्रमाण उनके एक ही अयोध्यासिंह-द्वारा रचित होने का सुरक्षित न रहा, तो वे रचनायें दो अयोध्यासिंह के होने का भ्रम उपस्थित कर देंगी। ऐसा ही मानसकार और कड़खा रामायणकार तुलसीदास के सम्बंध में भी सोचा जा सकता है।

तुलसीदास की रचनाओं का काल-क्रम

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम के संबंध में बहुत पहले से मतभेद चला आ रहा है। चरित-लेखकों ने अपनी-अपनी कल्पनाओं के आधार पर उनकी रचनाओं का भिन्न-भिन्न समय निर्धारित किया है। रामचरितमानस, पार्वती-मंगल और तुलसी-सतसई में ग्रंथकार ने रचना का समय स्वयं लिख दिया है, इससे उनके लिये, तो कोई विवाद है ही नहीं। पर अन्य ग्रंथों में समय नहीं दिया रहने से उनकी भाषा, वर्णन-शैली और वर्णित विषयों के साथ कवि का तात्कालिक वातावरण देखकर ही उनका समय निर्धारित करना पड़ता है। तुलसीदास की रचनाओं का यथाशक्ति अच्छी तरह अनुशीलन करने पर मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, उसका विवरण आगे देता हूँ।

पहले तो हमें तुलसीदास की रचनाओं को दो वर्गों में विभाजित कर लेना चाहिये। एक वर्ग में उनके प्रबंध-काव्य है, जिनकी रूप-रेखा साद्यंत कवि के हाथ की निर्मित है। दूसरे वर्ग में संग्रह-ग्रंथ हैं, जिनके बारे में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे तुलसीदास ही द्वारा संगृहीत हुये हैं। संभव है, तुलसीदास के जीवन-काल ही में या उनके पश्चात् किसीने उनको अपनी रुचि के अनुसार संग्रह कर दिया हो। बरवै रामायण का जो स्वरूप इस समय उपलब्ध है, उसके कांडों का विभाजन तो निश्चय ही तुलसीदास के हाथ का किया हुआ नहीं जान पड़ता। ऐसी ही बात दोहावली और तुलसी-सतसई के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। हरएक ग्रन्थ का

अलग-अलग विवेचन करते समय इस पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

रचना-क्रम की दृष्टि से भी हमें तुलसीदास के ग्रन्थों को दो भागों में विभाजित कर लेना होगा। उनकी सबसे प्रधान रचना रामचरित-मानस है। रामचरित-मानस के रचे जाने के पहले उनकी जो रचनायें हैं, वे पहले भाग में हैं, और उसके बाद की दूसरे भाग में। दोनों भागों की रचनाओं में जो भाव व्यक्त किये गए हैं, उन पर तुलसीदास की आयु और रचना के समय की उनकी परिस्थिति का भी प्रभाव पड़ा होगा। अतएव हमें पहले तुलसीदास का जीवन-क्रम देख लेना चाहिये, तभी उनकी रचनाओं के काल-क्रम के निर्णय में हमें सुविधा होगी।

तुलसीदास का जन्म-संवत् यद्यपि अभी तक विवाद-ग्रस्त है, पर उनके जन्मकाल का कोई न कोई एक आधार लिये बिना हम आगे चल ही नहीं सकते। पहले हम लिख चुके हैं कि तुलसीदास का जन्म-संवत् १५८९ ठीक माना जाता है, अतएव उसी को आधार मानकर उनके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं की एक तालिका यहाँ प्रस्तुत की जाती है।—

संवत्	मुख्य घटनायें	आयु
१५८९	जन्म	०
१५८९ से १६०० तक	बालपन	१—११ वर्ष
१६०० से १६१५ तक	शिक्षा	११—२६ ,,
१६१५	विवाह	२६ ,,
१६१५ से १६२० तक	गार्हस्थ्य, ग्रंथ रचना	२६—३१ ,,
१६२०	गृह-त्याग	३१ ,,
१६२० से १६८० तक	भ्रमण, ग्रन्थ-रचना तथा काशीवास	३१—९१ ,,
१६८०	शरीरांत	९१ ,,

ग्रन्थ-रचना की क्रम-सूची इस प्रकार है।—

ग्रन्थ	रचना-काल	आयु	
वैराग्य-संदीपिनी	१६१५ के लगभग	२६	वर्ष
कवितावली	१६१० से १६७१	२१—८२	,,
दोहावली	१६१० से १६७१	२१—८२	,,
तुलसी-सतसई	१६१० से १६४२	२१—५३	,,
बरवै-रामायण	१६१० से १६४०	२१—५१	,,
रामलला-नहछू	१६१५ के लगभग	२६	,,
गीतावली	१६१५ से १६२०	२६—३१	,,
रामाज्ञा-प्रश्न	१६२० के लगभग	३१	,,
जानकी-मंगल	१६२४ के लगभग	३५	,,
अयोध्या-कांड	१६२५ से १६२८	३६—३६	,,
श्रीकृष्ण-गीतावली	१६२८ से १६३०	३६—४१	,,
रामचरितमानस	१६३१ से १६३७	४२—४८	,,
पार्वती-मंगल	१६४३	५४	,,
विनय-पत्रिका	१६४५ से १६६८	५६—७६	,,

इस प्रकार तुलसीदास के जीवन की मुख्य-मुख्य साहित्यिक घटनाओं की एक क्रम-सूची तैयार होती है। इस सूची को लेकर तुलसी-साहित्य के विद्वानों में मतभेद होना संभव है। कल्पित रचना-क्रम का एक नया प्रस्ताव सब सहज में स्वीकार कर लेंगे, ऐसी आशा नहीं की जा सकती; पर मतभेद के भय से इस प्रश्न की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि मेरी युक्तियाँ पढ़कर तुलसी-साहित्य के सब मर्मज्ञ मेरे निर्णय का समर्थन करेंगे।

अब रचना-काल के क्रम से एक-एक पुस्तक की अलग-

अलग जाँच करके हम यह दिखाना चाहते हैं कि किन आधारों पर ऊपर की तालिका में दिया हुआ समय ठीक है।

वैराग्य-संदीपिनी

पहले हम वैराग्य-संदीपिनी को लेते हैं। इसके सम्बन्ध में कि ग्रन्थ-रूप में यह तुलसीदास की सर्व-प्रथम रचना है, बहुत कम मतभेद है। इसमें कुल ६२ पद्य हैं, जिनमें ४६ दोहे, २ सोरठे और १४ चौपाइयाँ हैं। इस छोटी-सी पुस्तिका की श्लाघा स्वयं तुलसीदास ने इन शब्दों में की है।—

तुलसी बेद पुरान मत , पूरन सास्त्र बिचार।
यह बिराग संदीपिनी , अखिल ज्ञान को सार॥

संभवतः रामचरितमानस के बाद यह संदीपिनी लिखी गई होती, तो इसे इतना महत्वपूर्ण पद न मिलता।

वैराग्य-संदीपिनी का पहला दोहा यह है।—

राम बाम दिसि जानकी , लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय , सुरतरु तुलसी तोर॥

यही दोहा तुलसीदास ने रामाज्ञा, दोहावली और सतसई में भी दिया है। दोहावली का यह पहला दोहा है। अतएव इससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि दोहावली से पहले वैराग्य-संदीपिनी की रचना हुई होगी।

भाषा की दृष्टि से यह रचना बहुत शिथिल है। इसकी चौपाइयों में वह माधुर्य नहीं, जो मानस की चौपाइयों में है; बल्कि वे निरी तुकबन्दियाँ-सी मालूम होती हैं; जैसी संतों की बानियों में मिलती हैं। तुलसीदास की युवावस्था

में उत्तर भारत में संतमत का प्राबल्य था, उसकी छाप वैराग्य-संदीपिनी पर स्पष्ट है। संत कवियों ने अपने छंदों में 'साहब' और 'सतगुरु' शब्द का बहुत प्रयोग किया है।—

सतगुरु महल बनाइया,
प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारने,
सबद झरोखा कीन्ह॥
(कबीर)

साहिब दर दादू खड़ा,
निसिदिन करै पुकार।
मीराँ मेरा मिहर करि
साहिब दे दीदार॥
(दादू)

मोदी सब संसार है,
साहिब राजा राम।
जापर चिट्ठी ऊतरै,
सोई खरचे दाम॥
(मलूकदास)

सुन्दर दिल की सेज पर,
औरति है अरवाह।
इसको जाग्या चाहिये,
साहिब बे परवाह॥
(सुन्दरदास)

साहिब से सतगुरु भये,
सतगुरु से भये साध।

ये तीनों अँग एक हैं,
गति कछु अगम अगाध ॥
(ग़रीबदास)

आठ पहर जो छकि रहै,
मस्त अपाने हाल।
पलटू उनसे सब डरै,
वो साहिब के लाल ॥
(पलटूदास)

वैराग्य-संदीपिनी में 'सतगुरु' और साहिब' दोनों शब्द आये हैं ।—

जहँाँ सांति सतगुरु की दई।
तहँाँ क्रोध की जर जरि गई ॥

अति कोमल अति विमल रुचि,
मानस में मल नाहिँ ।
तुलसी रत मन होइ रहै,
अपने साहिब माँहि ॥

इसके बाद तो तुलसीदास ने अपने काव्यों में 'साहिब', 'साहिब' की भरमार कर दी है। हाँ, वे वैराग्य-संदीपिनी से जितने ही दूर चले गये, उतना ही यह शब्द उनसे छूटता गया। उनकी अंतिम रचना 'विनय-पत्रिका' में भी यह शब्द आया है, पर उतना नहीं, जितना अयोध्याकांड में। कवितावली के प्रारम्भ के छन्दों में भी इस शब्द का मुक्तहस्त प्रयोग है। पर 'सतगुरु' शब्द का प्रयोग उन्होंने बहुत कम कर दिया था। 'मानस' में उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया है ।—

भूमि जीव संकुल रहे,
गये सरद ऋतु पाइ।
सतगुरु मिले जाहिँ जिमि
संसय भ्रम समुदाइ॥

(किष्किंधा काण्ड)

संत कवियों की साखियों में सतगुरु की महिमा, सत्संग की महिमा, स्त्रियों से घृणा, नाम की महिमा, अरबी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य, नीच को उच्च बनाने की प्रवृत्ति और संसार की असारता का उपदेश काफ़ी रहता है। तुलसीदास की रचनाओं में भी आदि से अंत तक संतमत की ये विभूतियाँ सजी दिखाई पड़ती हैं। अतएव इन्हीं कारणों से वैराग्य-संदीपिनी को मैं उनकी सबसे प्रथम रचना मानता हूँ, और उसका समय सं० १६१५ निर्धारित करता हूँ, जब उनकी आयु २६ वर्ष की थी और वे वैवाहिक जीवन में प्रवेश कर चुके थे।

कवितावली

यद्यपि तुलसीदास ने २६ वर्ष की आयु में वैराग्य-संदीपिनी की रचना की, पर इसका यह अर्थ नहीं कि कविता लिखना भी उन्होंने उसी आयु में प्रारंभ किया होगा। मेरी राय में वे विद्यार्थी-जीवन ही से कविता-रचना करने लगे थे। वे एक रामभक्त और स्मार्त वैष्णव गुरु के शिष्य थे, अतएव रामभक्ति-परक कविताएँ छात्रावस्था ही से लिखते रहना उनके लिये बिल्कुल ही स्वाभाविक था। उनकी छात्रावस्था का अन्त और वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ बहुत आस ही पास हुआ होगा और जबतक वे वैष्णव गुरु की सीमा से बाहर नहीं हुये होंगे, तबतक संतमत की ओर आकर्षित भी नहीं हो सके होंगे। अतएव वैराग्य-संदीपिनी

की रचना तो छात्रावस्था के उपरान्त ही हुई होगी। पर उसके पहले वे फुटकर रचनायें किया करते थे, जिनका संग्रह कवितावली में उन्होंने स्वयं या किसीने कर दिया है।

कवितावली सात कांडों में विभक्त है। पर जिस तरह कांडों की मर्यादा 'मानस' में निभाई गई है, उस तरह कवितावली में नहीं। अरण्य-कांड में तो केवल एक ही सवैया है, जिसका चौथा चरण यह है।—

हेमकुरंग के संग सरासन
सायक लै रघुनायक धाये।

यह कांड तो निश्चित ही अपूर्ण है। तुलसीदास ने स्वयं कांड-विभाग किया होता तो इसे अपूर्ण वे किसी हालत में न रहने देते। मालूम होता है, किसी अन्य व्यक्ति ने कवितावली को सात कांडों में विभक्त करने का प्रयास किया है, और अरण्य-कांड सम्बन्धी एक ही सवैया उसे मिला, जिसको लेकर उसने कांड का नामकरण कर दिया।

इसी प्रकार किष्किंधा-कांड में भी एक ही कवित्त है और उसमें केवल हनुमान के समुद्रोल्लंघन का ज़िक्र है। अतएव मेरा अनुमान है कि कवितावली का संकलन तुलसीदास ने नहीं, बल्कि किसी और ने किया है। इससे कवितावली के बाल-कांड के प्रारंभिक छंदों को, जो कविता की दृष्टि से उत्कृष्ट श्रेणी के हैं, कभी न समझना चाहिये कि तुलसीदास ने उन्हें प्रारम्भ ही में रक्खा था।

तुलसीदास के हृदय में राम-कथा को सर्वोपयोगी बनाने की भावना प्रबल वेग से उमड़ी हुई थी। इससे उन्होंने अपने भावों को व्यक्त करने में सरल भाषा ही का सहारा नहीं लिया,

छंदों के सम्बन्ध में भी लोक-रुचि का ध्यान रक्खा। कहीं-कहीं उन्होंने एक ही भाव से भिन्न-भिन्न छंदों को अनुप्राणित कर दिया है। इससे भावों को लेकर, कि कौन-सा भाव किससे किसमें गया, ग्रन्थों का समय-निर्धारण युक्तिपूर्ण नहीं कहा जायगा।

कवितावली के छंद शृङ्खलाबद्ध नहीं हैं। इससे कवि की भाषा और भावों के क्रमिक विकास का इतिहास उसमें नहीं मिल सकता। पर उसमें वर्णित घटनायें हमको यह मानने को विवश करती हैं कि वह तुलसीदास के जीवन में एक लम्बे समय का सहयोगी और उनका एक प्रामाणिक साक्षी है।

कवितावली के जो छंद कवि की छात्रावस्था के हैं, उनकी भाषा में सहज सौन्दर्य नहीं है; जान-बूझकर उसे सजाने की चेष्टा दिखाई पड़ती है।—

अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा,
सब लंक ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से वीर पचारि कै,
हारि निसाचर सैन पचा।
न टरै पग मेरुहु तें गरुओ,
सो मनो महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत हैं,
जग में बल सालि है बालि बचा॥

ऐसी रचनायें छन्द-रचना प्रारम्भ करने के दिनों ही की हो सकती हैं।

छंदों में त्रुटियाँ भी पाई जाती हैं, जैसा कि नौसिख पद्य-रचयिताओं के छन्दों में प्रायः देखने में आती हैं।—

तुलसी सो राम के सरोज पानि परसत ही,
टूट्यो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।

इसमें पहली पंक्ति में एक वर्ण अधिक है।

कवितावली में अरबी-फ़ारसी के शब्दों का जितना अधिक प्रयोग पाया जाता है, उतना तुलसीदास के किसी ग्रन्थ में नहीं। इससे भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है कि कवितावली के कुछ कवित्त कवि के उस वातावरण में रचे गये हैं, जब वह अपनी मातृभाषा में शौक से कविता लिखकर अपनी कवित्त्व-शक्ति का प्रदर्शन करना चाहता था।

कवितावली के लम्बे जीवन-काल में तुलसीदास के सभी ग्रन्थ लिखे गये, इससे उसके भावों की छाया उन सब में विद्यमान है। या इसे यों भी कह सकते हैं कि उसके सामने से गुज़रनेवाले सब ग्रन्थों के स्मृति-चिन्ह उसमें सुरक्षित हैं। या कवितावली तुलसीदास के साहित्य-वृक्ष पर एक लता के समान है, जो उसकी हरएक शाखा-प्रशाखा पर अपनी पकड़ रखती है। या तो तुलसीदास पहले कवितावली के कवित्त लिखकर तब उनमें आये हुये भावों को तत्सामयिक ग्रन्थों में उँड़ेल लेते थे, या अन्य ग्रंथों से भावों को लेकर उसके कवित्त भी बना लेते थे। जो हो, कवितावली से तुलसीदास के अन्य ग्रंथों का आमना-सामना ज़रूर रहा है।

कवितावली के भाव क़रीब-क़रीब सभी ग्रंथों में मिलते हैं।—

कवितावली—

तुलसी सो राम के सरोज पानि परसतही,
टूट्यो मानो बारेतें पुरारि ही पढ़ायो है।

गीतावली—

सोई प्रभु कर परसत टूट्यो जनु,
हुतो पुरारि पढ़ायो।

कवितावली—

तुलसी सुनि केवट के बर बैन,
हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।

रामचरितमानस—

सुनि केवट के बैन,
प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन,
चितै जानकी लखन तन॥

कवितावली—

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि,
न खाँगो कछू जनि माँगिये थोरो।
राँकनि नाकप रीझि करै,
तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो॥
नाक सँवारत आयो हौं नाकहि
नाहिं पिनाकिहि नेक निहोरो।
ब्रह्म कहै गिरिजा सिखवो
पति रावरो दानि है बावरो भोरो॥

विनय-पत्रिका—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु बेद बड़ाई भानी।

* *

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकवानी॥

अब कथा-भेद पर आइये। मानस की रचना के पहले तुलसीदास ने रामचरित की कोई निश्चित रूप-रेखा स्वयं नहीं तैयार की थी, इससे मानस से पहले रचे हुये तुलसीदास के काव्यों में कथा का आधार मुख्यतः वाल्मीकि-रामायण है।

कवितावली में भरत का नाम एक ही दो बार आया है, पर मानस में एक कांड का कांड ही भरत की महिमा से सन्निवेशित है। कवितावली में केवट की दीनता का बड़ा खुला वर्णन है, पर मानस में बहुत शिष्ट है। कवितावली में सीता-हरण, सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध और लंका-प्रयाण का ज़िक्र ही नहीं है। इससे, तो यही निश्चित होता है कि तुलसीदास भावुकता-वश कभी-कभी जो कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छन्द लिख दिया करते थे, कवितावली में उन्हीं को किसी ने संग्रह कर दिया है।

कवितावली के उत्तरकांड में कुछ ऐसे छन्द भी हैं, जो कृष्ण-सम्बन्धी हैं. ये भी इस बात के प्रमाण हैं कि कवितावली का कांड-विभाग किसी सिद्धान्त पर निर्भर नहीं है। कुल स्फुट छन्दों को कहीं न कहीं स्थान देना था, संकलन-कर्त्ता ने उन्हें अपनी रुचि के अनुसार दे दिया है।

कवितावली के अन्त में हनुमानबाहुक शीर्षक से छप्पय, झूलना, घनाक्षरी और सवैया छन्दों का एक गुच्छक है। उसमें तुलसीदास ने अपनी बाहु-पीड़ा के निवारणार्थ हनुमान की स्तुति की है। यह गुच्छक कवितावली के अन्त में रक्खा हुआ मिलता है, इसीसे तुलसीदास की बाहु-पीड़ा भी उनके जीवन के अन्त में उठी हो, यह कोई सजीव दलील नहीं है। यह गुच्छक तो मध्य में भी कहीं रक्खा जा सकता है और उस दशा में बाहु-पीड़ा को तुलसीदास के जीवन के मध्य में घसीटना इतिहास के लिये कैसे

उपहास की बात होगी। इन कारणों से मैं उसका प्रारंभ तुलसीदास की छात्रावस्था से, अर्थात् १६१० से मानता हूँ और उसमें रुद्रबीसी और मीन के शनैश्चर का वर्णन है, इससे उसका संकलन कम से कम सं० १६७१ तक होता रहा है और यदि 'क्षेमकरी' का सवैया तुलसीदास के अंतिम दिन का माना जाय, तो उसका निर्माण-काल सं० १६८० तक पहुँच जाता है।

दोहावली

दोहावली की रचना का प्रारम्भ भी कवितावली के साथ-साथ संवत् १६१० से माना जाना चाहिये। दोहावली में कुछ ऐसे दोहे भी हैं, जो वैराग्य-संदीपिनी, रामाज्ञा-प्रश्न, मानस और सतसई में भी मिलते हैं। इससे कुछ विद्वज्जन यह अनुमान करते हैं कि उपर्युक्त ग्रंथों के बन जाने ही पर दोहावली में वे दोहे आ सकते हैं, अतएव दोहावली का निर्माण उनके बाद हुआ होगा। इस तर्क में कुछ सार नहीं जान पड़ता। क्योंकि दोहावली के दोहे किसने संग्रह किये, यह निश्चित नहीं है। दोहे किसी घटना या कथा-विशेष को लक्ष्य में रखकर नहीं लिखे गये हैं, अतएव दोहावली के सब दोहे तुलसीदास के रचे हुये होने पर भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सभी दोहे सतसई की रचना के बाद रचे गये। कुछ दोहे मानस के पहले भी रचे गये होंगे और कुछ बाद भी। उन सबको एकत्र करके और उनमें कुछ दोहे तुलसीदास के अन्य ग्रन्थों से चुनकर किसीने दोहावली तैयार कर दी है। जो दोहे दोहावली के असली हैं और जिनका उल्लेख तुलसीदास के अन्य ग्रन्थों में नहीं पाया जाता, उनको ध्यान से पढ़ने पर उनमें कुछ दोहे ऐसे मिलते हैं, जिनमें तुलसीदास की दृष्टि बाह्यजगत् की ओर अधिक दौड़ती हुई नज़र

आती है, अन्तर की तरफ़ कम ।—

लही आँखि कब आँधरे,
बाँझ पूत कब ल्याय ।
कब कोढ़ी काया लही,
जग बहराइच जाय ॥

काल तोपची तुपक महि
दारू अनय कराल ।
पाप पलीता कठिन गुरु,
गोला पुहुमी पाल ॥

का भाषा का संसकृत,
प्रेम चाहिये साँच ।
काम जु आवै कामरी,
का लै करै कुमाच ॥

यह दोहा तो उस समय का कहा जाता है, जब तुलसीदास 'मानस' की रचना कर रहे थे, या कर चुके थे ।

दोहावली का यह १७८ वाँ दोहा, तो उनकी वृद्धावस्था ही का हो सकता है ।—

रोग निकर तनु, जरठ पनु,
तुलसी संग कुलोग ।
रामकृपालै पालिये,
दीन पालिबे जोग ॥

कवितावली के अनुसार तुलसीदास को बाहु-पीड़ा हुई थी । उसीकी शांति के लिये हनुमानबाहुक बना था, उस समय के तीन दोहे दोहावली में भी पाये जाते हैं ।—

तुलसी तनु सर सुख जलज,
भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिये,
कपि केसरी किसोर॥

भुज तरु कोटर रोग अहि,
बरबस कियो प्रवेस।
बिहँगराज बाहन तुरत,
काढ़िय मिटइ कलेस॥

बाहु बिटप सुख बिहँग थलु,
लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिये,
बेगि दीन हित लागि॥

ये दोहे दोहावली के २३४, २३५ और २३६ नंबर के हैं। दोहों का संकलन घटना-क्रम से हुआ होता तो, संभवतः ये दोहे दोहावली के अंत में होते।

पीड़ा वृद्धावस्था में उठी थी, इसका इशारा ऊपर के दोहे में भी है। अतएव दोहावली में तुलसीदास की वृद्धावस्था तक के दोहे संगृहीत हैं, ऐसा मानना पड़ता है।

संवत् १६७१ के आसपास मीन के शनैश्चर के समय तुलसीदास रोगाक्रान्त हुये थे, उनको बलतोड़ होगया था, जिससे बदन में फोड़े निकल आये थे और वे फूट-फूटकर बह रहे थे।—

तातें तनु पेखियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को।
(कवितावली)

मेरी राय में दोहावली में संवत् १६१० से १६७१ तक के दोहे सम्मिलित हैं।

तुलसी-सतसई

तुलसी-सतसई में उसका रचना-काल सं० १६४२ दिया हुआ है।—

अहि-रसना[2] थन-धेनु[4] रस,[6]
गनपति-द्विज[1] गुरुवारु।
माधव सित सिय जनम तिथि,
सतसैया अवतारु॥

इसके संबंध में इसी पुस्तक में पृष्ठ १८७ पर कुछ विशेष विवरण देखिये।

बरवै रामायण

बरवै रामायण का जो स्वरूप इस समय उपलब्ध है, उसे प्रबन्ध-काव्य कहना भूल है। क्योंकि वह तो शुरू से आख़ीर तक शृङ्खला-हीन है। सारे ग्रन्थ में कुल ६९ ही छंद तो हैं। वे भी सात काडों में विभक्त हैं। इससे कुछ कांड तो बहुत ही ग़रीब-से दिखते हैं। लङ्का-कांड में तो केवल एक ही छंद है, वह भी कथा के अनुसार सुन्दर-कांड का होता, तो ठीक था।

बरवै रामायण को मैं स्फुट काव्य मानता हूँ। इसमें मुझे तुलसीदास की युवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक रचे हुये छंद मिल रहे हैं। युवावस्था में रचे हुये छंदों के कुछ उदाहरण यहाँ अप्रासंगिक न होंगे।—

सीता के रूप के वर्णन में कवि कहता है।—

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह बिगसाइ॥

बड़े नयन कटि भ्रुकुटी भाल बिसाल।
तुलसी मोहत मनहिं मनोहर बाल॥

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥

ये छंद स्वयं साक्षी हैं कि ये 'मानस' की रचना के पहले ही जन्म ले चुके थे। मानस में सीता को जगज्जननी अंकित करनेवाले और उनकी उपस्थिति में सदा शिष्टता का ध्यान रखनेवाले तुलसीदास षोडश वर्षीय नवला बाला सीता के बड़े नेत्रों और विशाल भाल पर मन के मोहित होने का वर्णन न करते।

'मानस' में सीता के रूप का वर्णन करते-करते एक स्थान पर वे अपनी सीमा को ज़रा-सा अतिक्रम कर रहे थे कि तत्काल ही सावधान हो गये और अगले चरण में 'जगत जननि' शब्द लाकर 'जननी' की याद दिलाकर मन में सात्विक प्रेम उत्पन्न कर दिया।—

सोह नवल तनु सुन्दर सारी।
जगत जननि अतुलित छबि भारी॥

और इससे भी अधिक खुला शृङ्गार तो आगे आता है।—

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनींदे नैन॥

'मानस' लिख चुकने के बाद वे दो पंक्तियाँ तुलसीदास कभी न लिखते, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यह युवावस्था की रचना है, जब हृदय मस्तिष्क पर हावी होता है। 'मानस' तो उस समय रचा गया, जब मस्तिष्क हृदय पर पूरा अधिकार जमा चुका था।

इसमें तो तुलसीदास बिहारी के समकक्ष हो गये हैं। बिहारी का एक दोहा है।—

पति रति की बतियाँ कहीं,
सखी लखीं मुसुकाय।
कै कै सबै टलाटली,
अली चलीं सुख पाय॥

उसी 'उठी सखी' वाले छन्द के आगे ये दो पंक्तियाँ और हैं।—

सींक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन।
मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन॥

कहाँ तो ऊपर उनींदे नैनों की चर्चा और कहाँ सीखने के लिये सींक का धनुष लेना! यह छन्द तो इस कांड के प्रारंभ का होना चाहिये। इससे निश्चय है कि तुलसीदास ने बरवै रामायण का स्वरूप निश्चित नहीं किया है। उनके परवर्ती किसी कवि या भक्त ने स्वेच्छा से जिसे जहाँ चाहा, जड़ दिया है।

अब प्रौढ़ावस्था में रचे हुये छंदों को देखिये।—

केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥

यह छंद उस समय का है जब रामनाम के प्रभाव से

तुलसीदास बन की घास से तुलसी (पौधा) बन चुके थे। यह प्रभाव उनको 'मानस' की रचना के पहले भी प्राप्त हो चुका था। क्योंकि मानस में वे अपने को भाँग से तुलसी हुआ कह रहे हैं।—

राम जपत भये भाँग तें
तुलसी तुलसीदास।

अतएव उपर्युक्त छंद 'मानस' के पहले का भी हो सकता है और पीछे का तो निश्चयपूर्वक हो सकता है।

बरवै रामायण में मानस की जो छाया विद्यमान है, वह अवश्य ही उसको मानस के बाद ले जाती है।—

बरवै रामायण—

कलि नहिं ज्ञान बिराग न जोग समाधि।
रामनाम जपु तुलसी नित निरुपाधि॥

रामचरितमानस—

नहि कलि करम न भगति बिबेकू।
रामनाम अवलंबन एकू॥

बरवै रामायण—

महिमा रामनाम कै जान महेसु।
देत परम पद कासी करि उपदेसु॥

रामचरितमानस—

महा मंत्र जोइ जपत महेसू।
कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥

बरवै रामायण—

जान आदि कबि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत कोल ते भे ऋषिराउ॥

रामचरितमानस—

जान आदि कबि नाम प्रतापू।
भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥

बरवै रामायण का कांड और कथा का विभाजन भी बिल्कुल बेढंगे तौर पर हुआ है। ऊपर मैं दिखला आया हूँ कि किस प्रकार बालकांड के अन्त में एक छंद ऐसा रख दिया गया है, जिसे बिल्कुल ही पहले होना चाहिये था। इसी प्रकार अयोध्या-कांड में, जिसमें केवल ८ बरवै छंद हैं, भरत का कहीं नाम तक नहीं। मानस की रचना के बाद तुलसीदास भरत को भूल नहीं सकते थे।

अरण्य-कांड में पहला छंद एक दृष्टि-कूट की तरह का है।—

बेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास॥

अर्थात्, वेद अर्थात् श्रुति शब्द से कान बताकर और नाक के लिये आकाश की ओर संकेत करके, अँगुलियों से उसे काट कर रामने शूर्पणखा को लक्ष्मण के पास भेजा। संस्कृत में स्वर्ग का पर्यायवाची नाक शब्द है। और आकाश स्वर्ग का भावार्थ हो सकता है। कितनी क्लिष्ट कल्पना है।

इसके बाद ही यह छंद है।—

हेमलता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ।
हेमहरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि देखाइ॥

इसमें 'हेमलता' और 'मृदु मुसुकाइ' शब्द ध्यान देने का है। ये शब्द मानस की रचना के बाद तुलसीदास की लेखनी से नहीं निकल सकते थे।

अरण्य-कांड में छः ही छंद हैं। खरदूषण वध का उसमें जिक्र ही नहीं है। मारीच को मारकर राम कुटी में आये, तब वे कहते हैं।—

कनक सलाक, कलाससि, दीप सिखाउ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहिं बताउ॥

कनक-सलाक, कलाससि, दीपसिखा, तारा ये विशेषण सिय के लिये हैं, जो हिन्दी के शृङ्गारी कवियों की क़लम से निकलने योग्य हैं।

किष्किंधा-कांड में केवल दो ही बरवै हैं।—

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम॥

कुजनपाल गुन बर्जित अकुल अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुनगाथ॥

इनसे किष्किंधा-कांड की कथा का कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं दिखाई पड़ता।

सुंदर-कांड में भी छः छंद हैं। उनमें केवल सीता का विरह वर्णित है। एक छंद में तो अत्युक्ति की मात्रा ब्रजभाषा के परवर्ती कवियों के टक्कर की होगई है।—

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ॥

प्रसिद्ध देव-कवि ने एक दुर्बल विरहिणी का ऐसा ही वर्णन

किया था, जिसके हाथ की चूड़ी निकलकर कौवे के गले में जा पड़ी थी।—

लाल बिना बिरहाकुल बाल,
बियोग की ज्वाल भई झुरि झूरी।

* *

हाथ उठायो उड़ायबे को, उड़ि
काग गरे परी चारिक चूरी॥

लंका-कांड में केवल एक ही छंद है।—

बिबिध बाहिनी बिलसित सहित अनंत।
जलधि सरिस को कहै राम भगवंत॥

इसमें केवल 'राम भगवंत' की सेना की एक उपमा-भर है। लंका-कांड की किसी कथा का इससे क्या संसर्ग हो सकता है?

उत्तर-कांड में २७ छंद हैं। इनमें रामनाम का माहात्म्य और राम के प्रति तुलसीदास की अनुपम श्रद्धा का वर्णन है। इसके कई छंदों के भाव 'मानस' मे मिलते हैं। जिनके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। ये छंद मानस की रचना के बाद के जान पड़ते हैं।

तुलसी-साहित्य के कुछ मर्मज्ञों ने तुलसीदास के बरवै रामायण और रहीम के बरवै नायिका-भेद का संबंध जोड़ रक्खा है। मुझे तो ऐसा लगता है कि बरवै रामायण के कुछ छंद उस समय के भी हो सकते हैं जब रहीम (सं० १६१०) ने पृथ्वी पर पहले-पहल पैर रक्खा होगा। बड़े होने पर रहीम ही ने तुलसीदास का अनुकरण किया हो, तो दूसरी बात है, तुलसीदास ने रहीम से यह छन्द नहीं पाया है।

रहीम के एक बरवै में मानस के एक दोहे का भाव विद्यमान है।—

बरवै—

खोन मलिन बिष मैया
अवगुन तीनि।
मोहिं कहत बिधु बदनी
पिय मतिहीन॥

दोहा—

जन्म सिन्धु पुनि बन्धु बिष
दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि
चन्द बापुरो रंक॥

तुलसीदास ने जब यह दोहा लिखा था, उस समय रहीम की उम्र २१-२२ वर्ष से अधिक की नहीं होगी। तब तक रहीम शायद बरवै रच भी नहीं सकते होंगे। अतएव यह भाव रहीम ने लिया होगा, तुलसीदास ने नहीं।

मेरे निर्णय के अनुसार बरवै रामायण तुलसीदास के रचे हुये बरवै छन्दों का एक संग्रह-मात्र है। किसी ने पीछे से उसे कांड-बद्ध कर दिया है। और यह किसी एक समय का रचा हुआ भी नहीं है। इसमें तुलसीदास की युवावस्था और वृद्धावस्था दोनों समयों के रचे हुये छन्द हैं। अतएव कविता-वली और दोहावली-जैसा इसका भी गर्भ-काल लंबा है। मैं इसे सं० १६१० से १६४० तक की रचना मानता हूँ।

रामलला-नहछू

रामलला-नहछू चार चरणोंवाले बीस छन्दों का एक छोटा-सा ग्रन्थ है। यह रचना मुझे उस समय की जान पड़ती है, जिन दिनों तुलसीदास गीतावली की रचना कर रहे थे; क्योंकि

गीतावली के बहुत-से गीतों में उन्होंने हिन्दुओं के घरों में होने-वाले रीति-रस्मों का बड़ा सरस वर्णन किया है। उनसे यही नहीं प्रकट होता कि उनकी जानकारी कितनी व्यापक थी, बल्कि उस समय की उनकी रुचि का भी पता चलता है। रामलला-नहछू में एक ऐसे रस्म का वर्णन है, जो यज्ञोपवीत और विवाह दोनों अवसरों पर किया जाता है।

बरवै रामायण की तरह इसमें भी शृङ्गार रस के ऐसे रसीले पद हैं जो उनकी युवावस्था की रसिकता के द्योतक हैं।—

अहिरिनि हाथ दहेंडि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो॥

रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो॥

दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो॥

मोचिनि बदन सकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो॥

कटि कै छीनि बरिनिया छाता पानिहि हो।
चंद्रबदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो॥

नैन बिसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥

इस तरह की चटकीली-मटकीली कविता युवावस्था ही की देन है।

मैं रामलला-नहछू को सं० १६१५ के आस-पास की रचना मानता हूँ।

गीतावली

राम-कथा से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी घटनायें तुलसीदास के ग्रन्थों में अलग-अलग वर्णित हैं, इसमें सन्देह नहीं, संख्या में उनमें सबसे अधिक घटनाओं का उल्लेख गीतावली में मिलता है। इसके बाद रामचरितमानस का नम्बर है। यह गौण बात है कि किसी खास घटना का वर्णन 'मानस' में विस्तारपूर्वक हो, और गीतावली में केवल उसकी सूचना-मात्र।

'मानस' की रचना के पहले तुलसीदास ने राम से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी घटनायें एकत्र की थीं और उन पर अपने विचार दौड़ाये थे, और उन्हें अपने काव्यों में ग्रथित किया था, सब 'मानस' में पहुँचकर थिराईं और तब बाहर निकली थीं। बाल-कांड के प्रारम्भ में तुलसीदास ने इसका बड़ा ही विशद वर्णन किया है।—

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरितमानस कवि तुलसी॥

करइ मनोहर मति अनुहारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू।
बेद पुरान उदधि घन साधू॥

बरषहिं राम सुजस बर बारी।
मधुर मनोहर मंगलकारी॥

मेधा महिगत सो जल पावन।
सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन॥

भरेउ सुमानस सुथल थिराना।
सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥

भयउ हृदय आनंद उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥

चली सुभग कबिता सरिता सी।
राम बिमल जस जल भरिता सी॥

गीतावली एक कवि की रचना है और मानस एक भक्त-कवि की। दोनों में यह मुख्य अन्तर है। गीतावली में तुलसीदास स्वतन्त्ररूप से अपने हृदय के अन्तराल में बैठकर बोल रहे हैं और मानस में नाना पुराण, निगम, आगम और रामचरित्र के भिन्न-भिन्न रचयिताओं की मन्त्रणा-सभा में। इसीसे जो स्वतन्त्रता उन्होंने गीतावली में व्यक्त की है, वह मानस में नहीं है। गीतावली काव्य है और मानस को उन्होंने धर्म-ग्रन्थ का रूप दे दिया है। गीतावली का कवि मानस तक पहुँचते-पहुँचते भक्त हो गया है, इससे उसने सब ऐतिहासिक तथ्यों पर भक्ति का रंग चढ़ा दिया है।

जो सज्जन गीतावली को मानस के बाद की रचना मानते हैं, उनको इस बात पर एक बार फिर विचार कर लेना चाहिये कि मानस तुलसीदास की बुद्धि और हृदय दोनों से समर्थित रचना है। उसमें घटनाओं के जो स्वरूप वे निश्चित कर चुके थे, उनको कभी किसी भिन्न रूप में देखना या रखना वे पसंद न करते। रामचरितमानस तो सब श्रेणियों की जनता के कल्याण का एक प्रयोग है; उसकी एक-एक बात का समर्थन उनको जीवन के अन्तिम क्षण तक करना चाहिये था और उन्होंने किया भी है।

'मानस' एक प्रबंध-काव्य है। उसमें मुख्य घटनाओं को क्रमशः रखकर उन्हें सजाने की चेष्टा की गई है। पर गीतावली यद्यपि मानस की तरह सात कांडों में विभक्त है, पर उसमें मानस की तरह सुव्यवस्थित सब घटनायें नहीं मिलतीं।

आइये मानस और गीतावली के कथा-भेद पर थोड़ा विचार कर लें।—

गीतावली का प्रारम्भ राम-जन्म से होता है, जब कि मानस में हम राम-जन्म के पहले उमा-चरित, शंभु-चरित, नारद-मोह, भानुप्रताप और रावण-जन्म आदि की कई मनोरंजक कथायें पाते हैं। गीतावली में राम और उनके भाइयों के बाल-चरित का बहुत मनोहर वर्णन है; पर मानस में उतना नहीं है, और जो कुछ है भी, उसमें गीतावली-जैसी सरसता नहीं है। मानस में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण से सीता का स्वयंवर देख आने का प्रस्ताव करते हैं और उनको साथ लेकर जनकपुर की ओर चलते भी हैं, पर गीतावली में इसकी चर्चा ही नहीं है। विश्वामित्र के साथ वन में वास करने और वनवासियों से प्रशंसित होने का सुमधुर वर्णन देकर कवि ने यकायक उनको अहल्या के पास पहुँचा दिया है। पर मानस में इसका ब्योरेवार वर्णन है। मानस में परशुराम-लक्ष्मण-संवाद बहुत विस्तार के साथ है; पर गीतावली में संकेत-मात्र है।—

भंज्यो भृगुपति गर्वसहित
तिहुँ लोक बिमोह कियो।

मानस में बरात लाने के लिये दशरथ के पास जनक-द्वारा दूत भेजे जाने की चर्चा है और कवित्त्व की दृष्टि से यह बहुत ही मनोहर भी है; क्योंकि साधारण बुद्धि के दूतों से दशरथ ने जी खोलकर बातें कीं और अपने प्राणोपम पुत्रों के लिये पिता

का हृदय खोलकर हमारे सामने रख दिया। पर गीतावली में जनक का पत्र उनके पुरोहित सतानंद लेकर अयोध्या आते हैं। सतानंद और दशरथ के मिलाप में कविता का हमें कुछ लालित्य नहीं मिलता।

ललित लगन लिखि पत्रिका
उपरोहित के कर जनक जनेस पठाई।

पुरोहित ने भी परशुराम का ज़िक्र नहीं किया।

राम और लक्ष्मण जब विश्वामित्र के साथ वन को गये, उसके बाद कौशल्या और सुमित्रा के मातृ-हृदयों की प्रेम-पीड़ाओं का वर्णन, जो बहुत ही स्वाभाविक है, मानस में प्रायः नहीं के बराबर है; पर गीतावली में बहुत ही सुन्दर रीति से चित्रित है।—

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहैंगे।
भूख पियास सीत स्रम सकुचनि
क्यों कौसिकहि कहैंगे॥

को भोरही उबटि अन्हवै है
काढ़ि कलेऊ दै है।
को भूषन पहिराइ निछावरि
करि लोचन-सुख लै है॥

नयन निमेषनि ज्यों जुगवैं नित
पितु परिजन महतारी।
ते पठये ऋषि साथ निसाचर
मारन मख रखवारी॥

सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल
काक-पच्छधर दोऊ।

तुलसी निरखि हरखि उर लैहौं
बिधि ह्वै हैं दिन सोऊ ॥

* *

जब तें लै मुनि संग सिधाये।
रामलखन के समाचार सखि
तब तें कछुअ न पाये ॥

बिनु पानही गमन, फल भोजन,
भूमि सयन, तरु छाहीं।
सर सरिता जल पान, सिसुन के
संग सुसेवक नाहीं ॥

कौसिक परम कृपालु परम हित,
समरथ सुखद सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची
समुझि सोच मोहिं आली ॥

बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि
सब सनेह बस रानी।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर
कही सुमंगल बानी ॥

गीतावली गीति-काव्य है और मानस प्रबंध-काव्य; इससे दोनों की रचना-प्रणालियों में अंतर है। प्रबन्ध-काव्य में कवि हमेशा सामने चलता रहता है। गीति-काव्य में वह जिधर चाहता है, जा सकता है। अतएव मानस में कवि को एक बार अयोध्या-से निकल पड़ने के बाद फिर उधर रुख करने का मौक़ा ही नहीं मिला। चौदह वर्षों तक राम और लक्ष्मण की माताओं की विरहाकुलता के वर्णन का उसे अवकाश ही न मिला; पर कवि ने जब लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान को हिम-पर्वत तक

भेजा और भरत से उनकी मुलाकात भी करा दी, उस अवसर पर तो वह राम-लक्ष्मण की माताओं और सीता की सासुओं की विरह-वेदना अंकित कर ही सकता था। 'मानस' में यह करुण-प्रसंग छूट गया है, या जान-बूझकर छोड़ दिया गया है, कहा नहीं जा सकता। गीतावली में तुलसीदास मानस की अपेक्षा अधिक सजग दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने गीतावली में ऐसे दो-तीन प्रसंगों पर बड़ी ललित कविता की है। पहला प्रसंग, जब राम से चित्रकूट में मिलकर भरत अयोध्या लौटे हैं, तब का है। कौशल्या विलाप करती हैं।—

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु तें
हयाँ कहा जात बह्यो॥
पति सुरपुर सिय राम लखन बन
मुनि ब्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यों
मरिबोई मृतक दह्यो॥

* *

आली हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे।
लेत हिये भरि भरि पति को हित
मातु हेतु सुत जैसे॥
बारबार हिहिनात हेरि उत
जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिये बारे तें
करुनामय सुत प्यारे॥
लोचन सजल सदा सोवत से
खान पान बिसराये।

चितवत चौंकि नाम सुनि सोचत
राम सुरति उर आये ॥
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि
राजहंस से जोरे।
ऐसेहि दुखित देखिहौं जीवति
राम लखन के घोरे ॥

*　*

राघौ, एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने
बहुरो बनहिं सिधावौ ॥
भरत सौगुनी सार करत हैं,
अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे
मनहुँ कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन
कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें
इन्हको बड़ो अँदेसो ॥

दूसरा प्रसंग उस समय का है जब हनुमान औषध लेकर लंका की ओर आकाश-मार्ग से जा रहे थे और भरत के वाण से विद्ध होकर अयोध्या में उतर पड़े थे। उस समय सुमित्रा के वचन, जो उनके मुख से निकले हैं, एक वीर माता ही के उपयुक्त हैं। उनमें एक ओर पुत्र-स्नेह और दूसरी ओर कर्त्तव्य-पालन की दृढ़ता की झलक देखते ही बनती है।—

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि काज संग्राम सुभट सों
लोहे ललकारि लरे हैं।

सुवन सोक संतोष सुमित्रहिं
रघुपति भगति बरे हैं ॥
छिन छिन गात सुखात छिनहि छिन
हुलसत होत हरे हैं ॥

कपि सों कहति सुभाय अम्ब के
अंबक अम्बु भरे हैं ।
रघुनन्दन बिनु बंधु कुअवसर
जद्यपि धनु दुसरे हैं ॥

'तात जाहु कपि सँग', रिपुसूदन
उठि कर जोरि खरे हैं ।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु
बिधि बस सुढर ढरे हैं ॥

अंब अनुज गति लखि पवनज
भरतादि गलानि गरे हैं ।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि
समय सचेत करे हैं ॥

गीतावली में कैकेयी के वर माँगने की कथा नहीं है। 'मानस' में हमें इसका एक रोचक दृश्य देखने को मिलता है। गीतावली में राम के गंगावतरण की कथा भी नहीं है और न वशिष्ठ और भरत के वे व्याख्यान ही हैं, जो मानस में भरत के सिंहासन-ग्रहण के अवसर पर दिये गये थे।

गीतावली में राम के मनुष्य-हृदय की कोमल-भावनाओं का चित्रण हुआ है। और मानस के राम मनुष्य-समाज से कुछ ऊँचे उठे हुये-से दिखाई पड़ते हैं। मानस में वे जितने वचन बोलते हैं, सबसे सदाचार-शिक्षण ही की ध्वनि विशेष निकलती है।

गीतावली में राम ने भरत को उत्तर दिया।—

तात विचारो धौं हौं क्यों आवौं।
तुम सुचि सुहृद सुजान सकल विधि
बहुत कहा कहि कहि समुझावौं ॥
निज कर खाल खैंचि या तनु तें
जौ पितु पग पानहीं करावौं।
होउँ न उऋन पिता दसरथ तें
कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥

मानस में राम कहते हैं।—

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु।
स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिअ दुहुँ भाई।
लोक बेद भल भूप भलाई ॥

मानस के कथन में राजनीतिक स्वार्थ की गंध आ रही है; पर गीतावली के पदों में एक सच्चे पितृ-भक्त पुत्र का हृदय बोल रहा है।

गीतावली में खरदूषण-वध की कथा भी नहीं है और न सुग्रीव के साथ राम की मित्रता ही का ज़िक्र है। लंका में जब रावण ने विभीषण को लात मारा था, तब मानस के अनुसार वह मंत्रियों को साथ लेकर सीधे राम के पास पहुँचा था; पर गीतावली में वह पहले अपनी माँ के पास और फिर कुबेर के पास गया और वहीं उसे शंकर मिले। तीनों ने उसे राम की शरण में जाने की सलाह दी, तब वह राम के पास आया। अवश्य ही यह कथानक स्वाभाविकता के अधिक निकट है।

गीतावली के लंका-कांड में लक्ष्मण को शक्ति लगने के बाद और किसी युद्ध की खुली हुई चर्चा नहीं है। उसके बाद ही

राम अयोध्या को प्रयाण कर जाते हैं। मानस में उनके अयोध्या-प्रयाण के पहले कई कथायें हैं।

गीतावली के उत्तर-कांड में राम का सुख-भोग, प्रजा का आनन्दातिरेक और रामराज्य की विशेषताओं के वर्णनों के साथ-साथ सीता का वनवास-वर्णन भी है, जो मानस में नहीं है। वन में सीता के गर्भ से लव और कुश के जन्म लेने की कथा गीतावली में है, पर मानस में उनका जन्म अयोध्या ही में हुआ बताया गया है।—

दुइ सुत सुन्दर सीता जाये।

गीतावली में सीता के आश्रम में एक रात शत्रुघ्न भी रहे थे और सीता से बिना मिले ही, सवेरा होने के पहले ही, निकल गये थे। मानस में यह कथा नहीं है।

गीतावली के प्रारम्भ में न किसी देवता की प्रार्थना है, न अन्त में कवि के दीनता-प्रदर्शन की बाढ़ ही। अन्त में सारी राम-कथा की सूची बना देने के बाद तुलसीदास ने—

'जानि सुअवसर भगति दान तब माँगि लियो'

लिखकर यहीं गीतावली समाप्त कर दी है। इससे भी यही प्रकट होता है कि गीतावली की रचना के समय उसके कवि के हृदय में कवि-कौशल ही दिखाने की उत्सुकता अधिक थी, उपदेशक की तरह जनता को एक कल्याणकारी मार्ग पर ले चलने की तीव्र उत्कंठा नहीं।

एक बात और। यद्यपि यह एक साधारण-सी बात है, पर महत्व बहुत रखती है। तुलसीदास ने मानस से पहले के काव्यों में जहाँ-जहाँ मानसिक उत्तेजना के प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ-वहाँ पाँसे ठीक पड़ने की उपमा दी है। पाँसा

अवश्य ही उनके व्यापारी जीवन का एक विनोदपूर्ण साथी रहा होगा। युक्तप्रांत के और भारत के भी पश्चिमी प्रान्तों में अब भी पाँसा खेलने का बड़ा रवाज है। 'मानस' में पहुँचते-पहुँचते तुलसीदास ने अपने गार्हस्थ्य-जीवन की सब स्मृतियों के साथ पाँसे को भी फेंक दिया जान पड़ता है; क्योंकि फिर वह शायद ही किसी ग्रन्थ में याद किया गया हो। गीतावली से यहाँ पाँसे वाले कुछ पद दिये जाते हैं।—

सकल काम बरषत मुख निरखत
करषत चित हित हरष भरे री।
तुलसी सबै सराहत भूपहि
भले पैंत पाँसे सुढर ढरे री॥

सो सनेह समउ सुमिरि तुलसीहू के से
भली भाँति भले पैंत भले पाँसे परिगे।

सखि बचन सुनि कौसिला
लखि सुढरे पाँसे ढरनि।
लेत भरि भरि अंक सैंतति
पैंत जनु दुहुँ करनि॥

तात जाहु कपि सँग, रिपुसूदन
उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु
बिधि बस सुढर ढरे हैं॥

अब एक प्रश्न हल करना और है। वह यह है कि गीतावली और मानस के बहुत-से भाव ही नहीं, शब्द-प्रयोग भी मिलते-जुलते हैं, और यह प्रमाणित करते हैं कि या तो वे गीतावली से मानस में गये हैं, या मानस से गीतावली में आये हैं। जैसे—

गीतावली—

इन्ह तें लही है मानो घन दामिनि
दुति मनसिज मरकत सोने ॥

रामचरितमानस—

इन्हते लहि दुति मरकत सोने ।

गीतावली—

कुलिस कठोर कहाँ संकर धनु
मृदु मूरति किसोर कित ए री ।

रामचरितमानस—

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा ।
कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ॥

गीतावली—

दीप दीप के महीप आये सुनि पैज पन ।

रामचरितमानस—

दीप दीप के भूपति नाना ।
आये सुनि हम जो पन ठाना ॥

गीतावली—

महाराज भलो काज बिचारयो
बेगि बिलंब न कीजै ।

रामचरितमानस—

जग मंगल भल काज बिचारा ।
बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥

गीतावली—

हौं पुनि पितु आज्ञा प्रमान करि
ऐहौं बेगि सुनहु दुति दामिनि ॥

रामचरितमानस—

हौं पुनि करि प्रमान पितु बानी।
बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥

गीतावली—

बलकल बिमल दुकूल मनोहर
कंदमूल फल अमिश्र नाजु।

रामचरितमानस—

खग मृग परिजन नगर बन
बलकल बिमल दुकूल।
कंदमूल फल अमिश्र अहारू॥

गीतावली—

प्रभु पद कमल बिलोकिहैं छिनछिन

रामचरितमानस—

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी॥

गीतावली—

तुलसिदास ऐसे बिरह बचन सुनि
कठिन हियो बिहरो न आजु।

रामचरितमानस—

ऐसेहु बचन कठोर सुनि,
जौं न हृदय बिलगान॥

गीतावली—

दिनकर बंस पिता दसरथ से
रामलखन से भाई।
जननी तू जननी तौ कहा कहौं
बिधि केहि खोरि न लाई॥

रामचरितमानस—

हंसबंसु दसरथु जनकु
रामलखन से भाइ।
जननी तू जननी भई
बिधि सन कछु न बसाइ॥

गीतावली—

ताते हौं न देत दूषन तोहूँ।
राम बिरोधी उर कठोर तें
प्रगट कियो है बिधि मोहूँ।

रामचरितमानस—

रामबिरोधी हृदय ते
प्रगट कीन्ह बिधि मोहिं।
मो समान को पातकी,
बादि कहौं कछु तोहिं॥

गीतावली—

कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि,
बड़े भाग आये इत ये री।

रामचरितमानस—

कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं।

गीतावली—

रोषे लखन बिकट भृकुटी करि
भुज अरु अधर फुरे॥
सुनहु भानुकुल कमल भानु जो
अब अनुसासन पावौं।

का बापुरो पिनाकु मेलि गुन
मंदर मेरु नवावौं ॥
देखौ निज किंकर को कौतुक
क्यौं कोदंड चढ़ावौं।
लै धावौं भंजौं मृनाल ज्यों
तौ प्रभु अनुज कहावौं ॥

रामचरितमानस—

माखे लखन कुटिल भइ भौंहैं।
रदपट फरकत नयन रिसौंहैं ॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू।
कहौं सुभाव न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हारि अनुसासनि पावौं।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना।
का बापुरो पिनाक पुराना ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं।
जोजन सत प्रमान लै धावौं ॥

गीतावली—

मेरो सुनियो तात सँदेसो।
सीय हरन जनि कहेहु पितासों
ह्वैहैं अधिक अँदेसो ॥
रावरे पुन्य प्रताप अनल महँ
अलप दिननि रिपु दहिहैं।
कुल समेत सुरसभा दसानन
समाचार सब कहिहैं ॥

रामचरितमानस—

सीता हरन तात जनि,
कहेहु पिता सन जाइ।

जौ मैं राम त कुल सहित
कहिहि दसानन आइ ॥

गीतावली—

बरषा गई सरद आई
अब लगि नहिँ सिय सोधु लह्यो री ।

रामचरितमानस—

बरषा बिगत सरद ऋतु आई ।
सुधि न तात सीता कै पाई ॥

गीतावली—

जन गुन रज गिरि गनि सकुचत
निज गुन गिरि रज परमानु हैं ।

रामचरितमानस—

निज दुख गिरि सम रज कै जाना ।
मित्र के दुख रज मेरु समाना ॥

गीतावली—

हौं ही दसन तोरिबे लायक
कहा करौं जो न आयसु पायौं ।

रामचरितमानस—

मैं तव दसन तोरिबे लायक ।
आयसु पै न दीन्ह रघुनायक ॥

इसी प्रकार और भी कितने ही स्थानों में भाव-साम्य मिलते हैं । मैं तो समझता हूँ, तुलसीदास ने गीतावली ही से इनको मानस में लिया है । जब दोनों एक ही कवि की कृतियाँ हैं, तब लेने में उन्हें आपत्ति ही क्यों होती ? और गीतावली की अपेक्षा

मानस में वे भाव परिष्कृत रूप में भी तो हैं। मानस से गीतावली में गये होते तो वे 'मानस' से अच्छे रूप में होते। अतएव मैं गीतावली को 'मानस' से पहले की रचना मानता हूँ और उसका रचना-काल सं० १६१५ से १६२० के बीच का निश्चित करता हूँ, जबकि तुलसीदास गार्हस्थ्य-जीवन का आनन्द अनुभव कर रहे थे।

रामाज्ञा-प्रश्न

रामाज्ञा-प्रश्न की रचना वाल्मीकि-रामायण के आधार पर हुई है। इसकी सब कथायें उससे मिलती-जुलती हैं।

इसमें महाराज दशरथ के राज्य के सुख और अन्धमुनि के शाप से कथा का प्रारंभ किया गया है। मानस और इसकी कथाओं में क़रीब-क़रीब वैसा ही अन्तर है, जैसा गीतावली और मानस की कथाओं में मैं ऊपर लिख आया हूँ। इसमें भी जनकपुर से सतानन्द दशरथ को सीता-स्वयंबर का समाचार देने आये हैं।—

सतानन्द पठये जनक,
दसरथ सहित समाज।
आये तिरहुति सगुन सुभ,
भये सिद्ध सब काज॥

परशुराम इसमें दशरथ को जनकपुर की वापसी में, मार्ग में, मिलते हैं, जैसा वाल्मीकि-रामायण में है, पर मानस में नहीं हैं।—

पंथ परसुधर आगमनु,
समय सोच सब काहु

मानस में सेतु-बन्ध के अवसर पर रामेश्वर की स्थापना की कथा है, पर रामाज्ञा में नहीं है।—

राम कृपा कपि भालु करि,
कौतुक सागर सेतु।
चले पार बरखत बिबुध,
सुमन सुमंगल हेतु॥

रामाज्ञा में हनुमान् और विभीषण की भेंट की कथा नहीं है और न अङ्गद और रावण का संवाद ही है। इसमें राम-द्वारा सीता-त्याग की कथा है, जो मानस में नहीं है।—

राम कुचरचा करहिं सब,
सीतहि लाइ कलंक।
सदा अभागी लोग जग
कहत सकोचु न संक॥

सती सिरोमनि सीय तजि
राखि लोक रुचि राम।
सहे दुसह दुख सगुन गत
प्रिय बियोग परिनाम॥

लवकुश-जन्म, राम की सभा में उनके द्वारा रामायण-गान और वाल्मीकि-द्वारा सीता के लाये जाने का वर्णन रामाज्ञा में है।—

पुत्र लाभ लवकुस जनम,
सगुन सुहावन होइ।
समाचार मंगल कुसल,
सुखद सुनावइ कोइ॥

राम सभा लवकुस ललित,
किये राम गुन गान।

बालमीकि लवकुस सहित,
आनी सिय सुनि राम।
हृदय हरषु जानब प्रथम,
सगुन सोक परिनाम॥

सीता के अवनि-प्रवेश का भी वर्णन रामाज्ञा में है।—

अनरथ असगुन अति असुभ,
सीता अवनि प्रवेसु।

गीतावली से भी इसमें कुछ अधिक कथायें हैं। गीतावली में वाल्मीकि-द्वारा सीता का राम-सभा में आने और फिर उनके अवनि-प्रवेश की कथा नहीं है, पर रामाज्ञा में है। इससे मेरा अनुमान है कि यह गीतावली के बाद की रचना है। इसकी भाषा यद्यपि साधारण है, पर गीतावली से कुछ परिमार्जित अवश्य है। गीतावली का रचना-काल मैंने १६१५ से १६२० तक माना है। रामाज्ञा-प्रश्न का रचना-काल मेरी राय में १६२० के लगभग मानना चाहिये।

इसके पहले सर्ग के सातवें सप्तक के सातवें दोहे में एक शब्द गंगाराम आया है। इसे लेकर कुछ चरित-लेखक गंगाराम नाम के एक ज्योतिषी की कल्पना करते हैं, जो काशी-निवासी थे और कहा जाता है कि उनके घर पर तुलसीदास ठहरा करते थे। हो सकता है कि इस दन्त-कथा में कुछ तथ्य हो, पर दोहे में आये हुये गंगाराम शब्द से तो किसी व्यक्ति-विशेष का अर्थ नहीं निकलता। वहाँ तो स्पष्ट गंगा और राम दो अलग-अलग शब्द मानने ही से अर्थ की संगति बैठेगी।—

सगुन प्रथम उनचास सुभ,—
तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर,
गोगन गंगा राम॥

जानकी-मंगल

जानकी-मंगल की रचना गीतावली के बाद की या थोड़े ही आसपास की जान पड़ती है। इसकी भाषा गीतावली से कहीं परिमार्जित है, इससे यह बाद ही की होगी, ऐसा मेरा अनुमान है; पर मानस के बाद की नहीं हो सकती। यद्यपि जानकी-मंगल की कुछ पंक्तियाँ और कुछ भाव मानस में ज्यों के त्यों मिलते हैं।—

जानकी-मंगल—

एक कहहिँ कुँवर किसोर
कुलिस कठोर सिवधनु है महा।
किमि लेहिँ बाल मराल मंदर
नृपहिँ अस काहु न कहा॥

रामचरितमानस—

कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा।
कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा॥

कोउ न बुझाइ कहै नृप पाहीं॥

बाल मराल कि मंदर लेहीं॥

जानकी-मंगल—

कहि प्रिय बचन सखिन सन्ह रानि बिसूरति।
कहाँ कठिन सिव धनुष कहाँ मृदु मूरति॥

रामचरितमानस—

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति।
चली राखि उर स्यामल मूरति॥

जानकी-मंगल

रूप रासि जेहि ओर सुभांय निहारइ।
नील कमल सर स्रेनि मयन जनु डारइ॥

रामचरितमानस—

जहँ बिलोकु मृगसावक नैनी।
जनु तहँ बरस कमल सित स्रैनी॥

जानकी-मंगल—

सो धनु कहि अवलोकन भूप किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहि॥

रामचरितमानस—

सो धनु भूप कुँवर कर देहीं॥

सिरिसि सुमन कन बेधिय हीरा॥

जानकी-मंगल—

संकल्पि सिय रामहि समर्पी
सील सुख सोभा मई।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा
हरिहि श्री सागर दई॥

रामचरितमानस—

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि
हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक सिय रामहिं समर्पी
बिस्व कल कीरति नई॥

पर इससे यह प्रमाणित नहीं किया जाना चाहिये कि ये भाव जानकी-मंगल में मानस से गये हैं। जानकी-मंगल ही से उठाकर कवि ने मानस में रख लिये हैं, जैसे उसने गीतावली से मानस में लिये थे।

जानकी-मंगल और गीतावली की कथा में बहुत साम्य है। गीतावली में दशरथ को बुलाने के लिये जनक के पुरोहित सतानंद गये थे। जानकी-मंगल में भी यही है।—

गे मुनि अवध बिलोकि सुसरित नहायउ।
सतानन्द सत कोटि नाम फल पायउ॥

रामाज्ञा-प्रश्न में भी यही वर्णन है।—

सतानन्द पठये जनक।

गीतावली में यद्यपि स्पष्ट नहीं है कि परशुराम कहाँ और कब मिले, पर मिलने का वर्णन है।—

दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकट खयकारी।
क्यौं सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी॥

जानकी-मंगल में परशुराम बरात की वापसी में मिले थे।—

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिये।
डाटहिँ आँखि देखाइ कोप दारुन किये।

रामाज्ञा-प्रश्न में भी यही कथा है।—

पंथ परसुधर आगमनु,
समय सोच सब काहु।

जानकी-मंगल में फुलवाड़ी का भी वर्णन नहीं है, जो मानस का एक रोचक प्रसंग है

इन उदाहरणों से यह विदित होता है कि गीतावली, जानकी-मंगल और रामाज्ञा-प्रश्न की रचनायें बिल्कुल आसपास की हैं और तब कवि राम की कथाओं के लिये वाल्मीकि-रामायण ही को आधार मानता था। मानस तक पहुँचते-पहुँचते उसमें मौलिक परिवर्तन हुआ है, और वह अध्यात्म-रामायण, हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव आदि से सलाह लेकर चलने लगा है।

जानकी-मंगल को गीतावली के बाद की रचना मैं उसकी भाषा को देखकर भी मानता हूँ। जानकी-मंगल की भाषा गीता-वली की भाषा से मुझे अधिक परिमार्जित लगती है।

जानकी-मंगल में आठ-आठ सोहर छन्दों के बाद एक-एक हरिगीतिका छन्द का क्रम आदि से अन्त तक निभाया गया है। इससे यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना अयोध्या-कांड की रचना के कुछ पहले या कुछ पीछे की, या बिल्कुल समकालीन है; क्योंकि उसमें भी आठ-आठ चौपाई के बाद एक-एक दोहे का क्रम प्रायः आदि से अन्त तक पाया जाता है। ऐसी क्रम-बद्धता तुलसीदास के अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं पाई जाती।

मेरे निर्णय पर जानकी-मंगल में व्यक्त किये हुये कवि के भावों का भी प्रभाव है। जानकी-मंगल की रचना तुलसीदास की उस अवस्था में हुई जान पड़ती है, जब वे राम और सीता को मनुष्य-स्वभाव के अधिक निकट मानते थे। उनके देवत्व की कल्पना और उनके लिये अन्ध-विश्वासी मनुष्य की-सी श्रद्धा के भावों से वे ओत-प्रोत नहीं थे।

सीता और राम के प्रथम दर्शन के अवसर पर वे लिखते हैं।—

राम दीख जब सीय सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक॥

राम सीय बय समौ सुभाय सुहावन ।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन ॥

ऐसे भावोंवाले छन्द 'मानस' के बाद लिखना शायद ही तुलसीदास पसंद करते ।

मेरी राय में जानकी-मंगल की रचना संवत् १६२४ के लगभग की है ।

अयोध्या-कांड

इस पुस्तक के २२० वें पृष्ठ पर मैं विस्तार के साथ यह लिख चुका हूँ कि गृह-त्याग के बाद तुलसीदास ने रामचरित नाम का एक काव्य लिखा, जो रामचरितमानस में अयोध्या-कांड के नाम से सन्निविष्ट है, उसको यहाँ दुहराना उचित नहीं जान पड़ता ।

तुलसीदास के गृह-त्याग का समय मैं संवत् १६२० के आसपास का मानता हूँ । पाँच वर्षों तक वे तीर्थों में इधर-उधर घूमते रहे और गीतावली, दोहावली, बरवै-रामायण और कवितावली आदि के प्रारंभिक अंश लिखते और काव्य-प्रेमियों में बैठकर उनका आनन्द लेते रहे । घूम-घामकर वे सं० १६२५ के लगभग अयोध्या में स्थायी रूप से रहने लगे । वहीं उन्होंने रामचरित का लिखना प्रारम्भ किया । अतएव रामचरित या अयोध्या-कांड का प्रारंभ संवत् १६२५ में मानना चाहिये । यह ग्रंथ कम से कम दो-तीन वर्षों में समाप्त हुआ होगा; क्योंकि इसमें संस्कृत के बीसों सुप्रसिद्ध ग्रन्थों के श्लोकों के भाव मिलते हैं, जिनके अध्ययन के लिये काफ़ी समय आवश्यक है । संभवतः संवत् १६२८ में तुलसीदास ने इस ग्रन्थ को समाप्त कर लिया होगा ।

रामचरित की रचना अयोध्या में करके वे उसे लेकर काशी आये, और काशी के कविता-रसिकों में अपनी प्रतिभा का प्रखर प्रकाश फैलाकर चकाचौंध उत्पन्न करने लगे ।

तब काशी के शैवों, संतों, संन्यासियों और बल्लभ-कुल के गोसाइयों ने उनका विरोध करना प्रारम्भ किया। विरोध का एक रूप यह भी था कि भाषा में कविता क्यों करते हो? संस्कृत में क्यों नहीं करते? इस विरोध का भी एक कारण यह था कि भाषा की कविता होने से सर्वसाधारण ने उसे शीघ्र ही अपना लिया था और इससे संस्कृतज्ञों की प्रतिष्ठा को धक्का लगने की संभावना हो चली थी।

दन्त-कथाओं की बातें यदि सत्य मान ली जायँ, तो विरोध का एक कारण यह भी हो सकता है कि तुलसीदास राम-भक्तों से छुआछूत का विचार नहीं रखते थे। कहा जाता है कि किसी हत्यारे को शुद्ध करके उन्होंने उसके साथ भोजन भी किया था। यदि यह सत्य है, तो काशी में उनके विरोध का यह एक प्रबल कारण हो सकता है। तुलसीदास की जाति-पाँति पूछने और उसको लेकर जनता में आन्दोलन करने के लिये उन दिनों इससे बढ़कर गंभीर बात दूसरी नहीं हो सकती थी। अस्तु;

अयोध्या-कांड की रचना के बाद तुलसीदास को काशी में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के बहुत कष्ट दिये गये। तब तुलसीदास ने कवि का मार्ग छोड़कर भक्त और सुधारक का मार्ग पकड़ना उचित समझा और वे काशी से अयोध्या जाकर, सं० १६३१ में, 'मानस' की रचना में प्रवृत्त हुये, और बाल-कांड को पूर्ण करके उसीमें उन्होंने अयोध्या-कांड के नाम से रामचरित को मिला दिया। पहले वे वाल्मीकि-रामायण के आधार पर रामचरित लिखते थे, जैसा उन्होंने गीतावली आदि में किया है। बाद को उन्होंने भक्ति-सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों को समयानुकूल समझकर उनका अनुसरण किया।

श्रीकृष्ण-गीतावली

श्रीकृष्ण-चरित लिखना तुलसीदास का विषय नहीं था। फिर भी उन्होंने अनेक राग-रागिनियों में ६० पदों का यह एक छोटा-सा ग्रन्थ रच दिया है। उनके जीवन के प्रारंभ में उत्तर भारत में सर्वत्र ब्रजभाषा ही कविता की भाषा थी और उसी में कृष्ण-लीला के पद बनाये और गाये जाते थे। इसका प्रभाव तुलसीदास पर भी पड़ा होगा और इसीसे उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की।

श्रीकृष्ण-गीतावली की रचना कब हुई, इसका कोई उल्लेख उक्त पुस्तक में नहीं है। मेरा अनुमान है कि इसकी रचना संवत् १६२८ और ३० के बीच में हुई होगी। उन दिनों वे काशी में प्रायः अधिक रहते थे और बल्लभ-कुल के गोसाइयों से सम्पर्क रखते थे। संभवतः उनको प्रसन्न करने के लिये यह श्रीकृष्ण-गीतावली उन्हीं के अनुरोध से लिखी गई है।

श्रीकृष्ण-गीतावली की भी कुछ पंक्तियाँ मानस में आगई हैं।—

श्रीकृष्ण-गीतावली—

> कहि पारथ सारथिहि सराहत
> गई बहोरि गरीब निवाजी।

मानस—

> गई बहोरि गरीब निवाजू।

श्रीकृष्ण-गीतावली—

> पावक बिरह, समीर, स्वास तनु-
> तूल मिले तुम्ह जारनिहारे

मानस—

विरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरै छन माँह सरीरा॥

रामचरितमानस

रामचरितमानस की रचना के संबंध में तो कोई विवाद ही नहीं है। क्योंकि कवि ने स्वयं उसका रचना-काल लिख दिया है।—

संवत सोरह सै इकतीसा।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥

पार्वती-मङ्गल

मानस के बाद तुलसीदास की सबसे निकट की रचना पार्वती-मङ्गल है। इसमें कवि ने इसका रचना-काल स्वयं दे दिया है।—

जय संवत फागुन सुदि
पाँचै गुरु दिनु।
आस्विनि बिरचेउँ मङ्गल
सुनि सुख छिनु छिनु॥

स्व० पंडित सुधाकर द्विवेदी ने गणना करके बताया है कि उक्त योग-सहित जय-संवत् सं० १६४३ में पड़ा था। अतएव पार्वती-मङ्गल की रचना संवत् १६४३ में हुई समझना चाहिये।

पार्वती-मंगल का विषय शिव-पार्वती का विवाह है। रामचरितमानस में भी यह प्रसंग आया है; पर सहृदय कवि ने इसे स्त्री-समाज के उपयोग के लिये वैवाहिक छन्द (सोहर) में

फिर से लिख दिया है। चूँकि यह मानस के पश्चात् लिखा गया है, इससे कवि ने मानस से बहुत-से छन्द ज्यों के त्यों उठाकर, छन्द-संबन्धी साधारण फेर-फार के साथ, उन्हें इसमें रख दिये हैं। जैसे।—

रामचरितमानस—

पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना।
उमहि नाम तब भयउ अपरना॥

पार्वती-मंगल—

नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे॥

रामचरितमानस—

अब सुख सोवत सोच नहिं,
भीख माँगि भव खाहिं॥

पार्वती-मंगल—

भीख माँगि भव खाँहिं,
चिता नित सोवहिं॥

रामचरितमानस—

बर अनुहारि बरात न भाई।

पार्वती-मङ्गल—

बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा।

रामचरितमानस—

बर बौराह बरद असवारा।

पार्वती-मंगल—

बरद चढ़ा बर बाउर सबइ सुबाक्क।

विनय-पत्रिका

विनय-पत्रिका तुलसीदास की उस समय की रचना है, जब भाषा पर उनका अखण्ड अधिकार स्थापित हो चुका था, भावों को सरलता से व्यक्त करने में उनकी क्षमता को सर्वमान्यता मिल चुकी थी, धार्मिक भावोंवाली जनता में उनको सम्मान का उच्च स्थान प्राप्त हो चुका था, और वे मानस की लोक-प्रियता देख-देखकर आत्मिक आनन्द का अनुभव कर रहे थे। संभवतः सं० १६४० से वे काशी में स्थायी रूप से निवास करने लगे थे। पार्वती-मंगल की रचना काशी-वास ही की प्रेरणा का फल जान पड़ती है। पार्वती-मंगल की रचना के बाद संवत् १६४५ के आसपास तुलसीदास ब्रज की ओर गये होंगे। नाभादासजी से उनकी मुलाक़ात का सबके उपयुक्त समय यही रहा भी होगा; क्योंकि नाभादासजी ने संवत् १६४२ के बाद भक्तमाल की रचना की थी। उसमें तुलसीदास के लिये वर्तमान-काल की क्रिया का प्रयोग हुआ है।—

रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।

'वार्ता' के अनुसार तुलसीदास ब्रज गये थे और नन्ददास से मिले थे। संभवतः उसी यात्रा में वे नाभादासजी से भी मिले हों, जैसा दंत-कथाओं में प्रसिद्ध है। ब्रज से लौटने के बाद वे स्थायी रूप से काशी में रहने लगे होंगे और तभी अपने अंतिम ग्रन्थ विनय-पत्रिका के पद उन्होंने प्रारम्भ किये होंगे।

विनय-पत्रिका काशी ही में प्रारम्भ हुई थी, इसके प्रमाण उसके आदि में शिव और काशी के अन्य देवताओं-सम्बन्धी स्तुतियाँ हैं। सम्भवतः संवत् १६४५ से विनय-पत्रिका प्रारम्भ हुई और संवत् १६६८ तक उसके पद रचे जाते रहे। उसकी समाप्ति

तक वे जीवन के अन्तिम छोर तक पहुँच रहे थे।

तुलसिदास अपनाइये कीजै न ढील
अब जीवन अवधि अति नेरे।
(विनय-पत्रिका)

विनय-पत्रिका में भी कराल कलिकाल की कदर्थना का वर्णन मिलता है और कवितावली में भी। पर कवितावली में काशी की महामारी, रुद्र-बीसी और मीन की सनीचरी का ज़िक्र है; उसका आभास विनय-पत्रिका में नहीं मिलता। इससे उन घटनाओं के पहले ही इसकी समाप्ति माननी होगी।

तुलसीदास की रचनाओं के काल-क्रम पर मेरी यह स्वतंत्र सम्मति है। काल-क्रम निश्चित करते समय मैं इस विषय के किसी लेख या तुलसीदास के किसी चरित-लेखक की कल्पना के प्रभाव में नहीं हूँ। तुलसीदास के ग्रन्थों के बार-बार के अध्ययन से मैं जिस निर्णय पर पहुँचा हूँ, उसी को ठीक मानकर मैंने अपने विचार यहाँ लिखे हैं। हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग से प्रकाशित, रामचरितमानस के प्रारम्भ में दी हुई तुलसीदास की जीवनी में उनकी रचनाओं का जो काल-क्रम निश्चित किया गया था, उसका अब मैं स्वयं संशोधन करता हूँ।

तुलसीदास और उनकी कविता

दूसरे भाग की विषय-सूची

तुलसीदास का वनस्पति-विज्ञान

तुलसीदास, जीव-विशेषज्ञ

तुलसीदास, गणितज्ञ

तुलसीदास, ज्योतिषज्ञ

तुलसीदास, संगीतज्ञ

तुलसीदास का अन्तर्जगत्

प्रेम और विरह
पति-पत्नी का प्रेम
माता-पिता का प्रेम
भाई-भाई का प्रेम
मित्र और भक्त का प्रेम
जन्म-भूमि का प्रेम

तुलसीदास की काव्य-सम्पदा—

कविता का प्रयोजन
पद्यकार और कवि
तुलसीदास की निरभिमानता।
तुलसीदास का [illegible]
छन्द
गुण
रस
अलंकार
उपमा
रूपक
संवाद

पृष्ठ-संख्या ४०० से अधिक; कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द; मूल्य केवल दो रुपये

मिलने का पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग